नई कहानी में मानव मूल्यों के विविध सन्दर्भ

[प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल्० की उपाधि के लिये प्रस्तुत प्रबन्ध]

शोध प्रबन्ध

निर्देशक

डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव

रीडर, हिन्दी विभाग

प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोधार्थी

श्रीमती ऊषा श्रीवास्तव

एम० ए०, एल० टी०

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

१९९० ई०

"क्रम" | पृष्ठ

* प्राक्कथन *

स्वतंत्रता के बाद भारतवर्ष में अकस्मात् अभूतपूर्व परिवर्तन हुये । स्वतंत्रता से पूर्व महात्मा गांधी के नेतृत्व में विदेशियों से संघर्ष करने की प्रक्रिया में विविध प्रकार के मानव मूल्य विकसित हुये थे, किन्तु आजादी के तुरन्त बाद उन मूल्यों की हत्या प्रारम्भ होगई। अहिंसा के पुजारी महात्मा गांधी को स्वयं हिंसा का शिकार होना पड़ा । इस घटना के शीघ्र बाद ही अनुभव होने लगा कि, मानव मूल्यों के पुनर्मूल्यन तथा स्थापन की अपेक्षा है।

एम० ए० की कक्षाओं में अध्ययन करते हुये मुझे यह अनुभव होता रहा कि, मैं मानव मूल्यों का स्वयं परीक्षण और मूल्यांकन करूँ । एम० ए० करने के पश्चात् इसीलिये मैंने ऐसे शोध विषय का चयन किया जिसके द्वारा मैं अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति देने में अब मैं समर्थ हो रही हूँ ।

सन् 1979 ई० में मैंने नई कहानी के मानव मूल्यों के विविध सन्दर्भ पर डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव से परामर्श के उपरान्त शोध कार्य प्रारम्भ किया। जैसा कि, भारतीय युवतियों के साथ प्रायः होता है, माता की इच्छा के दबाव में आकर मुझे गृहस्थ जीवन में प्रवेश लेने के लिए विवश होना पड़ा । इसका सहज परिणाम यह हुआ कि, मेरे शोध प्रयत्न में एक दीर्घकालिक बाधा उत्पन्न हो गई। मैं एक लम्बे समय तक इलाहाबाद से कट कर प्रवासिनी के रूप में भटकती रही और इस बीच गृहस्थ जीवन में सम्बद्ध दायित्व बढ़ते गये। किन्तु हमारे

श्रद्धेय गुरुवर डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव (रीडर) हिन्दी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में अपनी कृपा एवं सहज वात्सल्यपूर्ण व्यवहार से मेरे उत्साह को गति देकर, अपेक्षित सुविधायें एवं सार्थक और मूल्यवान निर्देश देकर विषय से सम्बन्धित अन्य संदर्भों में भी विस्तृत चर्चा से मार्ग दर्शन प्रदान कर मेरी सीमित चेतना को व्यापक क्षितिज का विस्तार प्रदान किया है।

मैंने पुनः अवसर मिलते ही अपने शोध कार्य को अन्तिम रूप देने के लिए प्रयत्न किया और मुझे इस समय एक सुखद सन्तोष हो रहा है जब मैं अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर रही हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध नई कहानी में मानव मूल्यों के विविध सन्दर्भ अपने आप में नितान्त मौलिक हैं।

वर्तमान युग में साहित्य के मूल्यगत आँकलन की प्रवृत्ति ने भी मुझे इस ओर प्रेरित किया है। चूँकि समसामयिक कहानियों में मानव मूल्यों को विविध सन्दर्भों में स्वीकृत किया गया है।

अतः मेरे निष्कर्ष इस दिशा में पूर्ण हैं या अन्तिम हैं मैं यह दावा नहीं कर सकती।

मेरा प्रयास उस अभाव की पूर्ति का एक निमित्त है जो मानव मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी-कहानियों के आलोचना क्षेत्र के अन्तर्गत दिखाई दे रहा है।

प्रस्तुत शोध विषय "नई कहानियों में मानव मूल्यों के विविध सन्दर्भ" के अन्तर्गत मैंने नई कहानियों को मानव मूल्यों की दृष्टि से अनुशीलन किया है। और जो नई कहानियों में मुझे मानव मूल्यों की दृष्टि से महत्वपूर्ण लगीं, उनको अपने विश्लेषण का आधार बनाया है। यद्यपि इस कालावधि में प्रचुर मात्रा में कहानियाँ विविध सन्दर्भों के साथ प्रकाश में आई हैं। उन सभी का अध्ययन करना दुरूह है। शोध कृति में प्रमुख कहानीकारों के कहानियों को ही विश्लेषण का माध्यम बनाया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में वर्गीकृत किया गया है। प्रथम अध्याय में मानव मूल्य परिभाषा एवं स्वरूप का विश्लेषण किया गया है।

द्वितीय अध्याय में मूल्यों का वर्गीकरण किया गया है। हिन्दी कहानियों की अनुशीलन से मेरे दृष्टि में जो व्यक्तिगत मूल्य, समाजगत मूल्य के अन्तर्गत ही अन्य सभी मानव मूल्य समाविष्ट होते हैं। उनके आधार पर ही राजनैतिक, जातीयता, धार्मिक, साम्प्रदायिक, नैतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक और नर नारी सम्बन्धों से जुड़े हुये सामाजिक मूल्य पारिवारिक मूल्य आदि हो सकते हैं।

तृतीय अध्याय में नई कहानी का विकासात्मक परिचय दिया गया है। नई कहानी का उद्भव किस प्रकार हुआ उसके बाद नई कहानी किस प्रकार अकहानी, सचेतन कहानी, समान्तर कहानी, जनवादी कहानी, सक्रिय कहानी आदि रूपों में परिवर्तित हुई, का उल्लेख शीर्ष में किया गया है।

चौथे अध्याय में कुछ विशिष्ट कहानीकारों और उनकी कुछेक मूल्यपरक कहानियों के विषय में उल्लेख किया गया है। नये कहानीकारों की संख्या तो प्रतिदिन बढ़ रही है, लेकिन मैंने उन्हीं कहानीकारों को विवेचित किया है जिनकी कहानियों में मुझे मानवमूल्य अपने ~~किन्हीं~~ किन्हीं रूपों में उपलब्ध हुआ है चाहे वह मूल्य स्थापित करने की स्थिति में हो या विघटित करने की या फिर संक्रमण की स्थिति में हो ।

पाँचवे अध्याय को मैंने दो भागों में बाँट दिया है। प्रथम भाग में पति पत्नी, प्रेमी प्रेमिका, भाई बहन, पिता पुत्र, माँ पुत्री आदि सम्बन्धों का मूल्य परक कहानियों का अनुशीलन किया गया है।

स्त्री पुरुष, पिता पुत्र, माता पुत्री में सम्बन्ध कायम करने वाली स्त्रियों के सम्बन्ध, बॉस और स्टेनो जैसे अनेकानेक सम्बन्धों की चर्चा की गई है। स्त्री माँ, बहन, पत्नी, ही क्यों न हो है तो वह स्त्री ही ।

पाँचवे अध्याय के द्वितीय भाग में पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, राजनीतिक, धार्मिक सभी मूल्य परक कहानियों का अनुशीलन किया गया है।

उप संहार में मानव मूल्यों की वर्तमान स्थिति की व्याख्या करने का अकिंचन प्रयास किया है। अन्त में आजादी के उपरान्त की मैंने अपने अध्ययन के क्रम में बहुतेरी कहानियाँ पढ़ने का उपक्रम किया किन्तु अपने विषय की सीमाओं को दृष्टि में रखते हुये न तो समस्त कहानियों का उल्लेख प्रबन्ध में सम्भव था न ही ऐसा वांछनीय ।

अपने अध्ययन क्रम में मैंने चुने हुये लेखकों की गिनी चुनी कहानियों का मानव मूल्यों की दृष्टि में अनुशीलन प्रस्तुत किया है। कहानियों के चुनाव में अभिरुचि मेरी निजी रही है और उनकी उपयोगिता को ध्यान में रखकर ही मैंने कहानियों का अपना चयन किया है। मेरा भाव किसी भी कहानीकार की भावना को रंचमात्र भी ठेस लगाना नहीं है, न ही उसकी उपेक्षा करना है।

मैं उन सब कृतिकारों की भी आभारी हूँ जिनकी कृतियों ने मुझे विशेष लाभान्वित किया है तथा जिनके अमूल्य सहयोग से मैं अपने निश्चित कर्म को संपादित करने में समर्थ रही हूँ ।

अपने शोध कार्य को पूर्णत्व प्रदान करने की अनुक्रिया मैंमुझे अनेक विद्वानों से सहायता मिली है। विशेष रूप से डा० राम स्वरूप चतुर्वेदी, डा० राम कुमार , डा० रघुवंश, डा० मीरा श्रीवास्तव, श्री दूधनाथ सिंह, डा० राम कुमारी मिश्र के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय, साहित्य सम्मेलन पुस्तकालय, भारती भवन पुस्तकालय, पब्लिक पुस्तकालय, के अधिकारियों और कर्मचारियों से शोध सन्दर्भ में बहुत सहायता मिली है। मैं इन सबके प्रति अपना आभार व्यक्त करती हूँ।

मैं अपने श्रद्धेय गुरुवर डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव की चिर कृतज्ञ हूँ, जिनकी पुत्रीवत स्नेह छाया में प्रेरणापूर्ण निर्देशन प्राप्त कर मैं यह प्रबन्ध लेखन सम्पन्न कर सकी। मैं उनके प्रति कृतज्ञता किन शब्दों में व्यक्त करूँ, शब्द इस आभार का अंकन नहीं कर सकते।

मैं अपने जीवन सहचर श्री चन्द्र मोहन श्रीवास्तव, जिन्होंने मेरे प्रबन्ध लेखन के लिये प्रत्येक सम्भव सुविधा प्रदान की। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन क्या हो?

अलमिति।

मैं अपने माताश्री का आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मुझे बाल्यावस्था से ही विद्यार्पण की शिक्षा दी।

अन्त में मैं प्रिय मयंक एवं मणि (बच्चे), श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव (भाभी), श्रीमती आशा श्रीवास्तव (बहन), श्रीमती गीता श्रीवास्तव (ननद), एवं श्री उमाशंकर श्रीवास्तव (नन्दोई), जितेन्द्र श्रीवास्तव (देवर) का आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मेरे अपने पारिवारिक दायित्वों को संभार कर मुझे प्रबन्ध पूर्ण करने का अवसर प्रदान किया साथ ही मैं अपने पति के मित्र श्री सुरेन्द्र कुमार मिश्र जी का आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने अपना मूल्यवान समय देकर इस शोध प्रबन्ध को टंकित करने में अपना पूरा सहयोग दिया है।

"अध्याय" — एक"

x=x=x=x=x=x=x

मानव मूल्यों का विवेचन :

परिभाषा एवं स्वरूप,

साहित्य एवं मानव मूल्य,

मूल्यों के स्रोत,

मानव मूल्यों में परिवर्तन के कारण

वर्तमान युग में मूल्य विघटन

"मानव मूल्य"

सृष्टि के आरम्भ से ही मनुष्य ने समाज को व्यवस्थित रखने के लिये आदर्शों का सृजन किया जैसे मनुष्य को सच बोलना चाहिये, दूसरे की चीज चोरी नहीं करनी चाहिये, हिंसा का परित्याग करना चाहिये, ईश्वर में आस्था रखनी चाहिये, धर्मानुसार आचरण करना चाहिये आदि। किन्तु कालान्तर में मनुष्य को स्वयं ही अपने बनाये विधि विधानों पर चलने में कठिनाई होने लगी, उसे लगा कि, सत्य हरिश्चन्द्र, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, धर्मराज युधिष्ठिर, ईसा मसीह, हजरत मोहम्मद, महात्मा बुद्ध, बनना असम्भव नहीं है, तो दुष्कर अवश्य है। इसीलिये मनुष्य को निरन्तर अपने मूल्यों में फेर बदल करने की आवश्यकता का अनुभव होता रहा, हो रहा है और कदाचित आगे भी ऐसा ही होगा ।

वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत, गीता, आचार संहितायें, आदि ग्रन्थों में बराबर आदर्श जीवन के परिपालन को निरूपित किया गया है, किन्तु व्यवहार जगत में विधि विधानों का अतिक्रमण ही होता रहा है। डा० सर्वपल्ली राधा कृष्णन् ने मूल्य को धर्म से प्रेरित बताया है।

डा० सर्वपल्ली राधा कृष्णन् का मत है कि, "धर्म परम मूल्यों में विश्वास और इन मूल्यों को उपलब्ध करने के लिये जीवन की एक पद्धति का प्रतीक होता है।[1]" यह नैतिक व्यवस्था को जन्म देता है। जिसका परिणाम आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों का उदय है। इसीलिये यह मान्यता को विकास की ओर गतिशील करता है। धर्म का प्रसार व्यापक है, यह एक महत् मानव मूल्य है, जो आस्तिकता, कर्तव्य प्रेम व्यक्ति एवं देश के प्रति। स्वतंत्रता, मर्यादा, आस्था, सेवा, विश्वहित आदि कई मूल्यों को जन्म देकर मानव जीवन को महत् लक्ष्यों से पूर्ण करने के लिये प्रेरित करता है।"

डा0 राधा कृष्णन् ने जो विचार अभिव्यक्त किये हैं वो आधुनिक कालीन समाज की संरचना से सम्बद्ध हैं।

विश्व ने वर्तमान शती में दो महायुद्धों को (1914 से 1919 तथा 1939से 1945 ईस्वी) को झेला, इन विश्व महायुद्धों ने समूची मानवता को आन्दोलित किया, और मनुष्य को समाज की संरचना के सन्दर्भ में नये सिरे से विचार करने के लिये विवश होना पड़ा, मनुष्य ने व्यक्ति समाज, धर्म, अर्थ, काम, आदि विषयों को नये सिरे से उपयोगिता की दृष्टि से देखा, भारतीय तथा विदेशी चिन्तकों और दार्शनिकों ने व्यक्ति और समाज से सम्बन्धित समस्याओं को व्यापक मानवता के सन्दर्भ में जानने और समझने का उपक्रम किया। इस अनुक्रम में पुराने आदर्शों को मानव मूल्यों के नाम से जाना समझा गया। उदाहरणार्थ भौतिक स्तर पर "कार्लमार्क्स" ने धन के समान वितरण को समाज के लिये अनिवार्य बताया। मार्क्स के अनुसार सामाजिक समस्याओं का निराकरण इसी आधार पर सम्भव है। उन्होंने, किसानों, मज्दूरों आदि के शोषण को गलत बताया, तथा इसके लिये शोषित वर्ग को अपराधी कहा। मार्क्स ने आधुनिक युग की रूप रचना के लिये अर्थ के समान वितरण को मानव मूल्य के रूप में प्रतिपादित किया, किन्तु व्यावहारिक स्तर पर हम देखते हैं कि, जिन देशों में राजनैतिक, सामाजिक व्यवस्था मार्क्सवाद पर आधारित है, वहाँ भी व्यक्ति का समान वितरण अर्थ नहीं है। वहाँ भी आर्थिक वर्ग भेद मिलते हैं।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जो सामाजिक विषमता के मूलभूत कारण हैं और जिनके रहते हुये समाज में परस्पर, निरन्तर, संघर्ष चल रहा है। संघर्ष वस्तुतः सम्पन्न तथा अभाव ग्रस्त वर्गों के बीच है

और पूरे संसार में सर्वत्र इसी कारण टकराहट की स्थिति देखी जा सकती है। भारत,-पाकिस्तान, भारत-श्रीलंका, भारत-नेपाल, भारत-बाम्गलादेश, भारत-चीन, ईरान-ईराक, इजरायल, फिलिस्तीन, अजरबैजन, आर्मीनिया, यू०एस०ए०, पनामा, रोमानिया, युगोस्लाविया, चिकोस्लाविया, पूर्वी जर्मनी, दक्षिणी अफ्रीका, आदि सर्वत्र राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, असामान्यताओं और विसंगतियों के कारण टकराव की स्थिति बनी हुई है। तात्पर्य ये है कि, मूल्यों और आदर्शों को लेकर पूरे विश्व में संघर्ष की स्थिति चल रही है। कई बार तो ऐसा लगता है कि, आधुनिक मनुष्य जो अपने को सभ्य और सुसंस्कृत मानता है वह व्यावहारिक स्तर पर पशु संस्कृति से बहुत भिन्न नहीं है। यदि अतियुक्ति न समझा जाय तो कदाचित् अपनी अतिशय बौद्धिकता के कारण यथार्थ के स्तर पर मनुष्य पशुओं से कहीं गया गुजरा नजर आता है। सम्भवतः इसीलिये आज का मनुष्य यह मानने में संकोच नहीं करता कि, वर्तमान समय में मूल्य ध्वस्त हो चुके हैं उनका महत्व समाप्त हो चुका है। "वैसे आदर्श के स्तर पर मूल्य है.... यह भी माना जा सकता है"।

मूल्यों को एकदम नकारा नहीं जा सकता । अधिक से अधिक हम यह कह सकते हैं कि, मूल्य संक्रमण की प्रक्रिया में है, मनुष्य जीवन को जीने योग्य बनाने के लिये सम्भवतः नये मूल्यों के तलाश में लगा हुआ है।

"परिभाषा एवं स्वरूप"

जीवन को उत्कर्ष की ओर ले जाने के लिये उसे सही अर्थों में प्रगतिगामी बनाने के लिये मूल्यों की आवश्यकता अनुभव की गई है। "जीवन को सम्यक् एवं संयमित ढंग से चलाने के लिये विचारकों ने ऐसा अनुभव किया कि, जीवन

के लिये कुछ मापदण्ड रहना चाहिये। उन्हीं के आधार पर मूल्यों की बात की जाने लगी और जीवन की आंतरिक एवं बाह्य आवश्यकताओं के आधार पर कुछ कसौटियाँ बनाई गईं।[2] ये कसौटियाँ या मान्यताएँ ही मूल्य हैं।

डा० जगदीश गुप्त के मतानुसार "मूल्य, अपने आपमें एक धारणा (कान्सेप्ट) है"[3]

"मूल्य एक ऐसी वस्तु है जिसको पूरी तरह से परिभाषित नहीं किया जा सकता है।"[4]

वस्तुतः मूल्य वैयक्तिक प्रतीति पर आधारित है। ~~वैयक्तिक प्रतीति पर आधारित है।~~ वैयक्तिक प्रतीति भिन्न भी हो सकती है। चूँकि हर व्यक्ति के देखने की दृष्टि भिन्न होती है, इसीलिये निष्कर्ष भी भिन्न होते हैं। व्यक्ति से ही मूल्य अन्य दिशगामी होते हैं, क्योंकि मनुष्य वह इकाई है, जिससे समाज और विश्व का निर्माण हुआ है। मूल्य का समग्र परिवेश परिभाषा के सीमित दायरे में अभिव्यक्त करना इसीलिये जटिल है, कि वह वैयक्तिक प्रतीति पर आधारित होता है। "वैयक्तिक प्रतीति के मूल्य बोध का एक आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य आधार मानना होगा।"[5] अस्तु मूल्य निर्धारण में वैयक्तिक प्रतीति प्रमुख है। डा० रघुवंश ने लिखा है: "हर युग अपने व्यापक मनोभाव और सर्जन की क्षमता अथवा आंतरिक आवश्यकताओं के अनुसार इन मूल्यों की प्रक्रिया की सीमा तथा दिशा को निर्धारित भी करता है। व्यापक रूप से इसे सांस्कृतिक मूल्य दृष्टि अथवा, युग की निजी सर्जनात्मक प्रतिभा कहा जा सकता है।"[6]

वस्तुतः मूल्य और कुछ नहीं, व्यक्ति द्वारा उपादानों की प्राप्ति का मानदण्ड ही है, जो यह प्रदर्शित करता है कि, जीवन कैसा होना चाहिये, अस्तु, जीवन की सार्थकता मानव मूल्यों को स्वीकारने में ही निहित है।

इस दृष्टि से उन्हें ही जीवन के मूल्य माना जाना चाहिये जिससे मानव का उत्कर्ष सम्भव हो।"[7] जीवनोत्कर्ष के लिये मूल्य अनिवार्य है। जीवनोत्कर्ष के लिये भिन्न भिन्न साधन प्रयुक्त किये जाते हैं। ये ही व्यक्ति की विविध धारणायें हैं, जिससे मूल्यों में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इन मान्यताओं और धारणाओं को स्टीफेन ने अपनी पुस्तक में व्यापक रूप से प्रदर्शित किया है, जिसके आधार पर मूल्य का निर्धारण किया जा सकता है।[8]

कहीं मूल्य सुख दुःखों पर आधारित होता है तो कहीं यह इच्छा (डिजायर) का विषय है। कहीं पर इसे भावना (फीलिंग) से सम्बद्ध माना गया है, तो कहीं यह रुचि (इन्ट्रेस्ट) का विषय है। कहीं यह मूल्यांकन का आधार है, कहीं यह सत्य के रूप में है, तो कहीं यह शिव के रूप में।[9] इसीलिये "मूल्य" स्पष्ट नहीं हो पाता। "सुखवादी कहते हैं कि मूल्य वह जो मनुष्य की इच्छा को तृप्त करे। विकासवादी कहते हैं कि, मूल्य वह है कि, जो जीवनदायक है और पूर्णतावादी कहते हैं कि, मूल्य वह जिससे आत्म भाव का विकास हो।[10] यह विभिन्न मूल्यों के आश्रय को भिन्न भिन्न मानने से ही उत्पन्न हुआ है क्योंकि "सुखवादी मूल्य का आश्रय सुख भावना को मानते हैं तो विकासवादी और पूर्णतावादी क्रमशः जीवन और आत्मा को।"[11]

8- The sources of value - "In the broadest sense anything good or bad is a value. Among such things have been considered, pleasures and pains, desire, wants and purposes, satisfactions and frustrations, preferences, utility, means, conditions and instruments, correctness, and incorrectness, integration, and dis-integration, character, vitality, self-realisation, health, survival, evolutionary, fitness, adjustability, individual freedom, social solidarity, law, duty, conscience, virtues, ideals, norms, progress, righteousness and sin, beauty and ugliness, truth and error, reality and un-reality."

Stephen C Pepper, P.V.

मानव मूल्य शब्द आधुनिक काल में एक लोकप्रिय शब्द बन चुका है, जिसके सन्दर्भ में पाश्चात्य विद्वान एवं आधुनिक भारतीय विद्वानों ने विभिन्न दिशाओं में विभिन्न दृष्टियों से पर्याप्त विचार किया है।

मूल्यः परम्परागत भारतीय दृष्टि

प्राचीन भारतीय मनीषियों ने मानव मूल्य के सन्दर्भ में पुरुषार्थों की कल्पना की है। पुरुषार्थ वस्तुतः संस्कृति का ही अंग है, और संस्कृति जीवनोत्कर्ष या दूसरे शब्दों में मानव मूल्यों की रचना का मुख्य हेतु है। डा० देवराज ने मानव मूल्यों के सन्दर्भ में संस्कृति की विवेचना करते हुये अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है... "किसी व्यक्ति की संस्कृति वह मूल्य चेतना है, जिसका निर्माण उसके सम्पूर्ण बोध के आलोक में होता है। मनुष्य लगातार जीवन की नई सम्भावनाओं का चित्र बनाता रहता है। यह संभाव्य चित्र ही वे मूल्य हैं, जिनके लिये वह जीवित रहता है जिन आदर्शों एवं मूल्यों को लेकर मनुष्य जीवित रहता है, उसकी गरिमा और सौन्दर्य उस मनुष्य के सांस्कृतिक महत्व का माप प्रस्तुत करते हैं।[12] इस प्रकार प्रकारान्तर से संस्कृति को जीवन निर्माण का अर्थात् मानव मूल्यों के उदय का स्रोत माना गया है। हमारी दृष्टि में भी जीवन के विकास के लिये जिन मूल्यों की चर्चा की जाती है, उसका आधार संस्कृति ही है। इसीलिये मानव मूल्यों की चर्चा के सन्दर्भ में संस्कृति एक आवश्यक आदान है।

वस्तुतः पुरुषार्थ भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत जीवन के सही दिशा की ओर ले जाने का आधार है। "पुरुषार्थों की धारणा प्रस्तुत कर भारतीय चिंतकों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की जीवन में महत्ता प्रतिपादित की है। ये ऐसे जीवन मूल्य हैं जो प्रत्येक युग में रहे हैं और जीवन इनके आधार पर आधारित होता है।"[13] मानव जीवन का उद्देश्य इन्हीं पुरुषार्थों या मूल्यों की

प्राप्त करना है, यही जीवन की सार्थकता है। इसीलिये मनुष्य जीवन की सार्थकता है। इसीलिये मनुष्य जीवन के विकास के लिये पुरुषार्थ आवश्यक मूल्य हैं।

भारतीय चिंतकों के अनुसार "धर्म प्रथम पुरुषार्थ है। इसे भारतीय चिंतकों ने सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है तथा इसे अन्य तीनों पुरुषार्थों के साथ संयुक्त किया है। धर्म के अभाव में शेष पुरुषार्थ अर्थात् अर्थ, काम और मोक्ष की कोई स्थिति या गति नहीं है, यह सत्य ही है। यह "धृ" धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ धारण करना, बनाये रखना एवं पुष्ट करना होता है। यह एक महत्वपूर्ण अंग है जो जीवन के सिद्धान्तों को नियत करता है। इसके आचरण से मनुष्य जीवन सफलता के सोपानों पर चढ़ता है। डा० राधा कृष्णन का कहना है कि, धर्म परम मूल्यों में विश्वास और उन मूल्यों को उपलब्ध करने के लिये जीवन की एक पद्धति का प्रतीक होता है।"[14] यह नैतिक व्यवस्था को जन्म देता है जिसका परिणाम आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों का उदय है।

"धर्म" का प्रसार व्यापक है। यह एक महान् मानव मूल्य है जो आस्तिकता, कर्तव्य, प्रेम (व्यक्ति एवं देश के प्रति) स्वतन्त्रता, मर्यादा, आस्था, सेवा विश्वहित आदि कई मूल्यों को जन्म देकर मानव जीवन को महत्‌× के संकल्पों से पूर्ण करने के लिये प्रेरित करता है।

"अर्थ" द्वितीय पुरुषार्थ है। इसे मानव जीवन के बाह्य मूल्यों में परिगणित किया जाता है। इसका सामान्य अर्थ भौतिक सुखों और आवश्यकताओं की पूर्ति के सन्दर्भ में है। अर्थ प्राप्ति मनुष्य की प्रधान एषणाओं में से एक है। यदि इसके अर्जन में धर्म को सहायक नहीं बनाया गया तो यह पुरुषार्थ या मानव मूल्य नहीं व्यक्ति का हित समाहित

करते हुये उसे जीवनोत्कर्ष प्रदान करता है, वहाँ वह व्यक्ति को निम्नस्तरीय बनाकर मानवीयता से रहित कर सकता है। मूलतः "अर्थ" मनुष्य को इहलौकिक सम्पन्नता प्रदान करता है, इसीलिये यह एक महत्वपूर्ण मानवमूल्य बन गया है। आधुनिक युग में तो इसने मानव मूल्यों में महत् स्थान प्राप्त कर लिया है।

"काम" तृतीय पुरुषार्थ (मानवमूल्य) है अपने संकुचित अर्थ में "काम" मात्र इन्द्रिय सुख या यौन प्रवृत्तियों की सन्तुष्टि ही है, जबकि विस्तृत अर्थ में यह मनुष्य की समस्त प्रवृत्तियाँ, इच्छाओं तथा कामनाओं का प्रतीक है। आचार्य वात्स्यायन ने इसके सन्दर्भ में कहा है कि, आत्मा से संयुक्त, मन से अधिष्ठित "काम" कान, त्वचा, आँख, जिह्वा तथा नाक पाँच ज्ञानेन्द्रियों का इच्छानुकूल अपने अपने विषयों में प्रवृत्त होना काम है।"[15] इसे धर्म से युक्त माना गया है।

गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है - "धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।" (7:11) अर्थात् मैं वही काम हूँ जो धर्म के विरुद्ध नहीं है।

इस प्रकार काम का महत्व महान है। किन्तु आधुनिक युग में काम का महत्व एवं स्वरूप विकृत होता जा रहा है। यह अपना प्राचीन गौरव त्यागकर संकुचित हो गया है जिसका कारण उसका धर्म से विरहित होना है। फिर भी जीवन में उसकी आवश्यकता बनी हुई है, इसीलिये "काम" मानव जीवन के महत् मूल्यों में परिगणित किया गया है।

"मोक्ष" चतुर्थ पुरुषार्थ है जिसे जीवन में सर्वोच्च माना गया है। यह साध्य मूल्य के रूप में मान्य है, जबकि अन्य तीन पुरुषार्थ साधनात्मक मूल्य

15- श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानामात्मसंयुक्तेन मनसाधिष्ठितानां स्वेषु स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यतः प्रवृत्तिः कामः ।' कामसूत्र - 1:2:11

की कोटि में परिगणित होते हैं। साधारणतः इसका अर्थ जीवन मुक्ति है और इस जीवन मुक्ति को मृत्यु कहा जाता है। किन्तु ऐसा नहीं है।

डॉ० हुकुम चन्द ने लिखा है.."मूलतः मोक्ष से आवागमन के बन्धन से मुक्ति का अर्थ लेना इसे मात्र मृत्यु के पश्चात् ही प्राप्त जीवन मूल्य (पुरुषार्थ) मानना होगा। जीवन मुक्ति (मोक्ष) का वास्तविक अर्थ इसी जीवन से सम्बन्धित है। जीवन में सभी प्रकार की स्वतन्त्रता (किसी के बंधन में न होना) ही मोक्ष है। जीवन के पश्चात् मोक्ष की बात करना उसे मूल्यों की कोटि से च्युत करना होगा।"[16]

मोक्ष एक ऐसा मूल्य है जिसके उपरान्त व्यक्ति के लिये कुछ भी पाने की इच्छा शेष नहीं रहती है। यह मानव जीवन के आत्मिक विकास का चरमोत्कर्ष है।

प्राचीन भारतीय मनीषियों के द्वारा इन पुरुषार्थों को अत्यधिक महत्व प्रदान किया है। ये ही जीवन के सर्वोच्च मानव मूल्य कहे जा सकते हैं जो कि, मानव का हित सम्पादित कर उसके जीवन को सफल बनाते हैं। वस्तुतः भारतीय मनीषियों की मानव मूल्यों के प्रति उत्पन्न यह चिन्तनधारा अपने आप में अनूठी तथा अक्षय है। उनके चिंतन की दिशा पुरुषार्थों के माध्यम से मनुष्य को जीवन के शाश्वत सत्यों से परिचित कराती है।

कवि "दिनकर" की दृष्टि में मूल्यों का समाजशास्त्रीय व महत्व है। समाज में प्रचलित नियमों और सिद्धांतों ने सभ्यता को जन्म दिया है, यही सभ्यतामूल्यों की रचना करती है। जिसका महत्व तब तक नहीं होता जब तक वे जीवन के अंग नहीं बन जाते। उनकी दृष्टि में मूल्य आचरण के सिद्धान्तों को कहते हैं। वे लिखते हैं..."जो मूल्य वाणी की शोभा है, आचरणों के आधार नहीं, वे अगर व्यर्थ मान लिये जायें तो इसमें आश्चर्य

ही क्या है।"[17]

वस्तुतः सैद्धान्तिक संगति के लिये रचे गये मूल्य, मूल्य नहीं है। उनका महत्व तब ही है जब वे व्यावहारिक संगति के लिये स्वयं को योग्य बनाते हैं तबतक उनका प्रयोजन नगण्य है, निरर्थक है। यह सत्य है कि, व्यावहारिक संगति के लिये मूल्य सर्व प्रथम सैद्धांतिक संगति के अंग बनते हैं। जबकि व्यक्ति विभिन्न विकल्पों को या तो स्वीकृत करता है या उनका विरोध करता है। स्वीकृत का आचरण करता है या उसे परस्पर सभी के बीच ग्राह्य बनाने का यत्न करता है।"[18] इन्हीं ग्राह्य मूल्यों को वस्तुतः मूल्य कहा जा सकता है।

यह मानवीय हित से युक्त समाज व्यापी दृष्टि है। इस स्थिति में वैयक्तिक मूल्यों का गौरव तब तक नहीं आँका जाता जबतक वे सामाजिक मूल्यों से अपनी संगति नहीं बैठा लेते। मूल्य संदर्भ में दिनकर की यही दृष्टि है, इसीलिये मूल्यों को परिभाषित करते हुये उन्होंने लिखा.. "मूल्य वे मान्यताएं हैं जिन्हें मार्गदर्शक ज्योति मानकर सभ्यता चलती रही है और जिसकी उपेक्षा करने वालों को परम्परा अनैतिक, उच्छृंखल या बागी कहती है। किन्तु कभी कभी ऐसा भी होता है कि, पुराने मूल्यों को मिटाकर उनकी जगह नये मूल्यों की प्रतिष्ठा करने वाले व्यक्ति भगवान बन जाते हैं।"[19]

वस्तुतः मूल्यों का यह संघर्ष वैयक्तिक विचारों और इच्छाओं का संघर्ष है, जिससे व्यक्ति की मान्यताएं बदलने लगती हैं। संस्कृति एवं समाज की मूल्य संबंधी दृष्टि को राबे लेकर ने अपने लेख में स्पष्ट करते हुये लिखा है... "प्रत्येक समाज की चाहे वह नवीन हो या प्राचीन, आधुनिक हो या आदिवासी अपनी संस्कृति होती है।

प्रत्येक समाज में कुछ विश्वास कुछ रीतियाँ और कुछ रिवाज होते हैं। ये विश्वास तथा रीति रिवाज उस संस्कृति का एक अंग बन जाते हैं। समाज का कोई भी सदस्य उनसे हट कर नहीं रह पाता। विश्वासों और रीति रिवाजों का आधार कुछ पूर्वगामी घटनाएँ होती हैं तथा कभी कभी दैविक विश्वास भी होता है। समाज और उसकी संस्कृति का अंग होने पर ये एक अमूर्त रूप ले लेते हैं, यही अमूर्त रूप मूल्य बन जाते हैं।[20]

राज शेखर के इस मत से यह व्यक्त होता है कि, समाज में प्रचलित विश्वास एवं रीति रिवाज ही अमूर्त रूप में मूल्य है। समाज में रहकर मूल्य दायित्वों एवं संस्कारों का तत्व बन जाता है, क्योंकि सामाजिक मनुष्य की चिंतन प्रक्रिया इन्हीं सन्दर्भों के मध्य से गुजरती है।

डा० श्रीराम नागर ने मनुष्यत्व के गुणों को मूल्य मानते हुये प्रदर्शित किया है कि, इन गुणों को प्राप्त करने के लिये प्रेरित होने की प्रक्रिया मूल्य प्रक्रिया या मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया है। उन्होंने लिखा है कि... "मनुष्य के मनुष्यत्व को सिद्ध करने वाले ऐसे अनेक गुण या तत्व होते हैं, जिनके अभाव में उन तत्वों की अपेक्षिता कम नहीं होती, बल्कि और बढ़ जाती है तथा मनुष्य उन्हें प्राप्त करने के लिये प्रेरित होता रहता है। सत्य, दया, स्नेह, परोपकार आदि ऐसे अनेक गुण हैं। जो मानव के मूल्य का निर्धारण करते हैं।[21]

डा० महावीर दाधीच का मत पूर्वापर से इसी तरह का है। उन्होंने लिखा है..."किसी वस्तु का इंद्रियों से संपर्क चेतना में कुछ अनुकूल प्रतिकूल अथवा प्रतिक्रियाजन्य संवेदना उत्पन्न करता है। यही अनुभूति है। संवेदनों की अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता के प्रत्यक्ष रूप बनते ही धनात्मक अथवा ऋणात्मक गुण उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार चेतना उस वस्तु को गुणीभूत बना लेती है।

उसे अंकुरित कर लेती है। इन गुणों का वस्तु में आरोप होता है। ये गुण ही मूल्य की प्रारम्भिक अवस्था है..।"[22]

डा० दधीच ने गुणों को मूल्यों का निर्णायक बताया अवश्य है किन्तु यह अवस्था वैयक्तिक धरातल पर ही होता है। जैसे जैसे अन्य परिवेशों से उसका साक्षात्कार होता जाता है, मूल्यगत परिप्रेक्ष्य भी व्यापक होने लगता है। वस्तुतः मूल्य हृदय और बुद्धि अर्थात् भाव और विचारों का एकीकृत रूप ही है या यों कहें कि ऐसे विचारों जो भाव संयुक्त हों, मूल्य होते हैं। डा० दाधीच ने लिखा है.."चेतना अनुभूति से प्रत्यय का निर्माण ही नहीं करती प्रत्यय को अनुभूति भी बनाती है। ऐसे प्रत्यय (आइडिया) मूल्य होते हैं।"[23]

रामदरश मिश्र मूल्यों की सृष्टि में तथ्य जगत को प्रमुख मानते हुये लिखते हैं..."तथ्य जगत के बीच हम जीते हैं, तथ्य जगत हमारे साथ रागात्मक संबंध जोड़ते रहते हैं। ये केवल हमारे राग बोध और सौंदर्य बोध को ही प्रभावित नहीं करते, नये मूल्यों की सृष्टि भी करते हैं। नये नये तथ्य जगत के सामने आते रहते हैं। ये तथ्य धीरे धीरे हमारे जीवन के सम्बन्धों में घुलते जाते हैं और मन को तथा जीवन मूल्यों को प्रभावित करते रहते हैं।"[24]

श्री मिश्र ने मूल्यों का संबंध तथ्यों से जोड़ा है। प्रो० चाँदमल ने तथ्य और मूल्यों को एक नहीं माना है। वे यह नहीं मानते कि, मूल्यों की सृष्टि तथ्य जगत का परिणाम है। उन्होंने लिखा है कि, "तथ्य और मूल्य के सम्बन्ध की संतोषजनक व्याख्या न तो मूल्यों की स्वतंत्र सत्ता मानने से ही हो सकती है और न उन्हें तथ्यों का रूपान्तरण कहने से। मूल्यों का तथ्यों की तरह अस्तित्व मान लेने से केवल तात्विक द्वैतवाद ही उत्पन्न नहीं होता

अपितु इससे द्वैतवादी मनोविज्ञान की भी उत्पत्ति होती है। एक और तथ्य जगत है जो मनुष्य के इंद्रिया अनुभव और नैतिक जीवन को नियमित करता है।"25

प्रो0 वाँटमन का यह कथन सत्य है कि, तथ्य और मूल्य दोनों भिन्न भिन्न जगत हैं तथा मूल्य तथ्यों का रूपांतरण नहीं हो सकता। किन्तु मूल्यों की सृष्टि में तथ्य जगत का सहयोग अवश्य रहता है। मूल्यों के निर्माण में तथ्य जगतअर्थात् संसार के अतिरिक्त व्यक्ति की अंतश्चेतना का समन्वय आवश्यक है। किन्तु इससे तथ्य जगत को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उसकी महत्ता है कि, रागात्मकता से युक्त होकर मूल्यों का संविधान करती है। मूल्यों के परिवर्तन में इस तथ्य जगत के परिवर्तन विशेष रूप से प्रभावशाली रहते हैं।

इसी संदर्भ में रामदरश मिश्र ने लिखा है... "मूल्यों का बोध रचना के तात्कालिक जीवन संदर्भों से प्राप्त होता है। बहुत सी मान्यताएँ, मूल्य मान्यताएँ, किसी युग में आकर पुरानी पड़ जाती हैं, सारहीन सिद्ध हो जाती हैं। युग नये मूल्यों की खोज करता है, नये जीवन दर्शन बनते हैं। जागृत संवेदना और विवेचना शक्ति सम्पन्न बुद्धि इन मूल्यों की संक्रान्तियों की चेतना का अनुभव करती है, नये मूल्यों की खोज करती है।"26

ये बदलती हुई मान्यताएँ जिनका व्यापक आधार होता है, मूल्यों में परिवर्तन उपस्थित करती है तथा नये मूल्यों की रचना करती है। रघुवीर सिंह ने लिखा है... "परिवर्तन समाज और काल का अटल नियम है, पुराने विचार मान्यताएँ नये समाज का जहाँ ढाँचा बदलता है वहाँ नये मूल्यों की

स्थापनायें भी स्वाभाविक ही हो गई हैं। नये मूल्यों की स्थापना से जीवन को देखने की हमारी दृष्टि में भी परिवर्तन अवश्यंभावी हो गया है। जीवन के प्रति हमारा दर्शन भी बदला है। एक प्रकार से जीवन दर्शन को नये धरातल पर लाकर नई व्याख्याओं द्वारा समझा जा रहा है।"[27]

यह परिवर्तन युग की सहज देन ही कही जायेगी। मूल्यों के आधार पर ही सभ्यता और संस्कृति का संगठन होता है और सभ्यता तथा संस्कृति में होने वाले परिवर्तन मूल्य को प्रभावित करते हैं इस प्रकार दोनों का सापेक्ष सम्बन्ध है।

मूल्य मानवीय इच्छा को तुष्ट करते हैं। मानवीय इच्छा देशकाल के अनुसार बराबर बदलती रहती है, क्योंकि मानवीय इच्छा व्यक्ति की इच्छा से पोषित होती है। अतः परिवर्तन के क्रम के अनुसार मानव मूल्यों में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक ही है। मनुष्य के जीवन के अस्तित्व का प्रश्न एवं उसकी प्रगति का संदर्भ युगानुसार बदला है। अतः जहाँ एक ओर प्राचीन मूल्य मान्यताओं को वरीयता प्रदान की गई है, वहाँ मानवीय इच्छा को बदलते हुये युग में तुष्टि प्रदान करने के लिये नये मूल्यों की जो जीवन को उत्कर्ष की ओर ले जाय.. संरचना की गई है।

प्रारम्भ में इनकी अवस्था व्यक्ति केन्द्रित होती है, किन्तु इनके लाभदायी स्वरूप एवं सार्थकता को दृष्टिगत रखकर वे मानव समुदाय के द्वारा स्वीकृत होकर व्यक्ति मूल्य से मानव मूल्य बन जाते हैं।

मानव मूल्य मानव अस्तित्व से जुड़ा हुआ अनिवार्य विषय है, जिसमें मानवीय हित एक महत्वपूर्ण तथ्य है।

योगेन्द्र सिंह ने इसीलिये लिखा है.. "मानव मूल्य, मानव अस्तित्व की अनिवार्यता से सहज रूप से सम्बद्ध है। मानव स्थायित्व के लिये प्रयुक्त विभिन्न संस्कारों, घटनाप्रवाहों, सामाजिक दायित्वों के वैचारिक ग्राह्य के अतिरिक्त मानव मूल्यों का कोई अर्थ नहीं है।"[28]

वस्तुतः मानव मूल्य मानव अस्तित्व की व्याख्या करते हैं। यही इनका संदर्भ है। इसी संदर्भ को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है.. "मानव मूल्यों के सन्दर्भ में वस्तुगत आग्रह एवं वैचारिक ग्राह्यता या अनाग्रह का मध्य बिन्दु सामूहिक उपयोगिता है। सामूहिक उपयोगिता व्यक्ति के सामूहिक उपयोगीकरण है। अस्तित्व भी सबसे प्रबल साक्षी है। दूसरे शब्दों में मानव मूल्य मानव अस्तित्व की व्याख्या करता है। इसके अतिरिक्त मूल्यों का कोई सन्दर्भ नहीं है।"[29]

इस प्रकार मानव अस्तित्व एक तरह से मनुष्यता व या मानवीयता को ही व्यक्त करता है। इसी मानव संवेदनाओं को मानव मूल्य के निर्धारण का आधार बनाना सहज ही है। डा० जगदीश गुप्त के शब्दों में .. "बिना मानवीय संवेदनाओं को केन्द्र में रखे मूल्य की कल्पना नहीं की जा सकती। मूल्यों की प्रतिष्ठा का अर्थ मानवता एवं मानवीयता की प्रतिष्ठा है। उसके बिना मानवीय अस्तित्व निरर्थक है। इससे भिन्न रूप में मानव मूल्य की कल्पना मैं नहीं कर पाता हूँ।"[30]

जब हम मानवीय संवेदना की बात करते हैं तो उसका अर्थ यही होता है कि, हम मानवीय अंतरात्मा की बात करते हैं। "अंतरात्मा वस्तुतः आधुनिक संदर्भ में मानवीय गौरव के प्रति हमारी जागरूक संवेदना का पर्याय है

और मानवीय गौरव की प्रतिष्ठा इसी में है कि, मनुष्य को हम विवेक और संकल्प शक्ति से युक्त इतिहास का निर्माता और अपनी नियति का अधिनायक मानें।"[31]

यह अंतरात्मा ही मानव अस्तित्व की रक्षा करती है। मानवीय गौरव को प्रतिष्ठित करती है तथा मानव मूल्यों का सृजन करती है। अतः मानव मूल्यों के सृजन में अंतरात्मा एक अनिवार्य तत्व है। इस अंतरात्मा के निकट रहने रहने वाले या अंतरात्मा को स्पष्ट करने वाले गुणों को हम मानव मूल्य कह सकते हैं। डा० जगदीश गुप्त ने मानव मूल्य की परिभाषा देते हुये इसी तथ्य को स्वीकार किया है। उनका मत है.."मानव मूल्यों का तात्पर्य उन मूल्यों से है जो मानव के आंतरिक सत्व स्वरूप के सबसे निकट प्रतीत होते हैं। तथा उसके संवेदनात्मक व्यक्तित्व से सबसे अधिक सीधे और सहज रूप से संबद्ध हैं। उनकी विशेषता इसी में है कि, मानवीय संवेदनाओं की उनमें मुक्त और उदार स्वीकृति है।"[32] इस प्रकार मनुष्य के संवेदनात्मक व्यक्तित्व से मानव मूल्यों का घनिष्ठ संबंध है।

सुमित्रानन्दन पंत की दृष्टि में मूल्यों का सामाजिक महत्व है। पंत ने मूल्यों के लिये समाज को आधार मानकर बताया कि, मानवीय मूल्य अन्य सभी मूल्यों की अपेक्षाकृत बड़े हैं। उन्होंने लिखा है .."जितने भी मूल्य हैं, उनकी पीठिका सिर्फ समाज ही हो सकता है, क्योंकि व्यक्ति का विकास तो समाज की दिशा में होता है चाहे वे सामाजिक मूल्य हों, चाहे वैयक्तिक मूल्य हों, वे मानव मूल्य हैं या नहीं? ये उस सत्य को वाणी देते हैं या नहीं जो कि मनुष्य का सत्य है। चाहे वह व्यक्ति के रूप में हो चाहे समाज के रूप में मानवीय या सत्य एक ही है।"[33]

पंत जी की दृष्टि में मानवीय मूल्यों का संबंध मानवीय क या मनुष्य के सत्य से है। सत्य के संबंध में यह प्रचलित है कि, वह देश काल निरपेक्ष होता है,

युगीन परिवेश में स्थायी महत्व का होता है, मनुष्य का सत्य वही है जो उसकी अंतरात्मा का सत्य है। इस प्रकार मानव मूल्यों के निर्धारण में अंतरात्मा का योगदान सक्रिय रूप में है।

"साहित्य कोष" में मानव मूल्यों की इसी तरह की महत्ता को स्थापित किया गया है। वैयक्तिक और सामाजिक मूल्यों को स्पष्ट करते हुये "साहित्य कोष" में बताया गया है कि, मानव मूल्य इन सभी मूल्यों से ऊपर की स्थिति है।

साहित्य कोष" के अनुसार मनुष्य चूंकि पहले व्यक्ति है, इकाई है, उसके अपने कुछ मूल्य होते हैं परन्तु व्यक्ति मनुष्य एक महत्तर मानव समाज का परिवार, नगर, प्रदेश, प्रान्त, राष्ट्र या संसार का सदस्य नागरिक, सामाजिक विशेष होकर समाज्य अंग भी है। अतः उसके प्रत्येक विचार, कर्म और कल्पना में मूल्य का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। इन सब विविध मूल्यों के बाद भी एक बड़ा मूल्य बचा रहता है जो एक प्रकार से इनका समन्वय सार है और वह है मानव मूल्य।"[34]

"साहित्य कोष में लिखा हुआ है। "अन्ततः वे व्यक्ति मूल्य ही प्रधान है जो समाज मूल्य के विरोधी न होकर उसके पोषक हों, वे ही सच्चे मानवीय मूल्य हैं।"[35] इस प्रकार वैयक्तिक मूल्यों में तो आपस में विरोध उत्पन्न हो सकता है किन्तु श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों में चाहे वे किसी भी स्तर के हो, विरोध नहीं होता, वे ही महान हैं।

मानव मूल्य अंतरात्मा से उत्पन्न मानवीयता का पोषण करने वाले मनुष्य के ऐसे महान गुण है जिसमें मानव प्रकृति से तादात्म्य प्रदर्शित कर जीवन को मानवीय हित के महत्तम संकल्प के लिये प्रेरित करने के भाव निहित है।

इन मानव मूल्यों की महत्ता मनुष्य के क्रियाशील जीवन में ही अभिव्यक्त होती है क्योंकि जब तक उन्हें आचरण का अंग नहीं बनाया जाता, तबतक इनका अस्तित्व नगण्य है। अस्तु, आचरण के अंग बनकर मानव मूल्य मानवोत्कर्ष में सहायक होते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों ने मूल्य के सन्दर्भ में विभिन्न प्रकार की मान्यतायें प्रस्तुत की है, वे नीतिशास्त्र एवं समाजशास्त्र की दृष्टि से निर्मित हैं। मानवीय मूल्यों के सन्दर्भ में नीतिशास्त्रीय दृष्टि स्पष्ट करते हुये "इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका" में लिखा गया है कि, ये मूल्य जीवन के अस्तित्व एवं उसकी प्रगति के सन्दर्भ में व्याख्यायित होते हैं।"[36] मूल्य के सन्दर्भ में किया गया यह चिंतन व्यापकत्व लिये हुये है। समाज शास्त्रियों की दृष्टि में मूल्य सामाजिक विषय का एक अंग बन जाता है।"[37] जोसेफ एच. फीचर ने मूल्य को समाजशास्त्रीय दृष्टि से परिभाषित करते हुये माना है कि, समाजशास्त्र में मूल्यों की परिभाषा ठीक उसी प्रकार की जाती है, जिस प्रकार समूह या समाज के मनुष्यों, उसके सिद्धान्तो, उसके लक्ष्यों तथा अन्य सामाजिक संस्कृति विषयक तत्वों से निर्णीत किया जाता है।"[38]

36- Encyclopadia Brilannica - Values are defined in terms of survival and enhancement of life;

Vol.22 P.962

37-Sociology - A synopsis of principles - Values are part of the subject matter of Sociology."

John F.Cuber,P.47

38-Sociology - Joseph H.Fichter, P.293 to 294.

उनकी दृष्टि में मूल्य वे मापदंड हैं जो संस्कृति एवं समाज को अर्थ एवं महत्व प्रदान करते हैं।"[39] जोसेफ की दृष्टि से व्यक्ति प्रधान नहीं होता है, अपितु समाज प्रधान है। इसीलिये मूल्य प्रधान नहीं है, बल्कि उनका मानवीय हित से सम्बन्ध ही प्रधान है।"[40] हेरिक मानवीय मूल्यों को सामाजिक सन्दर्भों में रखना उचित समझते हुये अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं.यह सच है कि, मानवीय मूल्य सामाजिक चौखटे में रखे जाते हैं।"[41]

पॉल ने मूल्यों पर विचार करते हुये लिखा है "प्रत्येक मूल्य का अनुकूल एवं प्रतिकूल महत्व होता है। प्रत्येक वस्तु के मूल्य निर्धारण में बहुत से विषय और घटनाएँ, कृत्य और अनुभवों यहाँ तक कि, स्वयं मूल्य के प्रति भी हम बंधे हुये हैं। किसी भी वस्तु को स्वीकार करने में वे मूल्य कभी तो हमें

40- Ibid - It is anover simplification to say that values are important because people are important. It is true, incourse, that values have no scientific meaning for the Sociologist except in so far as they are connected with human being; P.294.

39- Ibid - 'Values therefore, are the criteria that give meaning and significancy to the total culture and society; P.294.

41-The Evolution of human nature - It is true that most human values are set in a social frame;

C.Judson Herrick, P.141.

सहयोग देतेम हैं और कभी हमारा विरोध करते हैं।"[42] इतना होने पर भी मुल्य का महत्व अवश्य है जिसके आधार पर मनुष्य अपने व्यवहार को निर्धारित करता है। पॉल के शब्दों में,. "मुल्य अपने विस्तृत या लघु महत्व को व्यक्त करता है, सामान्यतः जिसका सम्बन्ध व्यक्ति जीवन की किसी विशेष क्रिया या अनुभव के साथ जोड़ता है और इस प्रकार मुल्य मनुष्य के व्यवहार को मार्गदर्शन प्रदान करता है।"[43] पॉल भी मुल्य को वैयक्तिक धरातल की उपज मानता है तथा उसकी उपयोगिता प्रदर्शित करता है। जो सामाजिक धरातल पर होना भी सम्भव है।

42- Ethical values in the age of Science - Since each values has a positive and a negative form. We are bound to arrange everything - objects and events, actions and experiences, and even the value themselves in scales according to the degree to which every item contributes to, or prevents, the realization of a particular value; - paul Roubiczek, P.225-226

43- Ibid - A value expresses the significance great or small- which man ascribes to matters related to a particular activity or experience or to his life in general and thus provides him with guidance for his behaviour; P 219.

साहित्य और मानव मूल्य :

समाज या युग का बिंब होने कारण साहित्य में मानव मूल्य समाविष्ट होते हैं। दिनकर के शब्दों में .. "परिवेश वह वातावरण है जिसमें साहित्य लिखा जाता है और मूल्य वे नैतिक मान्यताएँ हैं, साहित्य जिनका समर्थन और विरोध करता है। विशेष प्रकार के परिवेश और मूल्यों के अधीन भी रचा गया साहित्य सभी परिवेशों, सभी मूल्यों का स्पर्श करता है।"[44]

साहित्य में मानव मूल्य की स्थिति महत्वपूर्ण है। साहित्य चूँकि युग विशेष का प्रतिनिधि होता है तथा युग विशेष के विचारों का निर्माणकर्ता पथप्रदर्शक भी होता है, इसीलिये मानव मूल्यों के सन्दर्भ में साहित्य का महत्व बढ़ जाता है। इन मानव मूल्यों और सृजन प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुये डा० जगदीश गुप्त ने लिखा है.. "किसी मूल्य का संप्रेषण तबतक सृजन प्रक्रिया में संभव नहीं है जब तक वह अनुभूति की स्पंदित भावभूमि पर अवतरित नहीं होता। जिन मानवीय अनुभवों के आधार पर वह मूल्य सामान्य जीवन में सिद्ध माना गया है, उन या उनके समानान्तर परिकल्पित वैसी ही अनुभूतियों की सजीव सृष्टि का सूत्रपात हुए बिना रचना प्रक्रिया में मूल्यबोध का समावेश असंभव है। साहित्य में वे मानव मूल्य ही प्रतिबिंबित एवं समाविष्ट हो पाते हैं जिनको साहित्यकार ने अपने अंतःकरण में धारण कर लिया है और जो उनके संवेदनशील व्यक्तित्व के अविभाज्य अंग बन चुके हैं। ऐसे मानव मूल्य साहित्य और कला में संश्लिष्ट होकर व्यक्त होते हैं। वे आरोपित प्रतीत नहीं होते।"[45] इन्हीं साहित्य के माध्यम से अवतरित मानव मूल्य कहा जा सकता है। डा० जगदीश गुप्तके उक्त कथन से निम्न निष्कर्ष निकलता है... "मूल्यबोध का अनुभूति से युक्त होना अनिवार्य है। मानवीय अनुभवों का साहित्य से मानव मूल्यों की दृष्टि से भी उतना ही महत्व हो जितना जीवन के मानव मूल्यों में है।

साहित्य में मानव मूल्य साहित्यकार की अंतरात्मा द्वारा स्वीकृत हों ।

इन तीनों स्थितियों से निष्पन्न मानव मूल्य साहित्य में स्वाभाविक मानव मूल्य कहे जा सकते हैं।

डा० जगदीश गुप्त के विचार सर्वथा उचित हैं । जब तक जीवन और साहित्यकार की रचना प्रक्रिया के तत्वों में मेल नहीं होगा, न तो रचना जीवंत हो सकेगी और न उसमें जीवनगत तत्वों का सहज स्वाभाविक रूप में समावेश हो सकता है।

मानव मूल्य की दो कोटियाँ हैं... एक तो अस्थायी मानव मूल्य तथा दूसरे स्थायी मानव मूल्य। अस्थायी मानव मूल्यों का अस्तित्व युगीन रहता है जबकि मानव मूल्य सार्वकालिक और सार्वभौम होते हैं। युगीन मानव मूल्य, स्थायी मानव मूल्य की अपेक्षा सीमित काल परिवेश में रहते हैं। इसलिये उनका महत्व भी कम होता है।

अस्थायी मानव मूल्य अक्षम रहते हैं, फलतः रचना की जीवन्तता स्थायी मानव मूल्यों के समावेश से बनी रहती है। साहित्य में युगीन मानव मूल्य इसीलिये एक अवधि के पश्चात् पुराना हो जाता है किन्तु स्थायी मानव मूल्य कभी पुराना नहीं होता । स्थायी मानव मूल्यों के समावेश से रचना या कृति भी पुरानी नहीं पड़ती और वह एक युग ही नहीं कालांतर में भी अपने महत्व को प्रतिष्ठित किये हुये रहती है।

श्री विष्णु सक्सेना का मत इस सन्दर्भ में इसी प्रकार का है.."एक युग के साहित्य में स्थायी मानव मूल्य का जो स्वरूप प्रतिष्ठित होता है, आगे

के युगों में उसकी सार्थकता समाप्त नहीं हो जाती क्योंकि आगे के युगों में प्रतिष्ठित होने वाला स्वरूप गत युगों के स्थायी मानव मूल्य का एक विकास मात्र ही होता है। अतः हमारी चेतना में निहित पूर्णता की भावना गत युगों की समान भावना में मूलबद्ध रहती है। यही कारण है कि, गत युगों का ऐसा साहित्य जिसमें स्थायी मानव मूल्य ध्वनित हुआ, हमें आगे के युगों में स्पंदित करता है। पूर्णता के आदर्श की नितांत उपलब्धि किसी भी युग को नहीं हो पाती फिर भी स्थायी मानव मूल्यों में अग्रिम विकास होता चलता है। इसीलिये वह नित्य नवीन रहता है।"[46]

साहित्य में जीवन की अभिव्यक्ति होती है। "अतएव मानव मूल्यों की स्थापना साहित्यकार से इस बात की अपेक्षा रखती है कि, वह साहित्यिक मूल्यों को भी उतना ही समादर करे जितने मानव मूल्यों को, क्योंकि तत्वतः दोनों एक ही हैं।"[47] व्यक्ति या साहित्यकार की संवेदना ही दोनों का निर्माण करती है, इसलिये दोनों को विभेद की दृष्टि से परखना, युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता ।

आधुनिक युग जो कि, अनेक प्रकार के संकटों से ग्रस्त है, साहित्य को भी अपनी परिवर्तनशील स्थिति में सहज रूप से मोड़ता जा रहा है। ऐसी स्थिति में साहित्य इसी प्रकार के संकटों से ग्रस्त हो रहा है। मानवीय मूल्यों का तिरस्कार करने पर साहित्य को पहचानने की रीति गलत हो जाती है तथा मिथ्या मान्यताओं का उदय होता है। निष्कर्ष यह होता है कि, साहित्य के सही स्वरूप का परिचय नहीं हो पाता और साहित्य प्रति लीक की ओर बढ़ने लगता है। साहित्य, जो मानवीय संस्कृति, सभ्यता एवं व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है तथा जो जीवन को आन्दोलित करने की या प्रेरित करने की क्षमता से सम्पन्न है, युग के सामने सही आदर्श नहीं रख पाता ।

उसकी उपयोगिता का ऐसी स्थिति में अवमूल्यन हो जाता है। इस सम्बन्ध में धर्मवीर भारती का मत दृष्टव्य है "मानवीय मूल्यों के सन्दर्भ में यदि हम साहित्य को नहीं समझते तो अक्सर हम ऐसी झूठी प्रतिमान योजना को प्रश्रय देने लगते हैं कि समस्त साहित्यिक अभियान गलत दिशाओं में मुड़ जाता है।"[48] इसका प्रभाव जीवन पर अवश्य पड़ता है, मानवोत्कर्ष के सोपान साहित्य के माध्यम से सामने आये और मनुष्य की आस्था को स्वाकार प्राप्त हो सके जो मानव मूल्यों पर आधारित है। मूल्य की अपेक्षा सीमित काल परिवेश में रहते हैं।

नैतिक के अमर सत्य मूल्य की प्रतिष्ठा का दायित्व साहित्य का है, समन्वय मूलक मूल्य की आवश्यकता है। निश्चय ही आदर्श मूल्य की प्रतिष्ठा साहित्य की पहली प्रेरणा है। आज जिस विधि से हमारी व्यवस्था चल रही है, उसमें एक मान्य मूल्य है राष्ट्र। नारा है कि "शान्ति के लिये युद्ध की तैयारी लाजिमी है" ऐसे ही अच्छे मकसद के नाम पर उठाये गये बुरे कदम भी सब अच्छे बन जाते हैं। इस तरह मूल्यों में बड़ी अव्यवस्था होती है।

राजनीतिक आवेशों और आवश्यकताओं के अधीन हम मानवोचित मूल्यों से जाने अनजाने भटक जाते हैं और उस कारण किसी प्रकार का विषाद भी अपने अन्दर पैदा नहीं होने देते हैं। क्योंकि तो उस आवेश में काम करते ही हैं और उन्हें किसी प्रकार का दोष नहीं दिया जा सकता। पर साहित्य को उन आवेशों से मुक्त रहना है। नहीं तो फिर कोई साधन नहीं रह जायेगा, जो उन आवेशों के क्षोभ के बीच मानव मूल्य को सुरक्षित रखे। शाश्वत मूल्य की प्रतिष्ठा वर्तमान के प्रति असावधान रहने से नहीं हो सकती।

तीर्थ धाम और तीर्थ पुरुष उनके दर्शन और चरित, इनसे भारतीय संस्कारों और मानव मूल्यों का निर्माण हुआ। फिर राजन्य वर्ग से उसी प्रकार के आचरण की अपेक्षा रखी गई। भारतीय मानस राजनीतिक उथल पुथल के अधीन गिरता उठता नहीं रहा, उसके मूल्य मानवीय रहे और प्रादेशिक और एकांकी नहीं बन पाये। सामयिक से अधिक ये नैतिक और शाश्वत रहे। इन मूल्यों को सकर्मक नहीं कहा जा सकता ।

राम और कृष्ण कोई वनवासी ऋषि नहीं थे और ये ही दोनों चरित्र भारतीय धर्म के दो ध्रुव हैं। राम का वह रूप भारतीय मानस को पकड़ता है जहाँ वह कृतार्थ भाव से राज्य का अधिकार छोड़ जाते हैं। उसी तरह कृष्ण का बाल रूप ही भारत के लिये परम विमोहन बना हुआ है। दोनों जगह योद्धा प्रधान नहीं है, गौण है। और अर्जुन को गीता के उपदेश से रणोद्यत बनाकर भी कृष्ण स्वयं सारथी रहते और युद्ध से उत्तीर्ण बने रहते हैं।

भारत में अलग अलग जातियाँ रहीं, भाषायें रहीं, औररहन सहन के अलग तौर तरीके भी हो सकते हैं। पर कथा गाथायें और काव्य पुराणों के द्वारा एक ही मानव धर्म यहाँ वहाँ व्याप्त बना रहा। आरोपित आदर्श उसको ढक या उखाड़ नहीं सके। साहित्य उसी स्रोत से प्राण पाता रहा है और प्रदेश विशेष की या व्यक्ति विशेष की विशेषताओं को लेकर वह कितना भी विविध और विचित्र बनकर प्रकट हो, मूलतः धर्मनिष्ठ रहा है।

रूप, आकार और शैली की सब विविधताओं में बिखर कर भी वह केन्द्रित भाव से च्युत नहीं हुआ और सब जगह उसी मानव मूल्य की प्रतिष्ठा का आचरण बना रहा ।

<u>मानव मूल्यों की वैज्ञानिक कसौटी :</u>

आज के इस वैज्ञानिक युग में प्रत्येक वस्तु का विज्ञान की कसौटी पर परीक्षण किया जा रहा है। सभी विचारों की वैज्ञानिक शोध हो रही है। इस स्थिति में यदि मूल्यों को भी विज्ञान की सीमा में रखकर, परखा जाय तो अनुचित नहीं होगा। मूल्यों का सम्बन्ध समाज से है और समाज का अपना एक स्वतन्त्र "समाजशास्त्र" बन चुका है।

मानव समाज अपने विचारों और अपनी धारणाओं को सामूहिक रूप में किस प्रकार समाज में बनाये रखता है। इस प्रक्रिया का नाम समाज शास्त्र है।[49] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि, समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है। इसमें मानवीय सम्बन्धों, विचारधाराओं, मान्यताओं, रीतिरिवाजों, प्रथाओं आदि का अध्ययन होता है। इन सभी का सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार मूल्यों से अवश्य है।

आज मानव की प्रत्येक क्रिया और अन्तः क्रिया का अध्ययन हो रहा है, ऐसी स्थिति में मूल्यों की वैज्ञानिक व्याख्या सम्भव है।

किसी भी वस्तु की वैज्ञानिक व्याख्या के लिये समस्या का निर्धारण परीक्षण, वर्गीकरण तथ्यों की जाँच, अखण्ड नियमों का प्रतिपादन, भविष्यवाणी प्रयोगशाला पद्धति का प्रयोग आदि बातों की आवश्यकता होती है।

मूल्यों के क्षेत्र में किसी न किसी रूप में अधिकांश तथ्य उपलब्ध हो जाते हैं। जिससे वैज्ञानिक परीक्षण सम्भव हो सकता है। समाज में मूल्यों को लेकर समस्यायें उठती हैं। जिनका परीक्षण, वर्गीकरण, जाँच, नियम का प्रतिपादन

।किसी सीमा तक। तत्सम्बन्धी अन्य प्रयोगशाला पद्धति का उपयोग आदि किया जा सकता है। तात्पर्य हम मूल्यों को सदैव वैज्ञानिक सीमा से पृथक करके नहीं देख सकते ।

मूल्यों की वैज्ञानिक व्याख्या संभव है या नहीं, इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि, "मूल्य पूर्ण रूप से मानवीय भावनाओं एवं इच्छाओं पर निर्भर होते हैं। अन्तिम रूप में यह मानव विश्वास से सम्बन्धित होते हैं जो कि विज्ञान के क्षेत्र से परे होता है।" 50

50- Values depend on our feelings and wished, they related to our faith in ultimate ends which escape the jurisdiction of science"

Julien Freund: The Sociology of M. Weber, P. [illegible]

मानव मूल्यों की शास्त्रीय व्याख्या :

मानव मूल्यों का निर्माण सापेक्ष स्थिति में होता है। मूल्य की उत्पत्ति के लिये द्वैत अनिवार्य है। "एक" ही हो तो मूल्य प्रक्रिया के लिये अवकाश ही नहीं होगा। एक अर्थात पूर्ण। "पूर्णता" में मूल्यों की स्थिति तो दूर, मूल्यीय चेतना भी नहीं हो सकती। मतलब यह है कि, अपूर्ण में पूर्णता की लालसा मूल्य चेतना अर्थात् तत्सम्बद्ध प्रक्रिया का मूल है।"[51]

एक के समक्ष जब अनेक की सत्ता जन्म लेती है तब परीक्षण का आरम्भ होता है....गुणावगुणों का वस्तु पर आरोप होता है, यही गुण कालांतर में मूल्यों का स्वरूप धारण करते हैं।

"मूल्य" शब्द वस्तुतः नीति शास्त्रीय "वैल्यु" का पर्यायवाची है। मानवीय क्रियाओं में, आचार व्यवहार में अच्छाई या शिवत्व का मूल्य क्या है, इस पर नीति शास्त्र ने बहुत विचार किया है।"[52] वस्तुतः विभिन्न समाजों में विभिन्न मूल्य होते हैं। सर्वसम्मत और सर्व व्यापक मूल्यों का निर्धारण असम्भव है।

प्रत्येक समाज की पृथक पृथक मान्यताएँ, विचार और परम्पराएँ होती हैं। जिनके आधार पर उनमें मूल्यों का गठन और विघटन होता है। जैसे भारतीय हिन्दू समाज में विवाह के प्रति एक विशिष्ट धारणा है। विवाह पवित्र धार्मिक तथा आत्मिक सम्बन्ध के रूप में स्वीकार किया गया है। परिणामतः यहाँ विवाह विच्छेद की कल्पना ही कठिन है। यही कारण है कि, विधवा विवाह को उचित प्रोत्साहन नहीं मिल पाया है।

इसके विपरीत अमेरिका के समाज में विवाह सम्बन्धी धारणाओं की भिन्नता होने के कारण विवाह विच्छेद एवं विधवा विवाह निन्दनीय नहीं माना जाता। राजस्थान और मालवा में जहाँ पर्दा प्रथा का प्रचलन समाज में स्वीकृत है, वहीं बंगाल में इसे अशुभ माना जाता है।

इसी प्रकार कहीं प्रतिवृत धर्म की महिमा है तो कहीं पत्नी वृत की, कहीं एक पत्नीत्व की, कहीं बहु पत्नीत्व की, और कहीं केवल क्षणिक स्त्री पुरुष सम्बन्धों की। ऐसी स्थिति में कतिपय नीति शास्त्री जैसे "मिल" और "जोन्स" ने उपयोगितावादी कसौटी "अधिकों का हित" [53] (बहुजन हिताय) प्रस्तुत की है।

कान्ट ने नैतिक क्रिया के मूल में जो हेतु या काकारणसरणी है है उसकी मीमांसा प्रस्तुत करके मोक्षेय कर्म में ही "मानव को अपने आप में साध्य" मानी उसे श्रेष्ठतम और नैतिक कर्म माना है।

आदर्शवादी नीति का अन्तिम मूल्य मानव कल्याण और उसकी अधिकाधिक अनासक्ति को ही मानते रहे (बुद्ध, ग्रीन, गाँधी)। नीतिशास्त्र में तो उपनिषदों के श्रेय प्रेय विवेचन से या सुकरात के सत्य के लिये जहर पीने से लेकर आज तक यह प्रश्न बार बार उठा है।" [54]

मूल्य या प्रतिमान में स्थायित्व अवश्य होता है पर इसका अभिप्राय यह नहीं कि, मूल्य स्थिर होते हैं। जीवन के विविध (नैतिकादि) मूल्यों में परिष्कार या संस्कार चलता रहता है, इस प्रक्रिया में सदियाँ लग जाती हैं।

किन्तु सामाजिक ।व्यावहारिक मूल्यों में यह परिवर्तन अपेक्षाकृत द्रुत होता है।

"हर नये युग में जीवन मूल्य अपना नया संस्कार करते हैं, यही उनका कल्प है। अपने इस नये संस्कार में उनका पुराना रूप नया बनता है। इस रूप में मानव संस्कार पुराने के प्रवाह क्रम का ही अगला विकास होते हैं। जीवन मूल्यों के इस नये संस्कार और कल्प की गति को साहित्यकार उस समय तक अपने साहित्य में मूर्तिमत्ता नहीं दे सकता जबतक कि, उसे युग की विचार धाराओं, जीवन दर्शन और जीवन के विकास के लक्ष्य और उसकी गति का ज्ञान न हो।"[55] साहित्य में मूल्यों का निरूपण होता है क्योंकि साहित्य को समाज का दर्पण माना गया है। अतः साहित्यकार साहित्य में समाज का एक संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करता है।

साहित्य में "मूल्य" का विशिष्ट अर्थ है। यहाँ पर मूल्य शब्द समाज कल्याण या मानव हित वाले अर्थ तक ही सीमित नहीं है। यदि इस प्रकार की स्थिति होती तो सभी धार्मिक ग्रन्थ, श्रेष्ठ साहित्य के अंग स्वीकार किये जाते। साहित्य में "शिव" के साथ साथ सत्य, और सुन्दर को भी समाहित किया गया है। यही नहीं कभी कभी साहित्य में वर्णित अनेक व्यक्ति परिस्थितियाँ और व्यवहार, अनैतिक होते हुये भी, मूल्यवत्ता रखते हैं।

मातृत्व भाव से दबी श्रद्धा को मनु का चुपचाप छोड़कर चला जाना मानवीय दृष्टिकोण से अनुचित लगता है परन्तु इसी घटना की पृष्ठभूमि में श्रद्धा का करुण स्वर मुखर हो सका है, अतः यह खटकता नहीं है। इस सन्दर्भ में ईडिपस के जीवन की निर्मम नियति, उर्मिला का विरह राधा का प्रलाप आदि अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

साहित्य के विभिन्न पात्र, अनैतिक जान पड़ने वाला पापाचरण करते हैं पर घटनाओं के घात प्रतिघात या कर्म की विशेषता से पाठक या दर्शक के मन में यह विश्वास उत्पन्न हो जाता है कि, वस्तुतः यह अनीति नहीं है। यही स्थिति है जहाँ "शिव" और "सुन्दर" का द्वन्द प्रारम्भ हो जाता है। सत्यं शिवं और सुन्दरम् हमारी भारतीय संस्कृति के गायत्री मूल्य है।

कतिपय विचारक यह स्वीकार करते हैं कि, सत्य शिव सुन्दर तीनों मूल्य ही, सत्ता के तीन पहलू हैं। सौन्दर्यवादी विचारक सौन्दर्य को ही अन्तिम मूल्य मानकर चलते हैं। नीतिशास्त्री "शिव" को सर्वाधिक महत्व देते हैं।

यथार्थवादी या वैज्ञानिक निरे "सत्य" का समर्थन करते हैं। इस प्रकार किसी न किसी रूप में तीनों की सत्ता को समग्र या पृथक् पृथक् रूप में स्वीकार अवश्य किया गया है।

मूल्य और प्रतिमान दोनों समानार्थी शब्द हैं। मानव सर्वप्रथम व्यक्ति है अर्थात् इकाई है, उसके अपने कुछ मूल्य हैं। साथ ही मानव एक बृहत्तर मानव समाज, परिवार, गाँव, नगर, प्रदेश, राष्ट्र या विश्व का सदस्य भी है। इस प्रकार वह सामाजिक विशेष होकर, सामान्य अंग भी है। उसके प्रत्येक क्रिया कलाप में मूल्यों का प्रश्न महत्वपूर्ण रूप से निहित होता है। यह मूल्यों की शोध चलती ही रहेगी क्योंकि "हम लाख प्रयत्न करें, मूल्यवत्ता और अर्थवत्ता की खोज रहेगी।

"हम कुछ को मूल्यवान तथा सार्थक समझेंगे और कुछ को नहीं अथवा कम। प्रश्न यह कि इस मूल्यवत्ता तथा सार्थकता का निर्णय किस तरह हो। पहले इसका निर्णय मनुष्य स्वयं नहीं करता था, करती थी सत्ता। परिवार या,

धर्म था, राज्य या उनके द्वारा जीवन के मूल्य या अर्थ निर्धारित कर दिये जाते थे, परन्तु ठीक इसके विपरीत अब यह समझा जाने लगा कि, मनुष्य अपना कर्ता धर्ता स्वयं है। अर्थों और मूल्यों का निर्णायक भी वही है।"[56] इस प्रकार मूल्यों का सम्बन्ध मानव से स्थापित किया गया है। समाज से मानव को पृथक् करके नहीं देखा जा सकता। अतः मूल्यों की सत्ता भी मानव के वैचारिक जगत् पर निर्भर करती है।

धर्मशास्त्र में मूल्यों की अपनी विशिष्ट सत्ता है। वस्तुतः मूल्यों पर ही सम्पूर्ण धर्म का ढाँचा टिका हुआ है। मूल्यों के अभाव में धर्म की सत्ता गौण हो जायेगी। "भारत में सदा ही नैतिक मूल्यों का धर्म और दर्शन के अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। इनके पृथक अध्ययन की आवश्यकता भी अनुभव नहीं की गई।"[57]

भारतीय दर्शन में स्थान स्थान पर नैतिक धारणाओं का महत्व है। आध्यात्मिक पूर्णता या जीवन का परम शुभ (Summum bonum or supreme good of life) प्राप्त करने में इनका महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सद् और असद् पाप और पुण्य आदि का निर्णय नैतिक मान्यताओं के आधार पर ही होता है। यही नहीं नैतिक मान्यतायें जीवन दर्शन तक का निर्माण करती हैं।"[58]

57- It is a fact that in India ethics was always regarded as part of Philosophy and religion, and hence it was never thrsught necessary to study it separately" I.C.Sharma, Ethical Philosophies of India P.29 Revised Edition of 1965.

58- It can be said that ethics is the Philosophy of life " I.C. Sharma Ethical Philosophies of India (P.29. Revised Edi. of 1965.

मानव मूल्यों का तात्विक विवेचन :

59

"मूल्य" शब्द मूल ।यत् से निष्पन्न है, जिसका अभिप्राय है किसी वस्तु के विनिमय में दिया जाने वाला धन, दाम, बाजार भाव आदि। यह मूल्य पद का अभिधेय है। परन्तु क्रमशः "मूल्य" पद के अर्थ में विस्तार हुआ है और अब यह मानदण्ड के अर्थ की भी अभिव्यक्ति करने लगा है। यही नहीं संस्कृति जैसे सूक्ष्म भाव के आधारभूत तत्वों को जिनसे किसी समाज की सांस्कृतिक अवस्था का ज्ञान होता है, भी मूल्य कहा जाने लगा ।

बनते
चिंतन से विचार बनते हैं। विचारों से धारणा का जन्म होता है तथा धारण से मानव मूल्यों का निर्माण । प्रत्येक समाज में जीवन और पारस्परिक व्यवहार के सम्बन्ध में कतिपय धारणायें होती हैं। यही धारणायें स्थिर होकर मानव मूल्य पद पर प्रतिष्ठित होती हैं। किसी वस्तु या विचार के प्रति अनुकूल धारणा तद्विषयक मानव मूल्यों को जन्म देती है।

विवाह के प्रति समाज की अनुकूल धारणा रही है, अतः समाज की दृष्टि में यह एक महत्वपूर्ण मानव मूल्य है। जब तक तलाक के प्रति जन सामान्य की प्रतिकूल धारणा थी, तब तक समाज में तलाक मानव मूल्य का स्थान ग्रहण न कर सका, किन्तु पति पत्नी के पारस्परिक मनमुटाव की स्थिति में तलाक के महत्व के कारण तलाक के प्रति अनुकूल धारणा बनी। फलस्वरूप तलाक के मानव मूल्य का आविर्भाव हुआ ।

बहुत से व्यक्तियों की एक वस्तु के प्रति एक सी धारणा उनके पारस्परिक संगठन का प्रतीक है। दो विरोधी धारणाओं का आविर्भाव संघर्ष को जन्म देता है जिससे विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है। क्योंकि परस्पर

विरोधी धारणाओं से समाज का सौक्य विघटित होता है। वर्तमान समाज में सौक्य का अभाव है। यही कारण है कि वह प्रगतिशील होते हुये भी विघटित हो रहा है। आधुनिक युग में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, राजनीति आदि के प्रति नवीन धारणायें जन्म ले रही हैं। अतः नवीन मानव मूल्यों का विकास हो रहा है।

पर्यावरण के क्रमिक परिवर्तन के अनुसार जन सामान्य का कार्य बदल जाता है। पर सहसा स्थिति का बदलाव स्वीकार करना कठिन हो जाता है। जैसे वर्तमान समय में स्त्री का कार्य क्षेत्र बदल गया है। अब वह पुरुष की भाँति कल कारखानों में काम करने लगी है, अर्थोपार्जन में योग दे रही है। इस परिवर्तन के अनुसार उसके स्तर में भी परिवर्तन होना चाहिये था। स्तर का निर्धारण मानव मूल्यों के आधार पर होता है, और मानव मूल्य इतने शीघ्र बदलते नहीं। यही कारण है कि, इस दिशा में अब तक नारी को पर्याप्त सम्मान नहीं मिला है।

समाज ने सदियों से रीति रिवाज, प्रथायें, धारणायें, परिणाम बना रक्खे हैं, ये समाज के असंदिग्ध निर्णय बन चुके हैं। इनके विषय में समाज किसी भी प्रकार का विवाद नहीं चाहता। इस प्रकार मानव मूल्य के प्रतिमान हैं जिनके अनुसार हम अपने व्यवहार को नापते हैं। जो बात माप में ठीक आये वह उचित है, जो प्रतिकूल है वह अनुचित थी।

मानव मूल्य समाज की वह आधारशिला है जिस पर सभ्यता और संस्कृति का भव्य प्रासाद निर्मित होता है समाज में मानव मूल्य सदैव बनते मिटते आये हैं। आदिम समाज में भी कतिपय मानव मूल्य रहे होंगे।

समाज के निर्माण में मानव मूल्यों ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। समाज का सम्बन्ध मानव जगत् से है, अतः मानव मूल्यों का सम्बन्ध भी मानव से है।

"मूल्यों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। मूल्यान्वेषण की जिज्ञासा युग युगान्तर से रही है। दार्शनिक एवं साधकों ने सदियों से यह जानने का प्रयास किया है कि, वह अंतिम कसौटी कौन सी है जिसपर कस कर हम किसी भी वस्तु की धातु को पहचान सकते हैं। हम मानते हैं कि, सब प्रतिमानों का, सब मूल्यों का स्त्रोत मानव का विवेक है।"[60] वही उसे सद् और असद् का ज्ञान देता है। विवेक से मानव मूल्यों का निर्माण होता है।

"आधुनिकता बोध"

आधुनिकता मुख्य नहीं प्रकृति या है और ग्राम कथानकों में यह आंचलिकता का दूसरा पक्ष बनकर उसे सृजनात्मक गरिमा प्रदान करती है। रेणु और शैलेश मटियानी और शिव प्रसाद सिंह में आंचलिकता अधिक है और शिव प्रसाद सिंह में और नये हिन्दी कथा साहित्य में आधुनिकता कुछ विशिष्ट फार्मूलों की प्रयोग स्थितियों को रेखांकित कर प्राय विज्ञापित होती है। इस का परिणाम यह होता है कि, कभी कभी उसकी प्रामाणिकता जीवन के संदर्भ में कम, साहित्य संदर्भ में ही अधिकांश बनी रहती है।

उसका अभिव्यक्ति क्षेत्र नगर जीवन, उसका बुद्धिजीवी वर्ग, विशेषकर मध्यमवर्ग होता है और ग्राम जीवन का स्पर्श करते करते उसका रूप बदल जाता है। पुरातनता जब तक गाँव को खाली नहीं कर देती है आधुनिकता का पूर्ण प्रसार असंभव है। वर्तमान स्थिति संघर्ष और टकराव की है। नये साहित्य में आई आधुनिकता के मूल में अनास्था और संत्रास को बताया जाता है।

अगणित चोटों और अपरिसीम टूटन के होते भी भारतीय गाँव की संरचना ऐसी है कि, अनास्था का पूर्ण उत्कर्ष यहाँ अभी संभव नहीं। अनास्था यशपाल की कहानी "शिवपार्वती" में है वैसी अनास्था, ग्रामांचल में संभवतः बहुत देर में आयेगी और वह आयेगी भी तो आधुनिक पुस्तक और पत्र पत्रिकाओं के पठन पाठन के प्रभाव से नहीं अपितु कृषि विकास क्रम में परिष्कृत यंत्रिकता और वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रसार से विकसित होगी ।

संत्रास की अभिव्यक्ति नये कथा साहित्य में मुख्यतः अकाल अवर्षा और भुखमरी के संदर्भ में हुई है। आधुनिकता बोध के सन्दर्भ में संत्रास के साथ ही कुंठा का नाम लिया जाता है जो मुख्यतः वैयक्तिक स्तर पर "काम" से जुड़ी हुई होती है। वास्तव में यह निराशा की चरमावस्था की आहत जड़ स्थिति का नाम है और भारतीय जीवन में विशेषकर ग्राम जीवन में राजनीतिक उपेक्षा आदि कारणों से समाज में भी परिलक्षित होती है।

आधुनिकता स्वभावतः विद्रोहधर्मी है। विद्रोह अन्तर्मुख होकर अधिक विस्फोटक हो गया है नये सामाजिक मूल्यों की स्थापना के लिये संकल्पित कथाकारों की नयी पीढ़ी विद्रोह की मुद्रा को अंकित करने में अत्यधिक सफल हुई है। व्यवस्था के प्रति विद्रोह, स्वीकृत मूल्यों के प्रति विद्रोह, मान्य सम्बन्धों के प्रति विद्रोह के ये चार कोण हैं जिनमें से नये कथा साहित्य में अनिवार्य रूप से कोई न कोई उभरा है और उसे आधुनिक बनाता है।

बाह्य विद्रोह आन्तरिक स्तर पर मूल्य विद्रोह हो जाता है। जब वह पुराने सम्बन्धों की औपचारिक शृंखला से ऊब जाता है तो नये सम्बन्धों की खोज करता है। नयी अनुभूति भूमियों का अन्वेषण करता है। प्रेम के आत्मिक होने को वह अस्वीकार कर देता है। मधुकर गंगाधर की कहानी "माँ" में यही घटित होता है जो कुछ है वह देह है और उसका सुख है। चम्पा मृत पति शिवचरन बाबू को साफ सहज रूप में भूल जाती है और उसे रघुवीर के दस्तक बहुत मीठे लगने लगते हैं।

यह पतिव्रत और सतीत्व का युगान्त प्रत्याख्यान "क्लीन" ग्रामवृत्ति से अभी कुछ दूर है परन्तु उसकी आहट दृष्टिगोचर हो रही है। पानू खोलिया

[61]

की कहानी "एक किरती और" में तथा शैलेश मटियानी की कहानी "घर गृहस्थी" में यही उपहासास्पद स्थिति है। किन्तु पहली कहानी "कुलीनो" में पर्वतांचल की है तो दूसरी मिरासी जाति की एक वेश्या की है। पहली कहानी का पति बहिष्कार और दूसरी कहानी का पति स्वीकार, दोनों विद्रोह जनित सांकेतिक स्थितियां हैं।

"आधुनिकता का आयाम टूटन और भग्नाशा भी है।"

कुछ विशेष जातियों के अतिरिक्त शेष ग्राम जीवन में अब भी प्राचीन पवित्रतावादी मूल्य का झंडा बुलन्दी पर है। जीवन तो निरन्तर गतिशील है और इस गतिशील जीवन के परिवर्तित परिवेश की पकड़ दृष्टि में आधुनिकता की महत्ता स्वीकार की जायेगी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सत्य ही कहा है: "आधुनिकता अपने आप में कोई मूल्य नहीं है। मनुष्य ने अपने अनुभवों द्वारा जिन महनीय मूल्यों को उपलब्ध किया है उन्हीं नये संदर्भों में देखने की दृष्टि आधुनिकता है।"[62]

कहानियों में आधुनिकता एक आवश्यक तत्व है, प्राचीन काल की परिस्थिति और वर्तमान काल की परिस्थिति में निरन्तर परिवर्तन की खाई बढ़ती जा रही है। आज का मानव पूर्णतः व्यावहारिक है । वह प्रत्येक कार्य का परिणाम वर्तमान में ही जानना चाहता है। भविष्य पर विश्वास नहीं करता । वर्तमान ही उसका मूल आधार है। इसीलिए कहानियों में भाव विह्वलता का कोई मूल्य नहीं है। भाव विह्वलता का कोई मूल्य न होने के कारण ही मानव का आध्यात्मिक पक्ष का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। आधुनिकता, सामाजिक रूढ़ियों, आडम्बर से युक्त धार्मिक मान्यताओं, प्राचीन संस्कारों के विरोध में खड़ा है।

आधुनिकता जड़ स्थिति से मानव को मुक्ति देने का प्रयत्न करती है। प्रत्यक्ष पर बल देने के साथ ही साथ जो कुछ प्राप्त नहीं है उसके लिये प्रयत्नशील होने पर बल देती है। मानव चेतना किसी प्रकार का बन्धन नहीं स्वीकार करती इसीलिये वह अतीतमिलता में अपनी अर्थवत्ता को खो देती है। बौद्धिक चेतना की आधार भूमि आधुनिकता ही है। बौद्धिक चेतना अपने समस्त चेतन तत्वों के साथ समसामयिकता के सन्दर्भ में अर्थवान होती है।

आधुनिकता के नाम पर क्या पश्चिम के अनुकरण के नाम पर। जब आज की कहानी में यथार्थ के घिनौने, कुत्सित एवं अश्लील चित्र अंकित किये जाते हैं तो, अपनी अर्थवत्ता इसलिये खो देते हैं, क्योंकि उनकी संगति या तालमेल हमारे भारतीय समाज में अनुपयुक्त सी प्रतीत होती है। स्वतन्त्रता के उपरांत हमारे भारतीय समाज का स्वरूप बहुत कुछ बना और बिगड़ा है। अनेक परिवर्तन हुये हैं। वर्तमान में मनुष्य का परिवेश अधिकाधिक विषादग्रस्त हुआ है। उसकी उपेक्षा करके जब आज के अधिकांश कहानीकार केवल सेक्स चित्रण को ही आधुनिकता का बोध का यथार्थ स्वीकार लेते हैं। यह तथ्य विवेकशून्यता या दायित्वहीनता के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता।

आधुनिकता बोध का तात्पर्य केवल सेक्स बोध ही नहीं है। व्यक्ति व्यक्ति की संवेदनाओं या भावनाओं का सम्बन्ध स्त्री पुरुष के दो अंगों का ही तो सम्बन्ध नहीं है। और भी सम्बन्ध हो सकते हैं। सम्बन्धों के और भी स्तर हैं। और इनकी उपेक्षा करने का अभिप्राय अपने दायित्व बोध की उपेक्षा करना है। यह ठीक है कि, अनास्था और विघटन भी यथार्थ हो सकता है। आज के अनेक सूक्ष्म चेता कलाकार पूर्ण संवेदना के साथ इसका अनुभव कर रहे हैं। परन्तु यह पूर्ण सत्य नहीं है। अर्द्ध यथार्थ मात्र है। विज्ञान का नियम संघटन या जोड़ना है। तोड़ना अर्थात विघटन करना नहीं है। अणु के विघटन का उद्देश्य भी जीवन का संघटन ही है।"[63] अतः केवल विघटन और विसंगति को ही महत्व देना

आधुनिकता बोध नहीं है। आज की कहानी में आधुनिकता के नाम पर जो नैराश्य, कुण्ठा, अस्वस्थ दृष्टिकोण, विकृतता या झूठ अहंकार का चित्रण करना किसी भी रूप में आधुनिकता नहीं दुराग्रह मात्र है।

आधुनिकता बोध आनन्दतत्त्व के साथ भी सम्बद्ध है। यह निर्विवाद है। वस्तुतः आधुनिकता का बाह्य आरोप या उसकी अनुभूति उतनी ही दोषपूर्ण है, जितना स्वीकृत रूढ़ियों का अनुकरण। आधुनिकता शाश्वत का आत्म साक्षात्कार करने पर बल देती है न कि खण्डित दृष्टि या एकांकी सत्य के प्रतिपादन पर ।

इस प्रकार "आधुनिकता एक मनोवृत्ति है। जो कि, सामाजिक परिस्थितियों में प्रतिफलित होती है। वर्तमान को सजग रूप में भोगने और उस भोग से नए सन्दर्भ देखने और जीने की क्षमता ही आधुनिकता है। देशकाल के सन्दर्भ में मनुष्य का प्रगति के प्रति आस्थावान होकर व्यवहार करना आधुनिकता का अंग है।"[64] आधुनिकता का अर्थ अति व्यापक है। इतिहास से पाई हुई अनुभूति और चिन्तन से प्राप्त जीवनविधि को स्वीकारना तथा उन अनुभूतियों को वर्तमान परिवेश में रखकर आँकना ही आधुनिकता है।

वास्तविकता तो यह है कि, आधुनिकता प्रत्येक कहानीकार के लिए कठिन चुनौती है। जो कि, कहानीकार को नयी भावभूमि जीवन के नये सन्दर्भों तथा चित्रण के लिये प्रेरित करता है। अतः प्रत्येक कहानीकार के लिये यह अति आवश्यक है कि, वह आधुनिकता को भली भाँति समझे उसके उपरान्त अपनी शिल्प शक्ति द्वारा कहानी का निर्माण करे।

फैशन परस्ती ही आधुनिकता नहीं है। जिन कहानीकारों ने फैशन के फार्मूलों को नहीं अपनाया है इसका तात्पर्य यह नहीं है कि, वह आधुनिकता से वंचित है। आधुनिकता ऐसी होनी चाहिये जो आरोपित न हो, अनुभव हो,

बल्कि कहानी के अंग में स्वाभाविक प्रतीत हो। आधुनिकता एक मानसिक अथवा बौद्धिक स्थिति ही है। आज हम जिन बातों को पुरातनवादी या परम्परावादी कहकर नकारते हैं किसी समय विशेष में वही प्रवृत्तियाँ आधुनिक मानी जाती थीं।

आधुनिकता को एक मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है। डा० धर्मवीर भारती ने आधुनिक बोध को "संकट बोध" माना है,:

डा० रघुवंश ने इसे "असंपृक्त यथार्थ दृष्टि" रूप में आंका है, डा० नामवर सिंह कभी इसे एक प्रक्रिया के रूप में तो कभी एक मूल्य के रूप में खोज निकालते हैं, अज्ञेय इसे "सापेक्षवाद" में आंकते हैं।"[65]

<u>मूल्यों में अन्तर:</u>

"मूल्यों का संघर्ष और विसंगतियाँ, समाज के संदर्भ में भारतीय दर्शन के विशिष्ट व्याख्याता और भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राधा कृष्णन का यह सार्वकालिक कथन है..."नॉट द इन्वेंटर्स ऑफ न्यू मशीनरी, बट द इन्वेंटर्स ऑफ न्यू वैल्यूज रूल द वर्ल्ड".. नयी मशीनों का आविष्कार करने वाले नहीं, नये मूल्यों की स्थापना करने वाले ही संसार को आगे बढ़ाते हैं, उसका विकास करते हैं।

बहुत गहरे अर्थ अपने में समेटे बैठी है, यह चिंतन की धारा और हमारा ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट करती है कि, हम जिस काल में जी रहे हैं उसकी टेक्नोलॉजी ने उस अंतरिक्ष यान तक का आविष्कार किया है, जो मनुष्य को चाँद पर ले गया और वापस भी ले आया।

वस्तुतः यह मनुष्य की बुद्धि का महान चमत्कार है। उचित है कि, हम इसका अभिनंदन करें और हमारे भीतर इन सबके लिये आत्मगौरव का बोध जागे, पर क्या यह भुलाया जा सकता है कि, इन आविष्कारों के काल में ही मनुष्य का सबसे बड़ा मूल्य मनुष्यता इस सीमा तक नष्ट हो गया है कि, विश्व की मनुष्यता इस काम में जुटी हुई है कि, हजारों लाखों वर्षों की मेहनत तपस्या से बनी पूरी मानव सभ्यता कैसे कुछ दिनों, कुछ घंटों में पूरी तरह नष्ट की जा सकती है।

राम ने एक नये मूल्य की स्थापना की थी उसे कहा गया मर्यादा और उसकी स्थापना के कारण राम मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाये। राम के उन सामाजिक मूल्यों का आज के समाज में पूर्णतः विघटन हो रहा है। समाज की परिस्थितियों को, और समाज को बदलें, उसे नयी व्यवस्था का रूप दें, यह एक विश्वव्यापी नये मूल्य का जन्म होगा, जो आज विश्व भर में धर्मवाले मूल्य से टकरा रहा है।

<u>मूल्यों के संघर्ष की प्रक्रिया :</u>

भारत में उन्नीसवीं सदी के मध्य तक मनुष्य के मन को मर्यादा का कठोर आवरण बनकर बांधे रहा। धर्म के कुछ आदेश निश्चित ढंग से में पग कर जनसाधारण के जीवन में रच पच गये थे। हर जिले में 20,25 आदमी धनी होते थे, जिन्हें "बड़ा आदमी" कहा जाता था, बाकी सब जनसाधारण यानी अवाम।

जनसाधारण को बड़े आदमियों से कोई ईर्ष्या न थी, क्योंकि भाग्य का विश्वास उनके साथ था कि, हमारे भाग्य में यह सब होता, तो हम इन झोपड़ियों में क्यों जन्म लेते, उन हवेलियों में न लेते। जनसाधारण का

मनोविज्ञान है कि, जिस विवशता पर वह प्रयत्नों से पार नहीं पा सकता, उसे पूरे मन से स्वीकार कर लेता है। इसी कारण वह स्वीकृति न उसके अंदर में शिकायत पैदा करती है, न कुंठा ।

गांधी जी के बाद देश में नये मूल्यों की स्थापना ही नहीं हुई । हाँ हम सब उन पुराने मूल्यों को तोड़ने में जुट पड़े, पद और पैसे की सर्वोच्चता के हथौड़े लेकर । फलस्वरूप दुकानों के शिकारी अध्यापक, कुर्सियों के शिकारी राजनीतिज्ञ, पैसे के शिकारी व्यापारी और कर्महीन कर्मचारी देश में भर गये । कुछ न कर, सब कुछ पाने की लालसा ही हमारा राष्ट्रीय चरित्र हो गया ।

आज हम मूल्यों के संघर्ष से नहीं, मूल्यों के अकाल से, मूल्यों की अराजकता से गुजर रहे हैं, क्योंकि मूल्य बदले नहीं, मूल्य टूटे हैं। हम मूल्यों के महल में बैठ कर नहीं, मूल्यों के खंडहर पर खड़े होकर मूल्यों के संघर्ष की काल्पनिक बहस कर रहे हैं। इसीलिये हमारे समाज में आज विसंगतियाँ नहीं, असंगतियों का कड़ुवा धुआं भरा हुआ है। यहाँ भी पूरा सोच कर ।
राजा राममोहन राय से स्वामी दयानंद तक जागरण काल आया । उसने अंधता के झूठे मूल्यों के सामने कुछ जीते जागते मूल्यों को खड़ा किया ।

अब पुराने प्रतिक्रियावादी और नये प्रगतिवादी मूल्यों में सामाजिक संघर्ष छिड़ गया। जैसा कि, स्वाभाविक है, नये मूल्य शक्तिशाली सिद्ध भी हुये। शिक्षा से वंचित देश की बेटियाँ स्कूलों तक पहुँची, परदे में घुटती बहुएं घूंघट से बाहर खुली हवा में आयीं, पशु से भी बदतर जिन्दगी जीने वाले अछूत आर्यसमाज के हवन कुंड तक जा पहुँचे।

<u>मूल्य के स्रोत :</u>

मनुष्य की आध्यात्मिक धारणा के अनुसार मानव मूल्यों का आदि स्रोत ईश्वर ही है। उसने माना था कि, विश्व की विशालता, जटिलता और अस्पष्टता मानवी चेतना की सर्जना नहीं हो सकती है। इसीलिये कोई ऐसी चेतना होनी चाहिये जो विश्व सृष्टि का निर्माण कर सके, जो उसका सोद्देश्य क्रम निर्धारित कर सके और जो विश्व के ही समान अनादि अनंत हो, असीम अगाध हो, सर्वशक्तिमान हो।"[66]

इसी विचार से उसकी धार्मिक दृष्टि निर्मित हुई तथा ईश्वर के अस्तित्व एवं सत्ता को स्वीकार किया गया। धर्मवीर भारती ने लिखा है "समस्त मध्यकाल में इस निखिल सृष्टि और इतिहास क्रम का नियंता किसी मानवोपरि अलौकिक सत्ता को माना जाता था। समस्त मूल्यों का स्रोत वही था और मनुष्य की एक मात्र सार्थकता यही थी कि, वह अधिक से अधिक उस सत्ता से तादात्म्य स्थापित करने की चेष्टा करे। इतिहास या काल प्रवाह उसी मानवोपरि सत्ता की सृष्टि था..माया रूप में या लीला रूप में।"[67]

उपर्युक्त कथन में ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकारते हुये उसे मानव मूल्यों के प्रणेता के रूप में मान्य किया गया है। "वस्तुतः प्राचीन एवं मध्यकाल तक ईश्वर ही मात्र मूल्यों का नियामक रहा है, क्योंकि उसे "पुरुषोत्तम" के रूप में स्वीकार किया गया है।
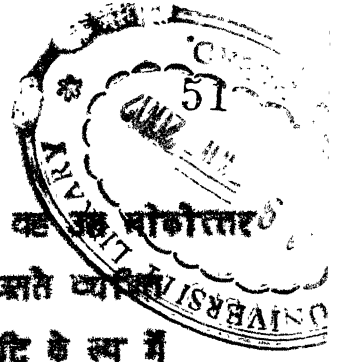
अवतार वाद की जो बात शास्त्रों में देखी जाती है, वह एक लोकोत्तर अस्तित्व को मूल्यों का आधार बनाने से भी सम्बन्धित है, जिससे व्यक्ति के सामने एक निश्चित राह दीख सके"। राम, कृष्ण, बुद्ध आदि के रूप में विभिन्न युगों में मनुष्य चेतना द्वारा अपने विकास के आदर्शों को ही मूर्त किया जा रहा है।"68

यह उसकी आध्यात्मिक चेतना ही है जो उसे इस मार्ग की ओर प्रेरित करती रही है। वैसे पंत जी का यह मत विचारणीय है कि, "मानव मूल्यों का अन्वेषक चाहे वह स्रष्टा हो या द्रष्टा...उसे महत्तर आनन्द, प्रेम सौन्दर्य तथा शिव के सूक्ष्म शिखरों का वाहनयी के अवतरण के लिये कठोर प्रयत्न करना पड़ता है। उसे वैभिन्य की बहिर्मुखी विषमता तथा कटुता के अंतरतम ऐक्य की एकनिष्ठ साधना के बल पर जीवन वैचित्र्य की समता तथा संगति में परिणत करना है, जिसके लिए आत्म संस्कार आवश्यक है।"69

किन्तु आज के युग में ऐसे विश्वास खोखले सिद्ध होते चले आ रहे हैं। विज्ञान की उत्पत्ति तथा विकास ने विश्वासों में प्रचुर मात्रा में परिवर्तन प्रस्तुत किये हैं। धीरे धीरे ईश्वर को आध्यात्मिक अर्थ में ग्रहण न करके मानवता की परिणति के रूप में मान्य किया जाने लगा।

मूल्यों के स्रोत में विशिष्ट महापुरुषों का भी हाथ रहता है। इनके आदर्श, इनके विचार कालान्तर में मूल्य बन जाते हैं। आधुनिक संसार को मार्क्स, फ्रायड, डार्विन और गांधी ने बहुत प्रभावित किया है। इन महानुभावों ने आर्थिक क्षेत्र, मनोविज्ञान, विज्ञान और अध्यात्म में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। इनके विचार सिद्धान्त बन गये और अब मूल्यों का रूप धारण कर चुके हैं।

मूल्यों के सन्दर्भ में डा० रघुवंश का मत है "कुछ विचारकों ने आधुनिक जीवन के आसन्न संकट तथा मूल्यों के विघटन का कारण मानवीय नैतिकता के चरम स्रोत के रूप में ईश्वर की अस्वीकृति को माना है और नवीन मूल्यों तथा मानव प्रतिष्ठा की पुनः स्थापना के लिये ईश्वर की स्वीकृति अनिवार्य मानी गई है, परन्तु अब ईश्वर की कल्पना मानवता की आदर्श परिणति के रूप में ही की गई है जिससे व्यक्ति अपनी मूल्य मर्यादा को ग्रहण करता है। संस्थाबद्ध धर्म और उसके नियामक ईश्वर की स्थिति भाग्यवादी परम्परा के नाम पर नैतिक निष्क्रियता को ही पोषित करती है, जो आधुनिक भाग्यवाद से कम खतरनाक नहीं है।"[70] इस क्रान्तिकारी परिवर्तन का जनक विज्ञान ही है। इससे व्यक्ति के स्वभाव में बहुत परिवर्तन हुआ तथा उसकी दृष्टि में भिन्नता आई। वर्तमान युग में मूल्य के ईश्वरीय स्रोत न मानकर मानव को ही उसका स्रोत माना गया है। यह मानव ईश्वर का लौकिक रूप ही है, जिसका डा० रघुवंश ने अपने उक्त कथन में संकेत किया है। किन्तु शनैः शनैः मनुष्य का अन्तःकरण अनास्था से भरने लगा और उसने अपने अस्तित्व की रक्षा तथा उसकी स्थापना की ओर ध्यान दिया। ईश्वर के प्रति उसकी आस्था टूटने लगी।

मानववाद के उदयकाल में ईश्वर जैसी किसी मानवोपरि सत्ता या उसके प्रतिनिधि धर्माचार्यों को नैतिक मूल्यों का अभिभावक न मानकर मनुष्य को ही इन मूल्यों का विधायक मानने की प्रवृत्ति विकसित होने लगी थी। इसी समय पहली बार यह स्पष्ट हो सका था कि, अन्तरात्मा मानवीय अन्तर में स्थित कोई दैवी या अतिप्राकृतिक शक्ति न होकर वस्तुतः मानवीय गरिमा के प्रति हमारी संवेदनशीलता का दूसरा रूप है और मनुष्य के गौरव को प्रतिष्ठित करने और उसकी निरन्तर रक्षा करने के प्रति हमारी जागरूकता ही हमारी जाग्रत अन्तरात्मा का प्रमाण है।"[71]

उसी समय पहली बार यह भी स्वीकार किया गया था कि, पुराने मूल्य अब मिथ्या पड़ने लगे हैं। ऐसी श्रद्धा और आस्था जो हमें नरबलि तक के लिये विवश करे और वह करुणा जो दान दया के द्वारा व्यक्त हो पर समाज के वैषम्य को विधि का विधान मानकर स्वीकार करलें इस प्रकार की श्रद्धा और करुणा अमानवीय प्रवृत्तियों को जन्म देती है। ये मानवीय गौरव को प्रतिष्ठित करने की बजाय उसको विकलांग बनाते हैं।

"आपतमान मनुष्य इस मानवीय गौरव, और उसको प्रतिष्ठित करने वाले सहज विवेक पर सबसे तीखा आघात नीत्शे का था। नीत्शे ने ही पहली बार बड़े बल से यह प्रतिपादित किया कि, यह मनुष्य जो आज है, जो वर्तमान है वह निरर्थक है, वह मूल्यों का उद्गम स्रोत नहीं है, क्योंकि वह अखिल सृष्टि विकास का परम लक्ष्य नहीं है वह तो एक सेतु मात्र है... पिछली जीव सृष्टि और आगे आने वाले एक महामानव सुपरमैन। के बीच का सेतु। इसीलिये उसका हित अहित, उसके प्रति उचित अनुचित का मापदण्ड स्वतः यह वर्तमान मनुष्य नहीं है। उसका वास्तविक मापदण्ड अ..वर्तमान मनुष्य है जो महामानव है।

इस प्रकार नीत्शे ने विकासवाद के कतिपय तर्कों का उपयोग कर मानवीय मूल्यों के निर्धारण की कसौटी आज का मानवीय यथार्थ न मानकर वर्तमान मनुष्य से उसके गौरव का अपहरण कर उसे एक मरणासन्न जाति का जीव सिद्ध कर दिया।"

इसका परिणाम यह हुआ कि, नीत्शे ने न नैतिक मूल्यों के निर्धारण की जो परिपाटी अपनाई उसमें मानवीय गौरव को प्रतिष्ठित करने वाली अन्तरात्मा का कोई स्थान ही नहीं था।"[72]

मूल्यों के स्रोत के विषय में आज तक कोई स्पष्ट धारणा नहीं बन पाई है। मूल्यों का स्रोत जानने के लिये आज का मानव बड़ा बेचैन है। यह तो निश्चित है कि, मूल्यों का स्रोत कोई आदि दैविक नहीं है न कोई काल्पनिक या प्रतीक पुरुष। अज्ञेय के विचार से भी मानव मूल्यों का उद्गम साधारण मानव को मानना ठीक है।"[73] "मेरे विचार से भी अज्ञेय का विचार तर्कसंगत है क्योंकि साधारण मानव से ही स्वाभिमान की रक्षा होती है, और उसके व्यक्तित्व की उन्नति के लिये अवसर मिलता है। इसीलिये मूल्यों का स्रोत "सहज मानव" को मानना ही आज की विशिष्ट स्थितियों में विविध सन्दर्भों में सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

निष्कर्षतः मानव मूल्यों का स्रोत परिवर्तनीय है। प्राचीन काल में मानव मूल्यों का स्रोत ईश्वर था लेकिन आधुनिक काल में वैज्ञानिकता और औद्योगिक क्रान्ति ने ईश्वर के वर्चस्व को नहीं स्वीकारा और मानव मूल्यों का स्रोत मनुष्य को ही माना है।"

<u>मानव मूल्यों की परंपरा :</u>

मूल्यों की उत्पत्ति और उनका गठन सहसा या दैविक चमत्कार की भाँति अचानक नहीं होता। मूल्यों का आविर्भाव और विकास, समाज के साथ साथ हुआ है। जितना प्राचीन समाज है, मूल्य भी उतने ही प्राचीन हैं।

आरम्भ में मानव ने किसी विशेष अवसर पर विशिष्ट व्यवहार किया और जब बार बार उसे दुहराया तो वही रूढ़ हो गया। इस प्रकार विशेष वर्ग में रूढ़ियों और प्रथाओं का निर्माण हुआ। अन्य वर्गों में इनका स्वरूप कुछ और था। वैदिक ग्रन्थों में और गाथाओं में इन्हीं मूल्यों की व्याख्या की गई है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी मूल्यों का कथन है जैसे...

"अयज्ञो हि एष यो अपत्नीकः" एवं "सत्यं ब्रूयात" आदि । ईश्वर आराधना की, देव पूजन की अनेक मान्यताओं का वर्णन मिलता है, जिनको स्वीकार किया गया है। इन्हीं के आधार पर कालांतर में विधि विधान बने हैं।

समाज ने इन्हीं विधिविधानों के आधार पर अपने सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं भावनात्मक सम्बन्धों का स्थापन किया, किन्तु कालान्तर में मनुष्य स्वयं निर्मित नियमों का अपने स्वार्थवश उल्लंघन करने लगा, जिससे सच्ची मान्यता डगमगाने लगी। जिससे सामाजिक स्थिति निरन्तर ह्रासोन्मुख होने लगी, और मानव मूल्यों में परिवर्तन दृष्टिगत होने लगा।

प्राचीन समय में इनका उल्लंघन अपराध माना गया, जिसके लिये दण्ड विधान तक की व्यवस्था की गई थी। मानव ने इस सत्ता को स्वीकार किया और नियमित रूप से समाज में इसका पालन होने लगा ।

यह धारणा कालांतर में अधिक समय तक नहीं टिक पाई। जब मानव ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता का अनुभव किया और उसमें स्वच्छन्द चेतना का विकास हुआ। तब "मानववाद" का स्फुरण हुआ । इस प्रकार धीरे धीरे मानव मूल्यों में परिवर्तन होने लगा ।

मानव का "अहं" जागा। अलौकिक सत्ता के प्रति विद्रोह भड़का । तर्क वितर्क हुए, निष्कर्ष निकले, नवीन मान्यताएं स्थापित हुईं। इस प्रकार मानव को अपने बारे में ज्ञान हुआ। उसने अपनी शक्ति और सीमाओं को आँका, और अपने प्रभुत्व की स्थापना की। अलौकिक से लौकिक, असाधारण से साधारण की ओर उन्मुख होकर मनुष्य ने यथार्थ को स्वीकृति दी। वर्तमान समय में "जान ड्यूई के चिंतन का बीज यह है कि, मनुष्य एक जीव पिण्ड या

आर्गेनिज्म है जो जगत् के वातावरण से प्रभावित होता है और उसे प्रभावित करता है। जीवपिण्ड के कार्यों में प्रकृति से ऊपर रहने वाली किसी दैवी सत्ता का अस्तित्व स्वीकार नहीं।"[74]

मनुष्य बनता है, बिगड़ता है और बिखरता है। समाज में भी उसके साथ परिवर्तन आता है। समय समय पर अनेक परिवर्तन आये हैं। सामाजिक विघटन के साथ मूल्य टूटे हैं, और टूटते रहते हैं। यह "मूल्य संक्रमण" की क्रिया अनवरत है। इतिहास में जब भी परिवर्तन आया तो मूल्यों में भी अन्तर उपस्थित हुआ। समय व और परिस्थिति के अनुरूप मूल्यों ने अपना श्रृंगार किया। मूल्यों का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। मानव के उत्थान पतन के साथ उन्होंने भी नया जीवन देखा है।

हम यह नहीं कह सकते कि, मानव मूल्यों की एक बार प्रतिष्ठा हो चुकी है। अतः अब हमारा कोई दायित्व नहीं है। वस्तुतः यह सृजन सिंचन का कार्य तो प्रत्येक युग करता रहता है। फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि, "सम्पूर्ण सभ्यता जिन मूल्यों पर आधारित थी, वे ढीले पड़ गये हैं, परिणाम यह है कि, एक भयानक विघटन उपस्थित है।"[75]

आज हमारी कथनी और करनी, आचरण और धारणा के बीच अन्तर आ गया है। हम जिन मूल्यों का नारा लगाते हैं, उसके विपरीत आचरण करते पाये जाते हैं। यह हमारी अन्तरात्मा के विद्रोह की स्थिति है। इस संक्रमण काल में हमारा विशिष्ट दायित्व है।

मानव मूल्यों में परिवर्तन के कारण :

मानव जीवन परिवर्तनशील है। मानव से ही सम्बन्धित मानव मूल्य होते हैं। मानव को समाज की आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक व्यवस्था प्रभावित करती है। जब मनुष्य इन परिस्थितियों से प्रभावित होता है तो निश्चय ही उससे सम्बन्धित मानव मूल्य में भी परिवर्तन होता है।

साम्प्रतिक युगीन समाज में अर्थ व्यवस्था में अभूतपूर्व परिवर्तन देखने में आया। परिणाम स्वरूप सामाजिक मूल्यों में विघटन की समस्या उपस्थित हुई। अर्थ तो समाज का मेरुदण्ड है। आर्थिक परिस्थितियाँ समाज की शिराएँ हैं जिनमें अर्थ रूपी रक्त प्रवाहित होता हुआ समाज के अन्य अंगों को जीवन प्रदान करता है।

वर्तमान युग अर्थ प्रधान युग कहा जा सकता है। मजदूर एवं पूँजीपति वर्ग परस्पर स्वार्थों की रक्षा के निमित्त संघर्ष की ओर अग्रसर हुये और मूल्य संक्रमण की स्थिति उत्पन्न कर दी। आये दिन मजदूर वर्ग और पूँजीपति वर्ग में रस्साकशी चलती रहती है। भारत की परम्परागत कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था औद्योगीकरण के रूप में निखार पा रही है। परिणाम स्वरूप ग्राम एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था को धक्का लगा है और नगरों को प्रोत्साहन मिला एवं तत्सम्बन्धित मूल्यों का प्रादुर्भाव हुआ है। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में आर्थिक विकास के निमित्त पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण किया गया एवं योजनाबद्ध आर्थिक प्रगति की आवश्यकता अनुभव की गयी है। देश में औद्योगीकरण की संभावनाएँ बढ़ी हैं, किन्तु साथ ही देश में बेरोजगारी, भुखमरी एवं गरीबी की वृद्धि हुई है।

गाँवों में विकासात्मक परिवर्तन की गति तीव्र हुई है। विकास की इस गति ने ग्रामीण जनता के सम्मुख एक चमत्कारिक प्रभाव उपस्थित किया है और परम्परागत मूल्यों के आगे एक प्रश्नचिन्ह छोड़ दिया है। पूँजीवाद और समाजवाद की दो विचारधाराओं के मध्य वर्तमान आर्थिक जगत पेन्डुलम की भाँति अस्थिर है। जनतान्त्रिक पृष्ठभूमि के परिणाम स्वरूप समाजवाद अधिक बलशाली सिद्ध होता जा रहा है। लगता है मार्क्स का स्वप्न साकार होने जा रहा है। परम्परागत पूँजीवाद ध्वस्त होता जा रहा है और समाजवादी परिस्थितियों के साथ ही नवीन विचारधारायें उद्भूत हो रही हैं।

बैंकों का राष्ट्रीयकरण, लघुउद्योगों को प्रोत्साहन, किसानों को सरकार द्वारा ऋण प्रदान करने की योजनायें इत्यादि मूल्य संक्रमण के सशक्त माध्यम बन रहे हैं। आर्थिक परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ ही राजनीतिक परिवर्तनों ने भी मूल्य संक्रमण को गति दी है। स्वाधीनता प्राप्ति के साथ ही भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वच्छता का अनुभव किया जाने लगा है। समाज से भी अधिक व्यक्ति विशेष की प्रतिष्ठा बढ़ी है।

प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को मताधिकार है जिससे हर व्यक्ति में अस्तित्ववाद एवं "स्व" की भावना को बल मिला है। सरकार द्वारा पिछड़े वर्ग के लोगों को भी अभूतपूर्व प्रोत्साहन दिया गया है। उसमें भी राजनीतिक चेतना का विकास हुआ है।

परिवर्तित आर्थिक परिस्थितियों ने भी सामाजिक मूल्यों को पर्याप्त आन्दोलित किया है। साम्प्रदायिकता का जो विध्वंसकारी स्वरूप हमारे सम्मुख उपस्थित हुआ है। उससे राष्ट्रीयता की भावना को आघात होने की सम्भावनायें निरन्तर बनी रहती हैं। किन्तु हाल ही में हुये

भारत पाक युद्ध ने यह स्पष्ट कर दिया है कि, भारत निवासियों का प्रमुख धर्म एक ही है ।राष्ट्रीयता। ।

परम्परागत नैतिकता व्यक्ति स्वातन्त्र्य एवं व्यक्ति विकास में बाधक सिद्ध हुई अतः शनैः शनैः यह ध्वस्त हो गई। आदर्श का स्थान यथार्थ ने ग्रहण कर लिया है।

विज्ञान और दर्शन में सामन्जस्य इस युग की महत्वपूर्ण घटना है। ईश्वर परम्परागत धारणाओं से व्यक्ति का विश्वास उठता गया और शक्ति रूप में ईश्वर के सापेक्ष स्वरूप को स्वीकृति प्रदान की गई। इसी प्रकार पाप पुण्य, स्वर्ग नर्क, सुख दुःख, जन्म मृत्यु एवं नियति सम्बन्धी परम्परागत मान्यताओं में भी पर्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होता है।

आधुनिक वैज्ञानिक युग में मानव धर्म की आवश्यकता को अनुभव किया जा रहा है। इसीलिये गाँधीवाद एवं सर्वोदयवाद जैसी विचारधाराओं को प्रतिष्ठा मिली है।

सर्वत्र विश्वशान्ति के लिये प्रयत्न किये जा रहे हैं। नेहरू जैसे महापुरुषों ने विश्व राज्य का स्वप्न भी इसी युग में संजोया था। "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया:" एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो और इसी के अनुसार आचरण किया जाय। इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई।

सामाजिक परिस्थितियाँ भी पर्याप्त रूप से परिवर्तित हुई हैं और उनमें भी कुछ संक्रमण की अनवरत प्रक्रिया को बल दिया ।

समाज में नवीनीकरण की चेतना के प्रादुर्भाव से नवीन मूल्यों को बल मिला। पश्चिमीकरण, शहरीकरण, औद्योगीकरण एवं मशीनीकरण जैसी प्रक्रियाओं ने परम्परागत सामाजिक मूल्यों के मानदण्ड को ही विशृंखलित कर दिया।

समाज में अर्थ संघर्ष को बल मिला, इसी के साथ ही अन्य विसंगतियों को भी प्रश्रय मिला और सामाजिक विघटन की समस्या उत्पन्न हुई।

नैतिक मान्यताओं की दृष्टि से आश्चर्यजनक परिवर्तन देखा गया। बढ़ती हुई जनसंख्या पर नियंत्रण पाने के प्रयत्नों ने नैतिक मूल्यों को क्षत विक्षत अवस्था में ला पटका है। यौन सम्बन्धों में स्वेच्छा चारिता का आग्रह बढ़ा है। सेक्स को प्राकृतिक आवश्यकता मानकर मात्र आनन्द की प्राप्ति ही इसका अंतिम मूल्य माना जाने लगा है। परिस्थितियों की इस चोट से दाम्पत्य जीवन के मधुर सम्बन्धों सम्बन्धी मूल्य भी बच नहीं सके हैं।

समाज में बढ़ती हुई बेकारी की समस्या से युवा वर्ग में कुण्ठा, संत्रास एवं विद्रोह की भावना का प्रादुर्भाव हुआ है। छात्र आन्दोलनों की धूम मची हुई है और परम्परा के प्रति विद्रोह छात्र वर्ग के रूप में विकसित होता जा रहा है।

मार्क्स, फ्रायड, डार्विन, रसेल, आइन्सटाइन, टैगोर, गाँधी, अरविन्द इत्यादि सामाजिक चिन्तकों के विचारों से भी समाज में नवीन मान्यताओं का प्रादुर्भाव हुआ है और मानव मूल्य परिवर्तित होने लगे हैं। स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद प्रत्येक व्यक्ति में स्व की भावना का विकास हुआ है। वयस्क मताधिकार से इस ओर भी बल मिला है।

समाज के स्थान पर व्यक्ति को प्रतिष्ठा मिली है। परिणामस्वरूप परम्परागत सामाजिक बन्धन स्वतः ही शिथिल हो गये हैं।

पुरुषवर्ग के साथ ही नारी वर्ग में भी व्यक्ति स्वातन्त्र्य की चेतना का पर्याप्त विकास हुआ है। आधुनिक नारी परम्परागत सामाजिक बन्धनों से मुक्त हो चुकी है। इसी के साथ ही नारी सम्बन्धी परम्परागत मूल्य भी ध्वस्त हो गये हैं। अब उसे अर्धांगिनी न कहना ही उचित है, उसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। नारी स्वातन्त्र्य की इस चेतना ने संयुक्त परिवार को तो विश्रृंखलित करने में आंशिक योग दिया ही किन्तु दाम्पत्य जीवन की एक सूत्रता पर भी कुठाराघात किया है।

परम्परागत पारिवारिक मूल्य में भी इस परिस्थिति में परिवर्तन अवश्यम्भावी हो. विवाह के परम्परित बन्धन ढीले हो गये हैं। विवाह अब दो आत्माओं का पुनीत मिलन, जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध एवं एक धार्मिक संस्था न रहकर मात्र एक मैत्री सम्बन्ध अथवा समझौता रह गया है जो टूट भी सकता है। परम्परागत वैवाहिक जीवन अविच्छिन्न था । प्रेम विवाह, अन्तर्जातीय विवाह एवं विधवा विवाह अमूल्य नहीं कहे जा सकते हैं।

प्रेम का परम्परागत स्वरूप अब विकृत हो गया है। आज स्त्री एवं पुरुष के सम्बन्धों के नवीन आयाम परिलक्षित हुये हैं। पति पत्नी के सम्बन्ध अब स्वच्छन्दता पर आधारित हैं न कि नियन्त्रण पर । सतीत्व और पतिव्रतत्व की धारणायें बीते ह युग की बातें लगने लगी हैं। गर्भपात की वैधानिक स्वीकृति ने तो परम्परागत नैतिकता को पूर्ण अवमूल्यन प्रदान किया है।

उपर्युक्त कारण ही मानव मूल्यों में परिवर्तन के सहायक रहे हैं। इन्हीं परिस्थितियों में आज हमारे समाज की व्यवस्था मानव मूल्यों की दृष्टि से परिवर्तित हो रही है।

::पारिवारिक विघटन::

स्वतंत्रता के बाद गाँवों में बहुत तीव्रता से विघटन विलगाव एक नये सामाजिक मूल्य के रूप में विकसित हुआ। इसके प्रथम प्रहार में संयुक्त परिवार की कड़ियाँ ध्वस्त हो गई है। गोपाल उपाध्याय की कहानी "दरार दर दरार" तक आते आते पूर्णाहुति की स्थिति तक पहुँच जाता है, जब लगता है कि, पिता, बहन, भाई और अन्य रिश्ते खोखली संज्ञा मात्र रह गये हैं। पिता के आगे तीन भाइयों में बँटवारा हो रहा है और वह अत्यन्त निरीह स्थिति में सारी पीड़ा पीकर मौन रहने के लिये विवश है।

स्वतंत्रता पूर्व एक दशक से उभरी यह प्रवृत्ति स्वतंत्रता के बाद वाले प्रथम दशक तक कुछ कुछ समझौते की आशावादिता से पूर्ण रहती है। यह शिव प्रसाद सिंह की कहानी "बीच की दीवार" से स्पष्ट है किन्तु 1960 के बाद यह प्रवृत्ति व्यापक प्रसार पाकर एक नये सामाजिक मूल्य के रूप में अनचाहे भी प्रतिष्ठित हो जाती है।

समाज की अन्य परिवर्तित परिस्थितियाँ इसमें सहायक होती हैं। शिक्षा, राजनीति, रोजगार, नौकरी, कानून अनुकूलन, वैयक्तिकता के उभार और परम्परा विद्रोह आदि के प्रभाव विघटनवादी सिद्ध होते हैं।

77

शैलेश मटियानी की कहानी "पुरखा" में परिवार टूट रहा है और इस टूटन की पीड़ा परिवार के प्रधान आनन्द सिंह थोकदार को उन्मथित कर रही है। अरे, परिवार होने को तो देवदार के वृक्ष की तरह है। सात सात बहुएँ, छः छः बेटे। दो बीसी तक पोते नातियों की गिनती। पर कलयुग में कहाँ कुटुम्ब एक रहता है? सब अलग न्यारे हो गये। थोकदार ने बहुत समझाया कि, कुटुम्ब का एक होके रहना ही ठीक है। दुश्मनों की आँख उठाने की हिम्मत नहीं होती। पर बिरादरी में मान प्रतिष्ठा रहती है।

एक रहोगे, तो कोई उँगली नहीं उठायेगा, पर कौन किसका सुनता है आज के जमाने में।

नगर के अध्ययन में यह विखराव मर्मान्तक ऊब, नीरसता, तनाव, अभिशाप और तिक्ता परदेश्य है। ज्ञानरंजन की कहानी "शेष होते हुये"[78] में इसकी रोमांचक स्थितियाँ अंकित हैं। कहानी में मझला बाहर से आता है तो उसे लगता है कि, किसी नकली जगह के सामने व्यर्थ खड़ा हुआ है। वह कठोर दृश्यों को स्वीकार कर लेता है। एक ही घर में कई घर हो गये हैं। मझला सोचता है कि, यहाँ कोई संघर्ष नहीं किया जा सकता। सिर्फ दर्शक की निज से टूटने तक किसी तरह सहा जा सकता है।

कहानी में मझला तटस्थ दृश्य और सम्पृक्त भोक्ता दोनों है। उसकी इस अनुभूति में कि, जैसे "ये सब लोग किसी एक स्थान से नहीं, अलग अलग जगहों से आये हैं" विघटन विखराव की अद्भुत मार्मिकता व्यंजित है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि, नगर से लेकर सामान्य ग्राम और पर्वतांचल तक में वस्तुनिष्ठ अनुभूतिपरक पारिवारिकता कथा साहित्य में विघटन विखराव का नया मूल्यांकन करके चित्रित हुई है।

:समाज विघटन:

कथा साहित्य में जो सामाजिक जीवन अंकित होता है वह अत्यन्त उखड़ा और बिखरा हुआ है। उसकी समग्रता विखंडित हो गयी। पुराने जीवन मूल्य टूटते जा रहे हैं। नये मूल्यों का निर्माण नहीं हो रहा है। समाज में नये नये परोपजीवी वर्ग उत्पन्न होते जा रहे हैं।

तिमिराच्छन्न ग्रामांचल को विकास के प्रकाश से जगमगाने के लिये मोटी मोटी धनराशि व्यय हो रही है परन्तु अन्धकार की परतें टूटती नहीं नजर आ रही हैं। खण्ड विकास क्षेत्रों के उदय के साथ वास्तव में विकास खंडित हो गया। वह कहीं हो रहा है, कहीं नहीं हो रहा है। वह जहाँ नहीं हो रहा है, वह क्षेत्र है गाँव।

गाँव और नगर का असन्तुलन वृद्धि पर है। जिस विकसित समाज की अपेक्षा थी वह सर्वथा दुःस्वप्न सिद्ध हो रहा है। सामूहिक समाज जीवन में यदि ऊब और उदासी है तो नव विकास के किस आयाम के प्रति आभार प्रदर्शित किया जाये, कथाकार किससे प्रभावित हो? ललित शुक्ल की कहानी "टुँलका" में स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण समाज का यह धुंधलका अंकित हुआ है। नयी स्थितियाँ मनुष्य को मनुष्य बनकर जीवित भी नहीं रहने देतीं। विकासदीप के तलवर्ती अंधकार का एक चित्र कथाकार के शब्दों में:

"एक औरत बच्चा के पास क्रन्दन करके रो रही है। उसके पति परदेश जा रहे हैं। दीवाल की आड़ में गाँव की एक बूढ़ी बुढ़िया एक झोले से निकालकर दूसरे में भर रही है। सिद्धू पत्रकारिया झल्ली उर्फ धी गया है कि, गाँव की किस्मत लड़खड़ा रही है। उसके पास कई नेतागण मुस्करा रहे हैं, जिन्होंने उससे कम इन्तजाम की उजरत पन्द्रह रुपये ली थी। ब्लाक का ग्राम सेवक बन्दूकेन बना सायकिल की दुकान के पास खड़ा है। उसने हर प्रसाद से टमाटर के अच्छे बीजों के लिये चार रुपये वसूले थे...बीज ऐसे थे कि, उनमें अंकुआ ही नहीं फूटा"।[79]

समाज में अन्ध विश्वास और तस्कर व्यापार अर्थात् अति प्राचीन और आधुनिक प्रवृत्तियाँ एक रंग में हैं, यह स्थिति अप्रत्याशित नहीं, परन्तु विकास के नाम पर नए शोषकों का जाल समाज को और अधोगामी

स्थिति का द्योतक है, जो अत्यन्त हीन और चरित्र विकृति है।

स्वतन्त्रता के बाद इसकी प्रतिक्रिया में विद्रोह विस्फोट भी हुआ परन्तु सब मिलाकर यह सामाजिक विघटन की ओर प्रोत्साहित करने वाला ही सिद्ध हुआ। इस विद्रोह वृत्ति को जगाने की क्षमता अशिक्षित और अविकसित गाँव में भी नहीं अतः आक्रोश की स्थितियाँ नगरों में ही उभरी। उसका उथला उथला जो कुछ विकृत प्रभाव अविकसित गाँवों में पहुँचा, उसने उसे अन्य प्रतिक्रियाओं में अत्यन्त आकुल और विच्छिन्न कर दिया।

:ग्राम विघटन:

रामदरश मिश्र की कहानी "खँडहर की आवाज" में गाँव की इस उत्कट विघटन की कथा बहुत मार्मिकता के साथ अंकित की गई है। बहुत दिनों बाद आख्याता एक पूर्व परिचित गाँव में जाता है, कि वहाँ वह देखता है कि, वहाँ वह स्कूल जिसमें एक त्याग मूर्ति विद्वान पण्डित जी के सान्निध्य में वह कभी साहित्य रत्न का अध्ययन सम्पन्न करता था, खँडहर की तरह उदास पड़ा है। उसकी आँखों के सामने अतीत उभरता है और प्रशान्तकाय वाले पंडित जी की स्मृति में वह डूब जाता है।

स्वतन्त्रता आन्दोलन के लोक प्रिय सेनानी उस पण्डितजी ने जब जहाँ गुलाब लगाए थे वहाँ अब बबूल उग आए हैं। उनके द्वारा निर्मित कुँआ कूड़े से भर गया है। कुत्ते, स्यार, साँप बिच्छू और गिरगिट उसमें निवास करते हैं। आख्याता और गहरे में डूबता है। उसे लगता है कि, स्वराज्य के बाद राजनीति की बयार चली तो "साहित्यरत्न" के साथ पण्डित जी की आस्था भी समाप्त हो गई। विविध मानसिक दुविधाओं में पंडितजी राजनीति में उतर आये और स्कूल छूट गया। वास्तव में शिक्षा के क्षेत्र में उनकी पूछ नहीं होती है।

स्वतन्त्रता के बाद भी हवा उनके अनुकूल नहीं पड़ती है। विवश होकर उसी के अनुकूल स्वयं को बनाने के लिए वे राजनीति में .. विरोधी पार्टी में.. आ जाते हैं। खूब जोश से चुनाव में हारते हैं। गन्दी प्रतिस्पर्धा में फँस जाते हैं। जो गोबू कभी उनकी पद सेवा किया करता था वह सरकारी दल में आकर उनसे टक्कर लेता है।

फिर विरोधी पँडितजी वोट के चक्कर में अपढ़ गँवारों की अभ्यर्थना करते फिरते हैं और सर्वस्व गँवाकर हार जाते हैं तो पुनः अपनी खेती पर वापस आ जाते हैं। घास पात करते हैं, खटिया टेपरी करते हैं और आधा पेट खाकर सो रहते हैं। पुनः पुलिस डाके उन्हें सरकारी दल में ठेल देते हैं। तब उन्हें दुकान का कोटा मिल जाता है, इंजीनियर की जी हुजूरी, मजदूरों का पेट काटना, फिर धनी होकर एक विवाह करते हैं और एक दिन मर जाते हैं। आपधिकार कहता है कि, वे मरे नहीं, उन्होंने आत्महत्या कर ली। देश और आत्मा के संघर्ष में उन्हें तोड़ दिया। वास्तव में पँडित जी की "आत्म हत्या" गाँव की हत्या है और सामाजिक विघटन बिखराव का सूचक है। देश स्वाधीन हुआ किन्तु गाँव पराधीन हो गये। अब उन्हें राजनीति नचा रही है, तोड़ रही है, पतित बना रही है, क्यों कि वे उसे जानते नहीं है, और वह उनके सिर पर लाद दी गई है।

यह स्थिति राजनीतिक मूल्यों के ह्रास की कथा का उल्लेख करती परिलक्षित होती है।

:नयी नैतिकता:

आधुनिक कथा साहित्य में एक नयी नैतिकता आई है जिसका स्रोत मनोविश्लेषण है। इसने अवचेतन का वह लोक उद्घाटित किया कि, समस्त परम्परागत धारणायें ही उलट गयीं सौन्दर्य, प्रेम, आकर्षण, घृणा भक्ति और सम्बन्धों के सन्दर्भ में उस नयी दृष्टि से सोचा जाने लगा। मनुष्य मनुष्य के

रहकर अपने मूल रूप में "जानवर" अब हुआ है। बाहर से सदाचारी दीखने वाले लोग अवचेतन में कामकुंठाओं का विषमजाल पाले वास्तव में परम दुराचारी हैं।

बाहर की काम वर्जनायें भीतर अनेक उपद्रव खड़ा करती हैं। मनोविश्लेषण के जीवन की समस्त क्रियाओं के केन्द्र में भी वह आ गया। कुंठाओं, विकृतियों और ग्रन्थियों के ऐसे जकड़न जाल खुलने लगे कि, उसकी भयंकरता देखकर परम्परावादी काँप उठे। पाप पुण्य जैसी कोई वस्तु नहीं रह गई। अवचेतन अनावृत होने लगा और व्यक्ति अपनी पूरी सच्चाई और नग्नता के साथ अपने ही सामने खड़ा होने लगा ।

यह आत्मान्वेषण आधुनिकता का एक महत्वपूर्ण आयाम है। विज्ञान ने बाह्य विश्व सम्बन्धी समस्त गोपनीयता अथवा रहस्य की गाँठों को खोल दिया दिया और मनोविज्ञान ने व्यक्ति के अन्तर जगत के यथार्थ को उजागर कर दिया। विश्व साहित्य ने बड़ी तीव्रता से उस वैयक्तिक स्तर पर अपने को मोड़ा है। स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी कथा साहित्य ने अपनी तीव्रता से विकास करके विश्व कथा साहित्य के समान्तर अपने को खड़ा कर लिया है।

इस तीव्र विकास की प्रवृत्ति का ही यह प्रभाव रहा है कि, स्वतंत्रता के बाद ग्रामोन्मुख होकर भी हिन्दी कथा साहित्य तीव्रता से नगरोन्मुख हो गया क्योंकि विश्व साहित्य आज वैज्ञानिक उपलब्धियों और युद्धोत्तर परिवर्तनों को झेल कर । कुल मिलाकर नगर बोध का साहित्य है, बल्कि उससे भी दो कदम आगे आज महानगरीय बोध की अन्तरिक्षयुगीन अनुभूतियों के बीच से गुजरता कथा साहित्य बड़ी निर्ममता से परिचित मान्यताओं का मर्दन करता क्षिप्र गतिशील है। नयी नैतिक मान्यताओं की प्रतिष्ठा इसी

महानगरीय बोध पर आधारित है।

इसे हिन्दी कथा साहित्य में कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव और ज्ञान रंजन आदि ने प्रतिष्ठित किया है। ग्राम स्तर पर नैतिक मान्यताओं का विध्वंस ही एक खुले विद्रोह के रूप में उपस्थित हुआ है। अभी नयी नैतिक मान्यताओं की प्रतिष्ठा योग्य बौद्धिकता से परिपूर्ण भूमि वहाँ तैयार नहीं हो सकी है।

राजेन्द्र यादव की कहानी "प्रेम लेटर"[80] और "अनुपस्थित सम्बोधन"[81] में यही नयी नैतिकता है। प्रेम लेटर में मध्य वर्ग का केसरी वर्णित है। कम्पनी के केबिन पर बैठा बॉस सिर पर सवार है केसरी एक ही पाकेट में रामायण का गुटका और प्रेम लेटर रखे है।

महानगर की छटपटाती, टूटती सड़ी जिन्दगी में काम करते करते प्रेम लेटर के सम्बन्ध में उठी विचार कल्पनायें कुछ केसरी को क्षण भर के लिये हँसाती हैं। रामायण का प्रेम लेटर के साथ पाकेट में पड़ा रहना स्वयं एक बहुत बड़ा विद्रोह है और व्यंग्य भी है। भावस्तर पर नये मोड़ों ने पुरानी नैतिकता के लौह दंड को काट कर टुकड़ा बना दिया। "अनुपस्थित संबोधन" में लड़की सीमा अपनी प्रेमी से कहती है कि, माँ के सामने ही तेज अंकल मुझे जोर से भींच कर ठीक इसी प्रकार चूमते हैं जैसे तुम चूमते हो...देखकर माँ का चेहरा ऐसा खिला गुलाबी हो जाता है जैसे उन्हीं को चूमा जा रहा हो। अंकल जब विदेश से आये थे तो मुझे देखकर बुरी तरह चौंक जाते थे। अक्सर माँ से कहते थे, इस लड़की को देखकर मैं एकदम डर जाता हूँ। हू ब हू तुम्हारी शक्ल है....जब हम लोग मिले थे तो तुम बिल्कुल ऐसी ही थीं। रत्ती भर तो फर्क नहीं है। शरीर, कद, ऊँचाई, चेहरा, मोहरा, बोलने का तरीका,

सभी कुछ यही है। माँ तब यहाँ मुझे ही देखा करती थी। लगता था, माँ माँ नहीं, सेब अंकल है और मैं खुद मैं नहीं, जवानी के दिनों की जो हूँ। एक दिन सेब अंकल ने हिचक कर कहा, मुझे यही डर है कि, कहीं सीमा को तुम समझकर कुछ कर न बैठूँ।" माँ ने बुरा नहीं माना। इस प्रकार इस कहानी में यौन विकृति सम्पूर्ण रीति से ।सेक्स। को समर्पित है और कथाकार के आगे व्यक्ति जैसे सम्मोहित होकर अपने नग्न अवचेतन की बखिया उधेड़ रहा है।

ग्राम शैली कहानियों में यह नयी नैतिकता प्रस्थापित कर हुई है जिसकी एक झलक मधुकर गंगाधर की कहानी "तक्षक" में दिखाई पड़ती है। वास्तव में ग्रामों और नगर बोध की भीषण टक्कर है। देवीदत्त थरथरा रहा है और इस विस्फोटक क्षण में मनी उसे "देवु भैया.." कहकर चिल्ला उठती है तो वह उसके ओठों पर उँगलियाँ रख देता है, मनी मैं तुम्हारा भैया नहीं हूँ। मैं मनु हूँ...आदि मानव हूँ। मेरे आगे तुम हो, श्रद्धा, सृष्टि की एक मात्र नारी..शेष सृष्टि सूनी है। और हाथ फैला देता है।..मेरी माँ का सगा भतीजा।" और फिर संस्कार, वर्जना, कुंठा, ग्रन्थि और मनोव्याधि की दुस्तर श्रृंखलायें उस नयी नैतिकता को जकड़कर फैला देती हैं जिससे उबरना कठिन है।

: "सम्बन्ध तनाव" :

सम्बन्धों का तनाव, नये सम्बन्धों की खोज और पीढ़ियों का संघर्ष नये सामाजिक मूल्यों के रूप में आधुनिकता का महत्वपूर्ण आयाम बनकर सन् 1960 के बाद हिन्दी कथा साहित्य में उभरा है और ग्राम कथाकारों में भी इसका विकास दृष्टिगोचर होता है। पीढ़ियों का संघर्ष और पिता पुत्र आदि के द्वन्द्व तो सनातन हैं परन्तु अब इनके जो रूप उभरे हैं उनमें पिताओं

के प्रति युगीन अस्वीकृति एक सर्वथा नये धरातल पर उभरी है। ज्ञानरंजन की "पिता"[82] शीर्षक कहानी में पिता के गँवारपन को लेकर पुत्र से शीतयुद्ध ठन जाता है और स्थिति पर्याप्त तनावपूर्ण हो जाती है।

पुत्र में नागरिक सुख सुविधाओं को लेकर पूरा अहंकार है, और वह पुरातन जीवन व्यवस्था की कठोरताओं से ऊबा सा लगता है। उसमें नयी पीढ़ी का अहं मुखर है। वह पिता को ढोंगी और "मूढ़ अहंकारी" कहकर चिल्लाना चाहता है। स्थिति की गंभीरता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि, वह पिता के अस्तित्व को भी सहन करने के लिये तैयार नहीं है। वास्तव में पिता उसी तरह आज सत्ता का प्रतीक है जिस तरह "नारी" पराधीनता का ।

राम दरश मिश्र की "पिता" शीर्षक कहानी में विद्रोही पुत्र की मनःस्थिति को विश्लेषित किया गया है। कथाकार आरम्भ में विघटित जीवन मूल्यों के अवमूल्यन का प्रश्न उठाता है। पिता के प्रति पुत्र का श्रद्धा भाव एक चिरन्तन मूल्य है, एक सामाजिक स्वीकृति है और धीरे धीरे टूटकर वह टूटना ही एक नया मूल्य होता जा रहा है। पुत्र अब पैदा होने के लिये पिता का एहसानमन्द नहीं रह गया है बल्कि उसे इस बात का जिम्मेदार समझता है कि, उसने अपने आनन्द के लिये एक जीवन को दुनिया के नरक में जीने के लिये मजबूर कर दिया ।

शिवप्रसाद सिंह की कहानी "बेहया" में भी यही उन्मुक्त आधुनिकता है । कामतानाथ और अरुण बाबू दोनों कुमारी के घर का चक्कर लगाते हैं।

कामतानाथ अपने पिता से लड़ता है और गृह परित्याग कर देता है। फणीश्वर नाथ रेणु की कहानी "हाथ का जस और पाव का सत्" में भी एक पिता पुत्र का तनाव है और प्रतिस्पर्धा में कोई किसी से घट कर नहीं है। पुत्र की बहू घर में आती है तो पिता अत्यन्त बेहयाई के साथ "ज्वान तड़ातड़" पहाड़िन बैठा लेता है।

स्वतन्त्रता के बाद राजनीतिक स्थितियों के समानान्तर इस सामाजिक क्षोभ का विकास हुआ है। राजनीति में पुरानी पीढ़ी ने नेतृ वर्ग ने जो सत्ता का मोह और उसके साथ चिपटे रहने की दीर्घसूत्रता प्रकट की तो उसकी व्यापक प्रतिक्रिया नयी पीढ़ी के युवा वर्ग में हुयी।

डा० शिव प्रसाद सिंह ने एक निबन्ध[83] में इस पिता पुत्र द्वन्द्व के संदर्भ को मनोविज्ञान सम्मत "इडिपस ग्रन्थि" से जोड़ा है और उषा प्रियंवदा की कहानी "वापसी", विजय चौहान की "मुक्ति", ज्ञानरंजन की "पिता" और मनोहर श्याम जोशी की "एक दुर्लभ व्यक्तित्व" का उल्लेख करते हुये यह विश्लेषित करने का प्रयास किया है कि, जहाँ "देवा की माँ" "दादी माँ" और "गुलरा के बाबा" आदि के रूप में स्वतन्त्रता के बाद कहानियों में आत्मान्वेषण का क्रम चल रहा था वहाँ सन् 1960 के बाद एक मोहभंग का झटका लगा और बुजुर्गों के प्रति आक्रोश भाव उदित हुआ। डाक्टर शिव प्रसाद सिंह का विचार है कि, पिता पुत्र द्वन्द्वाश्रित कहानियों में क्षोभ सचित विद्रोह नहीं, क्षोभ रहित आक्रोश है।

पिता पुत्र की ही भाँति पति पत्नी का तनाव नयी कथा की एक प्रमुख आधुनिक प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति नारी के उभरते नये स्वाधीन व्यक्तित्व की की माँग का प्रतिफल है नये कथा साहित्य में पति पत्नी का तनाव उनके बीच तीसरे के प्रवेश की स्थिति में भी उभरा हुआ है।

इस विध्वंसात्मक स्थिति का सामना करता हुआ कहीं कहीं अपनी सहनशीलता को भी खो बैठा है। उसका स्वर है "अब और नहीं....नाउ नो मोर।" वह उसको बर्दाश्त नहीं करेगा, जो असंगत और व्यर्थ है।"[84]

संकट बोध की प्रक्रिया से गुजरता हुआ नई कहानी का नायक संकट बोध की आखिरी सीमा को स्पर्श करके खड़ा है और अब वह आक्रान्त है मृत्यु, संत्रास और व्याकुलता से। इधर नई कहानियाँ इसी व्यक्ति को चित्रित कर रही हैं।

प्राकृतिक मौत तो अनिवार्य होती है जिसका डर प्रायः किसी को नहीं होता। डरकर भी कुछ लाभ नहीं। दूसरे प्रकार की मौत जो प्राकृतिक मौत से भी कहीं भयानक होती है वह है जीवन मूल्यों के टूट जाने की मौत। आज की पीढ़ी अपने लिये किसी भी मूल्य को चुनने का अधिकार नहीं रखती, उसकी स्वाधीनता वैचारिक, मानसिक। खत्म हो चुकी है। इसी मौत के कारण आधुनिक पीढ़ी संत्रास और यातना का अनुभव कर रही है और बेहूदी जिन्दगी व्यतीत करने के लिये मजबूर है।

अस्तित्व की मजबूरी का मतलब निष्क्रियता नहीं है। अस्तित्व न तो निष्क्रिय है और न स्थिर। अस्तित्व के संकटबोध को झेलने का दूसरा अर्थ होता है अपने बाहरी भीतरी यातनाओं का स्वीकार करना। इसी स्वीकृति में ही जिन्दगी का केवल सत्य छिपा हुआ होता है। सही अर्थ में मृत्युबोध मृत्यु को झेलने की क्षमता पैदा करता है। संत्रास, क्षणवादिता, व्याकुलता, अकेलापन आदि आधुनिक मानव की उस अनिवार्य स्थिति का फल हैं जहाँ अस्तित्व की दारुण यातना सर्वकालिक बन जाती है।

अमरकान्त की "दोपहर का भोजन", "जिन्दगी और जोंक", धर्मवीर की "गुल की बन्नो, भीष्म साहनी की "खून का रिश्ता", मार्कण्डेय की "दूध और दवा, रमेश बक्षी की "कुछ मांस कुछ बच्चे", कमलेश्वर की "नीली झील", रेणु जी की "तीसरी कसम", निर्मल वर्मा की "परिन्दे" राजेन्द्र यादव की "सम्बन्ध" और "एक कटी हुई कहानी", रेणु की "लालपान की बेगम" और "आदिम रात्रि की महक" कृष्ण बलदेव वैद की "दूसरे का पितार" रवीन्द्र कालिया की "क ख ग" ज्ञान रंजन की "आत्महत्या" आदि कहानियाँ जिन्दगी के भयावह यथार्थ को [illegible] अभिव्यक्ति देती हैं।

नये कहानीकार बदलती हुई दुनिया का बोध समानान्तर रूप से करता है और विशिष्ट मूल्यों पर अधिक हावी रहा है।

:"नये सामाजिक मानव मूल्य परिवर्तन और मांग":

आधुनिकता के संक्रमण से परिवर्तित भारतीय सामाजिक परिस्थितियों में नये स्वातन्त्र्योत्तर आकांक्षाओं और मोह भंग के अन्तर्विरोधों की टकराहट में अत्यन्त जटिल हो गई है, एक ऐतिहासिक मोड़ आया है। आधुनिकता पश्चिम से आई और उसकी गति जो स्वतन्त्रतापूर्व अतीत वैभव की सांस्कृतिक अस्मिता युक्त राष्ट्रवादी प्रतिक्रियाओं के कारण मन्द पड़ गई थी, स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् नूतन अनुभूतियों के साथ संकुचितता विस्तारित करके अत्यधिक तीव्र हो गई।

परम्परित सामाजिक मूल्य, पारिवारिक दायित्व और प्रतिबद्धता आदि जैसी सामाजिक संरचना की आधार भूमियों के तिलकने में जनसंख्या वृद्धि, सेवानिवृत्तियों आदि की जटिलतायें, मनुष्य की आधुनिक मापापरीय या क्षण परिवर्तनशील नियति तो कारणभूत है ही, विशेष रूप से इसके मूल में विज्ञान और प्रविधि की वे सार्वभौम उपलब्धियाँ हैं जिन्होंने मनुष्य को अकेला कर दिया तथा समाज के प्रति कोई रागात्मक संपृक्ति न होने के कारण वह उसके लिये मात्र"भीड़" की सत्ता बनकर अवशिष्ट रह गया।

इस पुरानी पीढ़ी के अतिरिक्त दूसरी और युवामानस पर विराजित विद्रोह के कई चरणों में समर्पित नया रक्त है जो कुंठित भी है और क्रुद्ध भी। समस्त मूल्यों, सम्बन्धों और परम्पराओं की अस्वीकृति मुद्रा में समाज की यह नयी पीढ़ी साहित्य के माध्यम से व्यक्त होने लगी है। स्थितियों के दबाव से नये मूल्य भी रेखांकित होने लगे हैं। ग्रामीण समाज में सहकार और बन्धुत्व का जो मर्यादित स्थान था वह ढह गया है। आज गाँव की आन अथवा गाँव की प्रतिष्ठा का मूल्य पूर्णतः लुप्त हो गया है। आर्थिक विकास, उद्योग और यंत्र प्रसार होने से गाँवों में सुरक्षित मानवीय मूल्यों का भविष्य अंधकाराच्छन्न हो जाना संभावित प्रतीत होता है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में इन नवपरिवर्तित स्थितियों और नये सामाजिक मूल्यों का अंकन व रचनात्मक स्तर पर रेणु, शिव प्रसाद सिंह, नागार्जुन और भैरव प्रसाद गुप्त आदि ने किया है।

:"प्राचीन सामाजिक मूल्यों की स्थिति:"

कथा साहित्य में जहाँ भी ग्रामबोध अपनी पूरी ऊर्जा के साथ उभरा है वहाँ प्राचीन मूल्यों को अनायास प्रतिष्ठा मिल गई है। पानु ओलिया की कहानी "शीशा कटी" में पति पत्नी की कहानी है। पहले तो पत्नी स्वयं ही एक अन्य व्यक्ति अमीन के प्रति आकृष्ट होती है और अपने पति से बराबर आशंकित रहती है कि, इस रहस्य का उद्घाटन होने पर उन दोनों की कुशल नहीं। परन्तु बाद में जब अमीन और सिगरेट के टुकड़ों के कारण पति स्वयं पत्नी तुलसी कुँअर को अमीन के यहाँ प्रेषित करने लगता है तो उसकी निर्वीर्यता पर पत्नी को बहुत क्षोभ होता है और वह उससे क्षुब्ध होकर कहती है, "क्या हूँ कौन है तू मेरा ?.... मैं बेहुआ और तू मेरा दलाल।"

तुलसी कुँअर "न केवल अमीन के चंगुल से सुरक्षित निकल आती है बल्कि पति को डपटकर एक ऐसा तड़ाका उत्तर दे देती है जिसमें प्राचीन सामाजिक मूल्य सतीत्व का आक्रोशपूर्ण हुंकार भरा होता है। पानु ओलिया ने तुलसी कुँअर के रूप में परम्परागत हिन्दू कुलवधू के दर्पस्फीत पतिव्रता बोध और आदर्श नारीत्व को अंकित किया है।

शैलेश मटियानी के पर्वतीय कथांचल में आधुनिकता के प्रति विरल प्रवेश होने के कारण प्राचीन सामाजिक, नैतिक एवम् सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आग्रह की कड़ी मुट्ठियाँ ढीली पड़ती नहीं दीख रही हैं। मटियानी की कहानी "रुका हुआ रास्ता" में भी लाचार पति रघीम सिंह को भोजली रात दिन की परेशानियों के कारण छोड़कर गई एक दिन फिर से घर फिरी फिरी आ तो जाती है परन्तु सामाजिक नैतिक मूल्यों का

संस्कारित पलड़ा भारी पड़ता है और भाग बड़ी होती है। प्राचीन मूल्यों की जकड़न, कसाव और कसमसाहट यद्यपि नौकरी में निहित है परन्तु नयी मूल्यवत्ता का विद्रोह नहीं है। नये मूल्यों के प्रति एक अज्ञात भय और आतंक का भाव है। यह नारी नियति की दोहरी जकड़न परलोक भय और समाज भय..को पीती यथास्थितिवादी हो जाती है। शैलेश मटियानी की कहानी "असमय" ("दो दुखों का एक सुख" में संकलित) में भी यही केन्द्रीय भाव दृष्टिगोचर होता है। उसमें भी पति जुआ और अंध है और उसकी भागी पत्नी नैतिक मूल्यों के प्रबल अन्तराग्रह पर पुनः वापस आ जाती है। नये कथा साहित्य में पति पत्नी का जो तनाव दृष्टिगोचर हो रहा है और यौन स्वच्छन्दता में निरामिष दुराचारी मूल्यों को जो धक्का देना आरम्भ किया है वह अविकसित .. अवरुद्ध पर्वतांचल और ग्रामांचल में मूल्य विद्रोह के स्तर पर नहीं दिखाई पड़ता है। पत्नियाँ अपने लगड़े लूले पतियों के साथ भी सतीत्व और दैवी विधान के परलोकाश्रित भावना के कारण निबाहती हैं और निभाती चलती है।

मूल्यों की यही यथास्थिति अविकसित आदिवासी क्षेत्रों में है। अकिंचनता विवशता और एकान्त हीनता की स्थिति में भी वहाँ मान्यता प्रेम सहृदयता, उन्माद, संकीर्णता और मुक्तमनता के विरले समायोजन में पल्लवित पुष्पित रहते हैं। "शानी" की एक कहानी "कर्ण की प्रतीक्षा" में व्यक्ति जीवन के निविड़ एकान्त का अन्तर्द्वन्द्व, उसकी अनुराग बाँसुरी की चरम टेर, विद्रोह और फिर समझौता सब कुछ अंकित है। एक विवश और असमंजस की कठिन स्थिति को पार कर पुरानी व्यक्ति वर्ग और परिवार वर्ग के बंधनों को तोड़ने में समर्थ होता है। वह अपनी भाभी को असहाय छोड़कर अपनी बाल प्रेमिका-[illegible] की सच्ची [illegible] का [illegible]

(घरजमाई) होने नहीं जाता है। और इस प्रकार वह देहसुखवाद पर संयम और मानवता को प्रधानता देकर प्राचीन सामाजिक नैतिक मूल्यों की विजय प्रदर्शित करता है।

शिव प्रसाद सिंह और रामदरश मिश्र में भी कहीं कहीं प्राचीन मूल्यों की प्रतिष्ठा मिलती है। रामदरश मिश्र की कहानी "लाल हथेलियाँ" में सुभाष की पहली विवाहिता पत्नी ममता गँवार, पतिव्रता और सेवापरायणा के साथ गृहकार्यों में लगन अतः गन्दे नाखून और खुरदरी हथेलियों वाली है। दूसरी नौकरी में आने के बाद की प्रेमिका पत्नी है जो फैशन प्रिय, स्वच्छन्द, गृहकार्य विरत, विलासजीवी और लाल नाखूनों के साथ लाल हथेलियों वाली है।

काल चक्र से एक समय रुग्णावस्था में सुभाष को यथाबोध इस रूप में होता है कि, लाल हथेलियाँ पथ्य बनाने, दवा पिलाने और बीमार गालों को सहलाने के लिये नहीं हैं और वह ममता की उन खुरदरी हथेलियों की सुध में डूब जाता है जो चौकों की कालिख से झंवराई अँगुलियों वाली हैं और उसके हर आँसू को कागज के मोटे खुरदरे सोख्ते की भाँति सोख लेने वाली हैं। विवाह संदर्भ में सेवा और पति भक्ति के आदर्श का यह परम्परित मूल्य आधुनिकता के मूल्य रिक्त "खाली घर" में दृष्टव्य है। इसी प्रकार शिव प्रसाद सिंह की कहानी "बीच की दीवार" में एक नया मूल्य विघटन के रूप में उभरता तो अवश्य है परन्तु वह प्राचीन भ्रातृ प्रेम के आगे प्रभावहीन हो जाता है। शहरी बहू की व्यक्तिगत स्वार्थान्धप्रियता गृहदाह के प्रकरण उपस्थित कर देती है और भाइयों में बँटवारा हो जाता है तथा आँगन के बीच में दीवार अर्थात् उँसार पड़ जाती है। परन्तु कथाकार गाँव में अवशिष्ट भ्रातृ प्रेम और कुल मर्यादा के प्रति अभी आस्थावान है। उसमें बीच की दीवार बाधक नहीं होती है और उसका मिलना आधुनिक वैयक्तिक मूल्यों का विघटन हो जाता है।

प्राचीन आदर्शवादी मूल्यों का आग्रह जहाँ कहीं अति के रूप में चित्रित है, अवश्य ही असंगत लगता है। परम्परित सामाजिक मूल्य तो निस्सन्देह टूट चुके हैं और अतीत की वापसी असंभव लगती है।

स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में जहाँ मूल्यभंजक मुद्रा का उभार ही मुख्यतः वर्णित है ग्राम्यस्तर पर प्राचीन सामाजिक मूल्यों का पूर्णतः मूलोच्छेद नहीं हो पाया है और न ऐसा सम्भव ही है। वास्तव में ग्राम भाव का आन्तरिक संगठन ही पारम्परित मूल्यों के सूक्ष्म परमाणुओं से हुआ है जिसका विघटन भयानक विस्फोटक स्थितियों से जुड़ा है।

गाँवों के आधुनिक विकास के साथ उक्त विस्फोटक स्थिति का साक्षात्कार आज का एक सत्य है। यह विकास जिस देश में जितनी ही तीव्रगति से हो रहा है सामाजिक मूल्यों में बदलाव भी वहाँ उतनी ही तीव्रता से हो रहा है तथा पिछली इकाइयाँ पुरातनता से अलग नवीनता की आहट से आशंकित हैं।

:"नैतिक मूल्यों की गिरावट":

नैतिक मूल्यों की गिरावट समाज संदर्भ में तेज विस्फोट के रूप में आई है और नये कथा साहित्य में मनोविज्ञान की उपलब्धियों के सहारे आन्तरिक स्तर पर मूल्य विद्रोह के रूप में उसकी अभिव्यक्ति हुई है। ग्रामभित्तिक चित्रों में यह उभार अराजकता धीमी सी आयी है। कहीं शंका है, कहीं आश्चर्य है तो कहीं प्रश्नाकुलता है। गाँव के लोगों का परम्परागत नैतिकता बोध धक्के पर धक्के खाकर भी अभी टिका है।

"पाप भाव" की जकड़न छूटती नहीं है। जैनेन्द्र कुमार की कहानी "विज्ञान" की परानैतिकता आधुनिकतम राजनीति अनुप्राणित वैज्ञानिक दृष्टि विकास से जुड़ी है जिसकी ऊँचाइयों के स्पर्श से अविकसित ग्राम इकाइयाँ अभी वंचित हैं। अतः नये नैतिक मूल्यों के भौतिकवादी अंधड़ में यहाँ परम्परागत नैतिकता के खंभे हिल उठे हैं, शिविर उखड़ने लगे हैं, रस्सियाँ अभी नहीं कटी हैं।

:"भारतीयता और भारतीय संस्कृति की उपेक्षा":

हमारा सांस्कृतिक संकट, संस्कृति का ह्रास वस्तुतः आर्थिक संकट और राजनीतिक संकट की ही देन है। संकट के नाम से लोगों में अस्थिरता की भावना आ गयी थी जिस कारण सांस्कृतिक मूल्य भी अस्थिर ठहराये गये। अपनी संस्कृति पर हमें विश्वास नहीं रह गया। आधुनिक सुख सुविधा के साधनों की भाँति ही विदेशी संस्कृति भी हमें अच्छी लगने लगी और उसकी चमक दमक तथा चकाचौंध से अभिभूत होकर हमने उसे अपनी संस्कृति के साथ मिला लिया। टेलीविजन, फ्रिज, कार और मिनी स्कर्ट के साथ साथ हब्बेजुम", फ्रायड, व्यापकता सार्त्र और काफ्का को भी अपना लिया।

भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति में टकराहट स्वतंत्रता के पहले से ही है। भारत मोक्ष पर विश्वास करता था और यूरोप भोग पर। भारत भी यूरोप की चकाचौंध से प्रभावित हुआ और अपने मोक्ष के साथ साथ भोग को भी आत्मसात कर यथार्थवाद, अतियथार्थवाद, अथवा क्षणवाद जैसी प्रवृत्तियाँ इसी भोगवादी प्रवृत्ति के कारण ही हमारे यहाँ आई हैं। मोक्ष और भोग को मिलाकर हमारी संस्कृति पूर्व और पश्चिम की खिचड़ी सी बन गयी है।

सेक्सजनित दृष्टिकोण और नवीन मूल्यों की आवश्यकता स्किनर के मनोविश्लेषण तथा डार्विन के जीव विज्ञान से प्रभावित होकर सिगमन्ड फ्रायड ने मनोविज्ञान को वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर खड़ा किया । फ्रायड ने व्यक्ति और समाज की समस्याओं का मूल कारण काम वासना की अतृप्ति को माना । वस्तुतः मनोविज्ञान भी बाह्य दृश्य जगत को ही चिन्तन का मूल तत्व मानता है। लेकिन बाह्य दृश्य जगत का अध्ययन न करके वह मन पर पड़ी हुई उसकी प्रतिच्छाया का अध्ययन करता है। इस अध्ययन का मूल केन्द्र है, जो आदिम सहज प्रवृत्तियों का केन्द्र है। अतः मनोविज्ञान सभ्यता और संस्कृति के विकास, संस्कारों के परिष्कार तथा बुद्धि की अवहेलना करके आदिम संस्कृति का आदर्श प्रस्तुत करता है।

फ्रायड स्वयं स्वीकार करता था कि, मनोविज्ञान केवल पिछली घटनाओं की समीक्षा कर सकता है, लेकिन भविष्य का अध्ययन नहीं कर सकता। यह मनोवैज्ञानिक चिन्तन पद्धति की सबसे बड़ी सीमा है। अचेतन मन सहज वृत्तियों का आगार है। सहज वृत्तियाँ ही सदा शारीरिक आवश्यकताओं की मानसिक अभिव्यक्ति हैं। फ्रायड मुख्यतः दो प्रकार की सहज वृत्तियाँ मानता है पहली जीवन सम्बन्धी तथा दूसरी मृत्यु सम्बन्धी ।

फ्रायड ने मृत्यु सम्बन्धी सहज प्रवृत्तियों को प्रमुखता दी है। उसकी दृष्टि में जीवन एक मात्र बाह्य जगत की भ्रान्ति पर आधारित है। विध्वंस तथा युद्ध, मृत्यु सम्बन्धी सहज वृत्तियों के ही रूप हैं। अतः फ्रायड मनोविज्ञान, राष्ट्रीयता तथा सामाजिक प्रश्नों को भी सुलझाना चाहता है लेकिन यह संदेहास्पद है कि, उसका पतनोन्मुखी दर्शन तथा व्यक्तिवादी चिन्तन पद्धति वैज्ञानिक होते हुये भी सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को भी सुलझा सकने में समर्थ होगी या नहीं। यदि उसे दर्शन तथा विचारधारा

के रूप में स्वीकार किया जाय तो उसका प्रभाव केवल कुछ बुद्धिजीवियों तक ही सीमित रहा।

:"आदर्शवादी मानदण्ड और दुराग्रह का उत्कर्ष":

हम पूरी तरह से न तो रूढ़िवादी ही रह गये हैं और न पूरी तरह से आधुनिक ही बन पाये हैं। रूढ़िवादिता और आधुनिकता इन दोनों के बीच भारतीय समाज की स्थिति बिल्कुल अधर में लटके "त्रिशंकु" की सी हो गई है।

अंग्रेजी शासन के कारण काफी सीमा तक हमारा पश्चिमीकरण हो चुका है। भारतीय समाज और संस्कृति में बहुत से बुनियादी और स्थायी परिवर्तन हुये हैं। अंग्रेज अपने साथ नई औद्योगिक संस्थायें, ज्ञान, विश्वास और मूल्य लेकर आये थे। उन्होंने भूमि का सर्वेक्षण करके राजस्व निर्धारित किया। आधुनिक शासनतंत्र, सेना पुलिस की स्थापना की, अदालतें स्थापित करके कानून की संहितायें बनायी, संचार साधनों का विकास किया। स्कूलों और कालेजों की स्थापना की और इन सबके द्वारा आधुनिक भारत की नींव डाली।"[85]

पश्चिमीकरण में कुछ मूल्यपरक अभिमान्यतायें भी निहित थीं। एक सबसे महत्वपूर्ण मूल्य है जिसे मोटेतौर पर मानवतावाद कहा जा सकता है। इसमें कई अन्य मूल्य सम्मिलित हैं। मानवतावाद में समानतावाद और लौकिकीकरण दोनों ही निहित हैं।"[86]

खेद की बात तो यह है कि, मानवतावाद के नाम पर हमारे बुद्धिजीवी वर्ग ने सभी परम्परागत आदर्शवादी मानदण्डों की हत्या कर

डाली और दुराग्रह का उत्कर्ष इतना अधिक हुआ कि, प्रत्येक कहानीकार सार्त्र, कामू या काफ्का की शब्दावली में बात करना ही कला की सार्थकता समझने लगा ।

मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी जो निराशा की स्थिति में था, फ्रायड के विचारों के प्रति अधिक आकृष्ट हुआ। कट्टर नैतिकतावादी दृष्टिकोण मध्यवर्ग की स्वयं अपनी ही उपज थी। अब वह मनोविज्ञान का आश्रय लेकर स्वयं ही अपनी बनायी नैतिक मान्यताओं की पूर्ण उपेक्षा करने लगा । फ्रायडवादी विचारों के प्रसार के लिए यह उपयुक्त समय था। क्योंकि निराशा एवं कुंठित मध्यवर्ग कट्टर नैतिक मान्यताओं के बंधन से मुक्त होने के लिये छटपटा रहाथा। निराशावादी होने के कारण वह बाह्य परिस्थितियों में अराजक की स्थिति का अनुभव कर रहाथा। फ्रायड ने अचेतन मन में सहज प्रवृत्तियों की अराजकता का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। मध्यवर्ग को हम इस सिद्धान्त में अपनी परिस्थितियों में अराजक की स्थिति का अनुभव कर रहा था । फ्रायड ने अचेतन मन में सहज प्रवृत्तियों की अराजकता का सिद्धान्त में प्रस्तुत किया ।

मध्यम वर्ग को इस सिद्धान्त में अपनी परिस्थितियों का साम्य दिखाई पड़ा। निराशा के कारण मध्यवर्ग यों भी अन्तर्मुखी हो गया था। अतः अपने अचेतन मन में अराजक स्थिति का तीव्र अनुभव करने लगा ।

मध्यवर्ग की परिस्थितियों से फ्रायड दर्शन का गहरा साम्य बैठ गया। यही कारण है कि, मध्यवर्गीय चिन्तकों ने ही इस दर्शन का सबसे अधिक स्वागत किया ।

इस दर्शन ने न केवल मध्यवर्गीय जीवन दृष्टिकोण को प्रभावित किया वरन् न केवल सेक्स सम्बन्धी मान्यताओं का प्रचार हुआ बल्कि अपनी नैतिक सांस्कृतिक विरासत की भी उपेक्षा होने लगी। फ्रायड के पश्चात् युंग, एडलर तथा मैकडूगल आदि मनोवैज्ञानिक ने इस दर्शन एवं विज्ञान का और अधिक विकास किया। फिर बाद में फ्रोम्, सलीवन्, कार्डीनर, मार्गरेट मीड्, रूथबेनेडिक्ट, आदि मनोवैज्ञानिक ने भी जीवन के विविध क्षेत्रों में फ्रायडवादी दर्शन को लेकर नये नये प्रयोग किये और नई परिभाषायें दीं।

फ्रायड के अनुसार दमित इच्छायें ही स्वप्न में आती थीं। अतः लोगों ने इच्छाओं का दमन छोड़ दिया। इच्छाओं की पूर्ति को खुली छूट दे दी गयी। इससे समाज में हिंसात्मक प्रवृत्ति फैल गयी और साथ ही सेक्स तथा मांसल आकर्षण जैसी अनैतिकतायें भी।

फ्रायड ने स्वयं अपने सिद्धान्तों को परा मनोविज्ञान मेटा साइकोलाजी। कहा है और यह उनकी अवैज्ञानिकता तथा काल्पनिकता के प्रति अपने भक्तों की अपेक्षा काफी सचेत भी था। और यहाँ तक बाहरी दुनियाँ के साथ सम्बन्ध का सवाल था, फ्रायड ने मनुष्य को, उसके लाखों वर्षों के विकास को झुठलाकर, फिर उसी आदिम जीव द्रव्यीय प्राणियों के स्तर पर ला बैठाया था।

आधुनिकता के नाम पर पुराने नैतिक प्रतिमान तो समाप्त कर दिये गये, आश्चर्य सौभाग्य है कि, मानव मूल्यों के नाम पर मनुष्य को भी पंगु और विक्षिप्त बना कर उसे सेक्स, शराब तथा नशीली की सीमाओं में जकड़ दिया गया। हमारे कलाकारों के लिए मानवीय मूल्य मर्यादा

तथा कला की सार्थकता यहीं तक सीमित हो गई और नई कहानी इस धुंधलके में कहीं भटक गई ।

जो लेखक यह समझते हैं कि, आज आदर्शवादी मानदण्डों को अपनाना गैर आधुनिकता है और परम्परागत साहित्य लिखना है, वे यह भूल जाते हैं कि, साहित्य का सर्वप्रथम प्रमुख उद्देश्य मानवीय मर्यादा की स्थापना करना है। आज के भयावह संकट में मनुष्य के खोये हुये विश्वास को लौटाकर उसे आस्था एवं संकल्प का बल देता है।

"वर्तमान युग में मूल्य विघटन"

वर्तमान काल में ज्यों ज्यों व्यक्ति की मौलिक चिंतन शक्ति का विकास होता जा रहा है, वह परम्परा से चली आ रहे जड़ मूल्यों को छोड़ता जाता है और उनके स्थान पर नवीन मूल्यों का निर्माण करता है।

आधुनिक युग में विज्ञान के विकास के फलस्वरूप मनुष्य में तार्किक बुद्धि का उदय हुआ उसने परम्परागत जीवन मूल्यों का अंधानुकरण करने के स्थान पर उन्हें तर्क की कसौटी पर कसना आरम्भ किया। मूल्य विघटन का यह स्वर आज के युग की प्रत्येक विधा में सुना जा सकता है।

समसामयिक हिन्दी कहानी में भी परंपरागत जीवनमूल्यों के विघटन एवं नवीन जीवन मूल्यों के उदय के फलस्वरूप उत्पन्न छटपटाहट की गूंज सुनायी देती है। युग में घटित परिवर्तनों के साथ ही हमारी आस्थाएं बदल रही हैं अतः बदलती आस्थाओं के साथ मूल्यों में भी इसी गति से परिवर्तन आना स्वतः आवश्यक है। जब इन आस्थाओं, विचारों एवं मूल्यों के परिवर्तन की प्रक्रिया में तारतम्य नहीं रहता है तो समाज में विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है। वर्तमान संक्रान्तिक युग में इस परिवर्तन की प्रक्रिया में असंतुलन दृष्टिगोचर हो रहा है। आज जिसको हम उद्देश्य बना कर चलते हैं वह आने वाले कल में आरम्भ का बिन्दु बनकर रह जाता है। स्थिति बड़ी विचित्र है।

"एक युग मर रहा है पर दूसरा जन्म लेने में असमर्थ है"। शीघ्रता से मूल्य टूट तो रहे हैं पर उनका स्थान नवीन मूल्य नहीं ले पा रहे हैं। यह त्रिशंकु की स्थिति है। इससे बचने के लिए हम भविष्य में जिन मानवीय मूल्यों के विकास का स्वप्न देखते हैं, उन्हें अभी जन आचरण और जीवन पद्धति में प्रतिष्ठित करना होगा।

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उतार चढ़ाव आ रहा है। सभ्यता और संस्कृति के आयाम परिवर्तित हो रहे हैं। आर्थिक क्षेत्र में विज्ञान के प्रभाव के कारण क्रान्ति हो रही है। यंत्र युग के कारण मनुष्य की स्थिति गौण हो गई है। जीवन में यांत्रिक जड़ता आ रही है। मानव का स्थान यांत्रिक मानव ले रहा है।

सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में परम्परायें टूट रही हैं। अंध विश्वासों का अन्त हो रहा है। वैज्ञानिक विचार पनप रहे हैं। सामाजिक सम्बन्धों में शिथिलता की स्थिति उत्पन्न हो गई है। घर, परिवार, माता, पिता आदि का महत्व न्यून से न्यूनतर होता जा रहा है।

इस भौतिक युग में धर्म की सत्ता समाप्त हो गई है। इससे पूर्व जीवन में जो धर्म का आतंक था, वह अब नहीं रहा। धार्मिक आडम्बर एवं कर्मकाण्डों का अन्त हो रहा है। यहाँ तक कि, जीवन में धर्म को अफीम के विष की संज्ञा दी जा चुकी है। धार्मिक चिन्तन की इस पृष्ठभूमि में मानव धर्म पनप रहा है। धर्म की परिभाषा बदल रही है। इस भौतिक युग में कुण्ठाओं के बीच छटपटाते मानव के लिए किसी न किसी रूप में धर्म का अवलम्ब अवश्य चाहिये।

दर्शन के क्षेत्र में वैज्ञानिक आधार पर नये नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन हो रहा है। प्राचीन वादों की नवीन व्याख्यायें प्रस्तुत की जा रही हैं। अब ईश्वर के स्थान पर तत्वों की खोज की जा रही है। एक युग था जबकि प्रकृति महान थी। नियति के सत्ता के समक्ष मानव बौना लगता था पर इसके विपरीत आज मानव प्रकृति पर विजय प्राप्त कर रहा है। "प्रकृति तो, महान है ही पर मानव उससे भी महान है।" वह प्रकृति पर शासन कर सकता है, कर रहा है।

राजनीति में अनेकों वादों ने जन्म ले लिया है। आज की राजनीति वादों के घेरे में बँध गई है। विविध वादों में संघर्ष चल रहा है। एक वाद को एक दूसरे से श्रेष्ठ प्रतिपादित करने की स्पर्धा लगी हुई है।

आधुनिक विश्व, राजनीति के भीषण आतंक से ग्रसित है। जब राजनीति में तनिक परिवर्तन आता है तो जीवन के अन्य क्षेत्रों में भारी हलचल मच जाती है। आज मंत्रि मण्डल में जब हेर फेर होती है तो बाजार दरों में उतार चढ़ाव आ जाता है। इस प्रकार राजनीति ने मानव मूल्यों को पूर्ण रूप से प्रभावित कर रखा है।

विश्व की वर्तमान परिस्थितियों के सिंहावलोकन से यह स्पष्ट है कि, जीवन के विविध क्षेत्रों में ह्रास अथवा विनाश प्रारम्भ हो गया है। विज्ञान, धर्म, दर्शन नैतिकता, मूल्य, समाज गठन, जातीय श्रेष्ठता, साहित्यिक स्तर सभी तेजी से अस्त व्यस्त हो रहे हैं।

यह ह्रास की स्थिति केवल भौतिक स्तर तक ही नहीं वरन् अपने आपसे भी अपरिचित है। सद् असद् का निर्णय नहीं कर पा रहा है। मानव ने अपना नैतिक बोध ही खो दिया है। आज मनुष्य वैज्ञानिक विकास का उपयोग अधिक से अधिक विध्वंसकारी अस्त्रों की खोज में कर रहा है जिससे कि, मानव सभ्यता को ही नष्ट कर दे। इस प्रकार अखिल मानव जाति पर संकट आ गया है। मानव मूल्यों में विघटन की स्थिति उत्पन्न हो गई है प्रगति और विकास की दिशा में भटकाव आ चुका है।

आज हमारा हृदय हमसे अलग जा पड़ा है और हमारा दिमाग ब्रह्माण्ड के सितारों की तरह उड़ गया है क्योंकि हम सब अज्ञात भय से व्याकुल हैं जिससे हम आँख नहीं मिला सके।"

वर्तमान स्थिति में मूल्यों की सत्ता को नकारा नहीं जा सकता। समाज में कोई न कोई मूल्य सभी स्थितियों में अवश्य ही विद्यमान रहेंगे। प्राचीन मूल्य आज विलय हो गये हैं, पर यह लक्षण कुछ विचारकों की दृष्टि में प्रगति का परिचायक है। मूल्य विहीन समाज समाज नहीं कहला सकता। ये तो एक अदृश्य आदेश है जिसका पालन अपने आप होता रहता है। इंग्लैण्ड के संविधान की भाँति अलिखित है जिन्हें परम्परागत मान्यता मिलती रहती है।

आज जीवन मूल्यों के क्षेत्र में संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई है। वर्तमान समय में जीवन मूल्यों के अवमूल्यन एवं पुनर्मूल्यन की समस्या है। "आज भारत के व्यक्ति और समाज का जीवन एक व्यापक संक्रान्ति से गुजर रहा है। यह समय देश के आर्थिक नवनिर्माण के साथ ही नये जीवन निर्माण का भी है। जिसके परिणाम स्वरूप जीवन के प्रति दृष्टिकोण, सामाजिक तथा वैयक्तिक मर्यादा, नैतिकता, आदर्श, जीवन के प्रतिमान आदि सभी में आधारभूत परिवर्तन उपस्थित हो रहे हैं। अनेक नए और अद्भुत विचारों का जन्म हो रहा है।"[87]

मूल्यों के विघटन काल में भारतीय जन जीवन विकास का प्रयत्न कर रहा है। आजादी के पश्चात् भारतीय समाज व्यवस्था में पूर्णरूप से परिवर्तन हुआ है। स्वातंत्र्योत्तर परिस्थितियों में मौलिक अंतर आया है। आज सम्पूर्ण राष्ट्र में एक संघर्ष की स्थिति बन रही है इसका कारण सामन्ती और पूँजीवादी व्यवस्था के स्थान पर समाजवादी समाज व्यवस्था को स्थापित करने की भावना है। अतः समाजवादी अर्थ व्यवस्था में संघर्ष चल रहा है। समाज में नवीन जीवन दर्शन एवं तत्सम्बन्धी मूल्यों को अपनाने के लिए तरुणों को पुरानी मान्यताओं से भी संघर्ष करना पड़ रहा है।

"भौतिक शक्तियाँ मानव चेतना की भौतिक शक्तियों को बदलती हैं। इस प्रकार भौतिक परिस्थितियों को बदलता हुआ मानव स्वयं को भी बदलता है।" [88]

जब मानव स्वयं बदलता है तो समाज में भी परिवर्तन आता है और तब मूल्यों में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। मूल्य समाज सापेक्ष होते हैं। जब समाज में विघटन चलता है तो मूल्यों पर संकट उपस्थित हो जाता है। आज के समाज में विघटन की प्रक्रिया चल रही है, मानव मूल्यों में भी विघटन आ रहा है। फिर भी इतना स्पष्ट है कि, "ऐसा कोई परिवर्तन आमूल नहीं होता और पिछले युग के सांस्कृतिक उपादान पूर्णतया विलुप्त या परिवर्तित नहीं हो जाते, एक प्रकार की प्रवहमानता के कारण पिछले युग से सम्पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद कभी नहीं होता। इतना अवश्य अनुभव होने लगता है कि कुछ मान मूल्य घिस कर पुराने पड़ गये हैं और उनका स्थान किन्हीं अपरिचित नवीन प्रेरणाओं ने लिया है।" [89]

नवीन प्रेरणाओं से नवीन विचारों का विकास हो रहा है। नई आस्थाएं, नये विश्वास जन्म ले रहे हैं। "माना कि, पुरानी आस्थाएं टूट रही हैं, लेकिन आस्थाओं के निर्माण की अनिवार्यता का महत्व भी अपनी जगह पर है। आस्था ही तो वह वस्तु है जिससे मनुष्य अपने जीवन के वृक्ष में हर पतझड़ के बाद नई बहार लाता है। पुरानी आस्थायें मिट रही हैं नई आस्थाएं जन्म ले रही हैं।" [90] पर नये और पुराने का संघर्ष सदा से चलता आया है।

पुराने की अधिकार लिप्सा नये के विकास में बाधक बनती है। वर्तमान समय में पुरानी मान्यताएं एवं मूल्य इसी प्रकार नवीन मान्यताओं और मूल्यों के सृजन में बाधक बने हुए हैं।

वैज्ञानिक उन्नति ने मूल्यों के परखने का परिवेश ही बदल दिया है। विज्ञानजनित मूल्य संकट विषयक विभिन्न धारणायें हैं। "कुछ का विश्वास है कि, विज्ञान के कारण हमारी आस्थाओं पर निर्मम प्रहार हुआ है। धर्म, ईश्वर, इहलोक,परलोक आदि से हम जिन आध्यात्मिक मूल्यों से बंधे रहते थे, वे आज च्युत हो गये हैं"[91] हमारी दृष्टि से यह कथन दोषपूर्ण है वस्तुतः विज्ञान तो साधन है वह स्वयं न तो नये मूल्यों का निर्माता होता है और न ही पुराने का विघटक ही। वह तो मानव को वास्तविकता का ज्ञान कराता है। वर्तमान समाज में संघर्ष की स्थिति बन रही है। विरोधी विचारधारायें आधुनिक मूल्य संकट का निमित्त बन गई हैं।

एक ओर टॉयन्बी, ज्यास्पर्स, मार्सेल, ईलियट आदि विचारक विज्ञान से उत्पन्न अनास्थावादी दृष्टिकोण के विपरीत पूर्व प्राचीन धार्मिक दृष्टिकोण और तद्जन्य मूल्यों की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। दूसरी ओर रसेल, हक्सले, सार्त्र आदि प्रमुख विचारक ईश्वर के अस्तित्व को नकारते हुये क्योंकि ईश्वर मर चुका है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाते हुये समाज की नवीन व्यवस्था की सम्भावना को लेकर अविवेकी और क्षुब्ध मनुष्य को विवेकी, स्वतंत्र और महान बनाना चाहते हैं।

लारेन्स, हेमिंग्वे, कामू आदि का तीसरा वर्ग और है जो अपेक्षाकृत अधिक निराश और क्रुद्ध है। इन्होंने वर्तमान परम्परागत सम्पूर्ण संस्कृति, वैज्ञानिक उन्नति और बौद्धिक प्रगति का विरोध करते हुये प्रारम्भिक विशुद्ध स्थिति, काम, और अनीति का समर्थन किया। इनकी धारणा के अनुसार दुःख हमारा बन्धन है और असफल कार्य हमारी नियति। इस प्रकार "पहला वर्ग विज्ञान को अस्वीकार कर धर्म अथवा पुरातनवादी दर्शन की प्रतिष्ठा करना चाहता है। दूसरा वर्ग धर्म को अस्वीकार कर वैज्ञानिक

चेतना से ही मानव मूल्यों को प्राणवान बनाने का उत्सुक है। क्रमशः यह मानवतावादी है। तीसरा मत एक प्रकार से वस्तु स्थिति को भावात्मक रूप में स्वीकार कर आदिम अर्थात् प्राकृतिक जीवन का पक्षपाती है।"[92] ऐसी स्थिति में मानव का दायित्व सही परीक्षण कर, उचित को आत्मसात् करने का है।

हमारा वर्तमान जीवन पुरानी समाज व्यवस्था से नई व्यवस्था में प्रवेश कर रहा है, और आज हम एक परिवर्तन प्रक्रिया के अंतिम काल से गुजर रहे हैं। इस प्रक्रिया में हमें बहुत से काल सापेक्ष जीवन मूल्यों को छोड़ना होगा, उन जीवन मूल्यों का छोड़ना होगा जो पुरानी समाज व्यवस्था की उपज हैं, और इस परिवर्तन के साथ ही अपनी महत्ता को खो बैठे हैं। लेकिन वे जीवन मूल्य जो काल निरपेक्ष मानव मूल्य बन गये हैं, निश्चित रूप से वे नये जीवन मूल्यों का आधार बनेंगे। दया, ममता, प्रेम करुणा, सहानुभूति ये सब मानव के काल निरपेक्ष मूल्य हैं जो निःसन्देह समाजवादी समाज व्यवस्था के नये जीवन मूल्य भी होंगे।

"सन्दर्भ सूची"

			पृ०सं०
1-	धर्म और समाज	डा० राधा कृष्णन् हिन्दी अनुवाद	123
2-	आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य	डा० हुकुम चन्द	2
3-	नयी कविता स्वरूप और समस्यायें	डा० जगदीश गुप्त	35
4-	Ethical values in age of science	Paul Roubiczek	219
5-	नयी कविता: स्वरूप और समस्यायें	डा० जगदीश गुप्त	14
6-	माध्यम	डा० रघुवंश जुलाई 1967	6
7-	आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य	डा० हुकुम चन्द	293
8-	The sources of value	Stephen G. Pepper	7
9-	नीति शास्त्र का सर्वेक्षण	संगम लाल पाण्डेय	303 – 305
10-	नीति शास्त्र का सर्वेक्षण	संगम लाल पाण्डेय	304
11-	नीति शास्त्र का सर्वेक्षण	संगम लाल पाण्डेय	304
12-	संस्कृति का दार्शनिक विवेचन	डा० देवराज	175
13-	आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य-	डा० हुकुमचन्द	40
14-	धर्म और समाज	डा० राधा कृष्णन् ।हिन्दी अनुवाद।	19
15-	कामसूत्र	आचार्य वात्स्यायन	1:2: 10
16-	आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य	डा० हुकुम चन्द	41
17-	साहित्य मुखी	दिनकर	6
18-	माध्यम	जनवरी 1969	44
19-	साहित्य मुखी	दिनकर	56
20-	माध्यम	मार्च 1969	51

"सन्दर्भ सूची"

21- हिन्दी की प्रयोगशील कविता और उनके प्रेरणा स्रोत — श्री राम नागर — 269

22- आधुनिकता और भारतीय परंपरा — डा० महावीर दाधीच — 10

23- आधुनिकता और भारतीय परंपरा — डा० महावीर दाधीच — 11

24- माध्यम - जुलाई 1964 — 28

25- वातायन — अगस्त 1967 — 50

26- माध्यम — जुलाई 1964 — 36

27- रतवंती — अगस्त 1964 — 45

28- माध्यम — जनवरी 1969 — 45

29- माध्यम — जनवरी 1969 — 43

30- नयी कविता : स्वरूप और समस्यायें - डा० जगदीश गुप्त — 15

31- मानव मूल्य और साहित्य - डा० धर्मवीर भारती — 23

32- नयी कविता: स्वरूप और समस्यायें- डा० जगदीश गुप्त — 15

33- धर्मयुग — 6 7 सितम्बर 1969 — 12

34- साहित्य कोष — भाग-2 — 659

35- साहित्य कोष — भाग-2 — 659

36-

44- साहित्य सुधी — दिनकर — 56, 57

45- नयी कविता, स्वरूप और समस्यायें - डा० जगदीश गुप्त- — 20, 21

x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x

36- Encyclopadia Of Britannia — Vol 22 — 962

37- Sociology — Jhon F. Cuber — 47

38- Sociology — Joseph H. Fichter — 293 & 294

39- Ibid — 294

40- Ibid — 294

41- The Evolution Of Human Nature — C. Judson Herrick — 141

42- Ethical Values in the age Of Science — Paul Roubiczek — 225-226

43- Ibid — 219

46- नया साहित्य: कुछ पहलू — विष्णु स्वरूप — 13, 14

47- नयी कविता : स्वरूप और समस्यायें — डा० जगदीश गुप्त — 22

48- मानव मूल्य और साहित्य — धर्मवीर भारती — 155

49- समाज शास्त्र के मूल तत्व — प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार — 61

51- आधुनिकता और भारतीय परंपरा, — महावीर दाधीच — 9

52- हिन्दी साहित्य कोश भाग-एक — डा० धीरेन्द्र वर्मा — 658

53- हिन्दी साहित्य कोश भाग-एक — डा० धीरेन्द्र वर्मा — 659

54- हिन्दी साहित्य कोश भाग-एक — डा० धीरेन्द्र वर्मा — 659

55- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास — डा० रामगोपाल सिंह चौहान — 34

56- साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन — देवराज उपाध्याय — 179

59- संस्कृत हिन्दी कोश — आप्टे वामन शिवराम — 812

60- हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य — सच्चिदानन्द वात्स्यायन — 10

61- "कहानी" "पत्रिका मासिक" — अक्टूबर 1968 में प्रकाशित

62- सामंजस्य की खोज "परम्परा और आधुनिकता" धर्मयुग 28 नवम्बर 1969में प्रकाशित।

63- आलोचक की आस्था।1966 दिल्ली। — डा० नगेन्द्र — 54

64- विचारों का सेतु ।1968, काशी। — डा० शिव प्रसाद सिंह — 71

65- नयी कहानी संदर्भ और प्रकृति — देवी शंकर अवस्थी [illegible] 1965

66- आधुनिकता और भारतीय परम्परा, — डा० महावीर दाधीच — 13, 14

67- मानव मूल्य और साहित्य — डा० धर्मवीर भारती — 9

68- नया साहित्य कुछ पहलू — विष्णु स्वरूप — 13

69- आलोचना जनवरी 1954 — 61, 62

70- साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य — डा० रघुवंश — 30

71- मानव मूल्य और साहित्य — डा० धर्मवीर भारती — 21

72- मानव मूल्य और साहित्य — डा० धर्मवीर भारती — 24, 25

50- The Sociology of M. Weber — Julien Freunds — 52

57- Ethical Philosophies of India — I. C. Sharma — 29

58- Ethical Philosophies of India — I. C. Sharma — 29

73- आज का भारतीय साहित्य — अज्ञेय सम्पादक — 403

74- नैतिक जीवन का सिद्धान्त "जान ड्यूई" अनुवादक कृष्णचन्द्र — आवरण पृष्ठ

75- मानव मूल्य और साहित्य — डा० धर्मवीर भारती — 65

76- धर्मयुग - 9, फरवरी 1970

77- सुहागिनी तथा अन्य कहानियाँ — शैलेश मटियानी — 19

78- मेरी प्रिय कहानियाँ — ज्ञान रंजन — 46

79- नई कहानियाँ — अक्टूबर 1969 — 61

80- अपने पार — राजेन्द्र यादव — 55

81- अपने पार — राजेन्द्र यादव — 71

82- मेरी प्रिय कहानियाँ — ज्ञान रंजन — 37

83- घर के बाहर कुछ, घर के भीतर कुछ — डा० शिव प्रसाद सिंह, धर्मयुग 9-7-75 — 12

84- नई कहानी की भूमिका — कमलेश्वर — 142

85- आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन — एम० एन० श्रीनिवास — 59

86- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास — राम गोपाल सिंह, चौहान — 25, 26

88- मार्क्स एण्ड दि पीपुल — रैल्फ फाक्स — 105

89- बदलते परिप्रेक्ष्य — नेमिचन्द्र जैन — 19

90- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास — डा० राम गोपाल सिंह चौहान — 135

91- समकालीन हिन्दी साहित्य आलोचना की चुनौती — डा० बच्चन सिंह — 131

92- आधुनिकता और भारतीय परम्परा — डा० महावीर दाधीच — 23, 24

:: अध्याय — "दो" ::

"मूल्यों का वर्गीकरण"

"मूल्यों का वर्गीकरण"

समाज के विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित अनेक प्रकार के मूल्य होते हैं। उदाहरण के लिये परिवार, राष्ट्र, सामाजिक सहवास, धार्मिक आचरण तथा राजनीति एवं आर्थिक जीवन से सम्बन्धित मूल्य लिये जा सकते हैं। इसी प्रकार नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्य भी विपुल रूप से उपलब्ध हो जायेंगे। प्रत्येक प्रकार के मूल्यों में एक बोधात्मक तत्व होता है जो "क्या उचित है" की धारणा पर विचार करता है।

पारिवारिक मूल्यों में जन्म, विवाह, मृत्यु आदि विभिन्न संस्कारों से सम्बन्धित अनेक प्रकार के मूल्य समाहित हैं। जैसे हिन्दुओं में विवाह को पवित्र एवं आत्मिक संबंध के रूप में स्वीकार किया गया है। जन्म के संबंध में समाज में विभिन्न धारणायें प्रचलित हैं। इसी प्रकार राष्ट्र सम्बन्धी मूल्यों में राष्ट्रीयता भी आज एक सर्वव्यापक मूल्य है। यद्यपि आज इसे भी संकुचित विचार माना जाने लगा है। आर्थिक जीवन से सम्बन्धित भी अनेक मूल्य हैं। वर्तमान राजनीतिक जीवन में भी विभिन्न वादों को लेकर विभिन्न मूल्य पनप रहे हैं।

नैतिक मूल्यों की पृथक सत्ता है। नैतिकता और सामाजिकता दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। नैतिक मूल्य, नैतिक रीति रिवाजों एवं आदर्शों से सम्बन्धित होते हैं। यह ठीक ही कहा गया है कि, "समाज शास्त्र का कार्य वैज्ञानिक नीतिशास्त्र को आधार प्रदान करना है, और दूसरी ओर नीतिशास्त्र का कार्य उन नैतिक मान्यताओं को ग्रहण करना है जो मानव का वैज्ञानिक ज्ञान प्रस्तुत करता है, और उन्हें विकसित करता है, उनकी आलोचना करता है, और उन में सामन्जस्य स्थापित करता है।"[1]

1- It is the business of sociology to furnish a foundation for scientific ethics and on other hand, it is the business of ethics to Take the ethical implication which a scientific Knowledge of human society affords, develop them criticize and harmonize them." — C. A. Ellwood Basic of Ethics P-136

नैतिक मूल्य ही सद् और असद्, उचित और अनुचित को स्पष्ट करते हैं। नैतिक संहिता उन नियमों या सिद्धांतों का संकलन है जो संबंधित समाज के सदस्यों द्वारा सामान्य रूप से स्वीकृत और मान्य होते हैं। जैसे सत्य बोलना, चोरी न करना, एक दूसरे की सहायता करना, बच्चों का पालन पोषण करना आदि मूल्य समाज व्यवस्था और शांति को बनाये रखते हैं। मूल्यों की सत्ता अमूर्त है। अतः मूल्यों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में कोई निश्चित आधार नहीं अपनाया जा सकता। फिर भी विभिन्न विद्वानों ने मूल्यों के पृथक पृथक वर्गीकरण प्रस्तुत किये हैं। कतिपय विचारक मूल्यों को सामान्य श्रेणी में रखना चाहते हैं तो कुछ मूल्यों को विशिष्ट वर्ग प्रदान करना चाहते हैं।

मूल्यों के सम्बन्ध में उनके वर्गीकरण को लेकर कई प्रकार के मतभेद हैं कुछ विद्वानों ने मूल्यों को दो कोटि में वर्गीकृत किया है :

1. स्थायी मानव मूल्य,
2. अस्थायी मानव मूल्य।

अस्थायी मूल्य युगीन महत्व के होते हैं तथा स्थायी मूल्य युगयुगीन महत्व रखने वाले होते हैं। स्वरूप के आधार पर मूल्यों को इस प्रकार बाँटा जा सकता है.. आर्थिक मूल्य, शारीरिक मूल्य, कलात्मक मूल्य, बौद्धिक मूल्य, धार्मिक मूल्य, आदि।[2]

कतिपय विद्वानों ने मूल्यों को दो विभागों में रखा है :

1. आंतरिक मूल्य,
2. बाह्य मूल्य ।

मनुष्य के दो परिवेश होते हैं एक आंतरिक, दूसरा बाह्य मूल्य की रचना में। जितना महत्व आंतरिक का है उतना ही बाह्य का है। राम शंकर मिश्र का मत है कि, बाह्य मूल्य जीवन की व्याख्या करने में असमर्थ रहते हैं। आंतरिक मूल्यों का चयन जीवन की यथार्थता के आधार पर होना चाहिये, तभी जीवन की व्याख्या होना सम्भव है।[3] स्टेस ने मूल्य के दो प्रकार..आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ..माने हैं। वे इस सम्बन्ध में लिखते हैं..."किसी मूल्य को हम आत्मनिष्ठ कहेंगे यदि उसकी सत्ता पूर्णतया अथवा अंशतः किन्हीं मानवीय इच्छाओं, संवेदनाओं, सम्मतियों अथवा दूसरी मनोदशाओं पर निर्भर करती है, किन्तु वस्तुनिष्ठ मूल्य इसके विपरीत होगा। वह एक ऐसा मूल्य होगा जो मानव की किसी इच्छा, संवेदना अथवा दूसरी मनोदशा पर निर्भर नहीं करता।[4] मूल्य को अच्छे या बुरे की कोटि में नहीं रखा जा सकता क्योंकि सभी मूल्य परस्पर सम्बद्ध रहते हैं। जो एक स्थिति में अच्छा है वही दूसरी स्थिति में बुरा भी हो सकता है, इसका आधार जहाँ एक ओर परिस्थितियाँ हैं तो दूसरी ओर व्यक्ति का विवेक भी है..हेरिक का यह मत सत्य ही है।[5]

4- Religion and modern mind — W.T. Stes P-26

5- The Evolution of Human Nature" All values are relative, what is good in on situation may be fatally bad in another' C-Judson Herrick P-49

योगेन्द्र सिंह ने मूल्यों के तीन प्रकार बतलाये हैं-पहला, रूढ़ या स्थिर मानव मूल्य, दूसरा विकसित या स्थापित्व प्राप्त मानव मूल्य तथा तीसरा विकासशील या नये मानव मूल्य।"[6] मूल्यों को बाँटने का उनका आधार चिंतन प्रक्रिया से सम्बन्धित है। वे व्यक्त करते हैं कि, व्यावहारिक प्रक्रिया में किसी दिशा से मनुष्य जुड़ता है, किसी का बहिष्कार करता है और किसी दिशा में वह मौलिक अस्तित्व की ओर बढ़ता है। इस प्रकार वह निरंतर संक्रमित रहता है। इसीलिये मूल्य भी संक्रमित रहते हैं। स्थिर मानव मूल्यों की दशा में व्यक्ति का जीवन बड़ा सरल रहता है।

महावीर दाधीच ने दो प्रकार के मूल्य माने हैं। उन्होंने लिखा है-"चेतना का प्रयत्न सदैव यथार्थ को भाव और भाव को यथार्थ बनाने का रहता है। चेतना के यथार्थ रूप से व्यवस्थात्मक अनेक मूल्य उत्पन्न होते हैं और स्थायी रूप से भावात्मक मूल्यों का प्रादुर्भाव होता है। राजनीति, वर्णव्यवस्था, धर्म विभाजन सम्बन्धी मूल्य यथार्थपरक हैं जबकि प्रेम, स्वातन्त्र्य, आत्मसम्मान, ऐक्य आदि व्यक्ति या भावपरक।"[7]

दाधीच के मत से दो प्रकार के मूल्य होते हैं (1) यथार्थपरक- जिसे उनके द्वारा दिये गये विवेचन के अनुसार बाह्य मूल्य कहा जा सकता है, तथा (2) भावपरक जिसे आंतरिक मूल्य भी कहा जा सकता है।

नई परिस्थितियों में जन्म लेने वाले मूल्य नये हैं तथा जो परम्परा से स्वीकृत होते आ रहे हैं, वे पुराने मूल्य कहे जा सकते हैं। इसी प्रकार मनुष्य के अन्तर्मन के समीप मूल्यों को, जिनका भावना से सम्बन्ध है,

भावना तथा चिन्तन बुद्धि से सम्बन्ध है, उन्हें बौद्धिक कहा जा सकता है। मूल्यों में परिवर्तन की स्थिति को देखते हुये मूल्यों को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम स्थिर मूल्य एवं द्वितीय गतिशील मूल्य।

स्थिर मूल्यों के अन्तर्गत वे मूल्य हैं जिनमें परिवर्तन बहुत कम होता है और होता है तो भी एक दीर्घ कालावधि के पश्चात्। इस वर्ग में नैतिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक मूल्यों का प्राधान्य है। बहुत से सामाजिक मूल्य भी इसी श्रेणी में आते हैं जैसे रीति रिवाज, रूढ़ियों और प्रथाओं पर आधारित मूल्य। सत्य, अस्तेय दूसरों का सम्मान करना आदि नैतिक मूल्य इस श्रेणी में रखे जा सकते हैं। ईश्वर तथा जीवन और मृत्यु से सम्बन्धित मूल्य भी अति प्राचीन हैं। गतिशील मूल्यों की श्रेणी में वे मूल्य आते हैं जिनमें परिवर्तन की प्रक्रिया अपेक्षाकृत शीघ्र होती है : जैसे राजनीतिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, खान पान एवं रहन सहन से संबंधित मूल्य। ये मूल्य परिस्थिति देश एवं काल के साथ परिवर्तित होते रहते हैं। वैज्ञानिक विचारधारा से सम्बन्धित कतिपय मूल्यों को भी गतिशील मूल्यों के भीतर रखा जाना चाहिये।

मूल्यों का वर्गीकरण वस्तुपरकता और भाव परकता की दृष्टि से भी किया जा रहा है। राजनीति, अर्थ व्यवस्था, धर्म विभाजन आदि से सम्बन्धित मूल्य वस्तुपरक होते हैं। इसी प्रकार प्रेम, स्वातन्त्र्य, आत्म सम्मान, द्वेष आदि भावात्मक मूल्य कहे जा सकते हैं। इनको व्यक्ति परक मूल्य भी कहा जा सकता है।

डा0 हुकुम चन्द ने अपनी शोध कृति "आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य" में मूल्यों का विभाजन भिन्न प्रकार से किया है। उनके अनुसार मानव मूल्य चार प्रकार के होते हैं..भौतिक मूल्य, मानसिक या मनोवैज्ञानिक मूल्य, सामाजिक नैतिक मूल्य तथा आध्यात्मिक मूल्य।"[8] उल्लिखित मूल्यों का विभाजन पूर्णतः युक्ति संगत प्रतीत नहीं होती ।

वस्तुतः मूल्यों का विभाजन व्यक्ति के सम्बन्ध के आधार पर ही तय होना चाहिये। यही आधार उपयुक्त भी होगा। इस दृष्टि से मूल्य तीन प्रकार के हो सकते हैं। (1) वैयक्तिक मूल्य (2) सामाजिक मूल्य, (3) विश्वातीत सम्बन्ध के आध्यात्मिक मूल्य। वैयक्तिक मूल्य उन्हें कहा जायेगा जो व्यक्ति के निजी हैं, जिनकी रचना उसकी वैयक्तिक चेतना ने की है। सामाजिक मूल्य उन्हें कहेंगे जो व्यक्ति के सामाजिक पहलू के सम्पर्क से निष्पन्न होते हैं तथा विश्वातीत मूल्य उन्हें कहेंगे जो व्यक्ति के विश्वातीत स्तर के धरातल पर बनते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक युग ने मान्यताओं के सम्मुख संकट की स्थिति उत्पन्न कर दी है, जिससे मूल्यों के स्रोत का आधार भी परिवर्तित हो गया है। फलतः उसने कुछ नये मूल्यों का भी युग की सामयिक माँग के परिप्रेक्ष्य में..अर्जन किया है। इसीलिये उक्त तीनों प्रकार के मूल्यों में से हर एक को दो विभागों में पुनः बाँटा जा सकता है..नये मूल्य तथा प्राचीन मूल्य। इन मूल्यों में से कुछ तो अपना स्थायी महत्व रखते हैं तथा कुछ अस्थायी होते हैं। अतएव इनके स्थायी तथा अस्थायी दो विभाग किये जाते हैं। उल्लिखित मूल्यों का विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं..
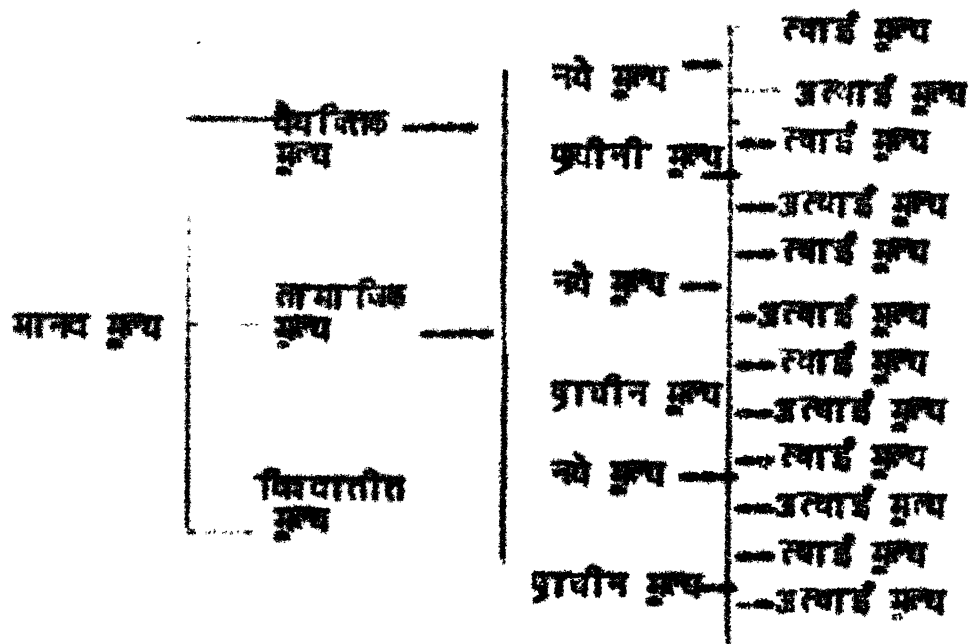
उपर्युक्त विभाजन में सभी प्रकार के मूल्यों का समावेश हो जाता है। उक्त वर्गीकरण जहाँ एक ओर मूल्यों के सम्बन्ध में अन्य समस्त वर्गीकरणों को अपने में समाविष्ट कर लेता है, वहीं दूसरी ओर इससे कई भ्रान्तियों, कठिनाइयों और उलझनता का भी निराकरण हो जाता है। हिन्दी कहानियों के अनुशीलन से मेरी दृष्टि से यों सम्भावित मूल्यों का वर्गीकरण हो सकता है वह कुछ इस प्रकार बनाया जा सकता है:

1-वैयक्तिक, 2- समाजगत।

इनके आधार पर राजनीतिक, सामाजिक, जातीयगत, धार्मिक, साम्प्रदायिक, नैतिक, आर्थिक, वैवाहिक और नर नारी सम्बन्धों से जुड़े हुये मूल्य आदि हो सकते हैं। आशय है कि, वैयक्तिक और समाजगत मूल्यों की कोटियाँ दोनों के मुकाबले से बन सकेंगी। इस प्रकार मूल्यों की लगभग बारह चौदह कोटियाँ स्थूल रूप से बनायी जा सकती हैं। इसी वर्गीकरण को अन्तिम नहीं कहा जायेगा। ये केवल सम्भावित प्रस्तावित कोटियाँ हैं। सांस्कृतिक और आध्यात्मिक आधारों पर और भी कोटियाँ बनायी जा सकतीहैं। मैंने कहानियों के अध्ययन के सन्दर्भ में अपनी दृष्टि से विविधमूल्यों की परिकल्पना की है और उन्हीं के आधार पर इसके कथा साहित्य का आंकलन करने का आयास किया गया है।

उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर समूचे प्रबन्ध में मूल्यवत्ता की दृष्टि से कहानियों का विवेचन, विश्लेषण किया गया है। इसीलिये प्रस्तुत अध्याय में अनावश्यक आवृत्ति से बचने के लिये कहानियों की परिचर्चा नहीं की जा रही है।

:: "अध्याय—तीन" ::

x=x=x=x=x=x=x=x=x=

नई कहानी का विकासात्मक परिचय:

नई कहानी

अकहानी

सचेतन कहानी

समान्तर कहानी

जनवादी कहानी

सक्रिय कहानी

"नई कहानी एक परिचय"

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक नया मोड़ आया । स्वतंत्रता से पूर्व देश के समक्ष दो प्रकार की समस्यायें थीं, एक स्वतंत्रता की प्राप्ति और दूसरी समाज सुधार । सन् 1947 में 15 अगस्त को देशवासियों ने प्रथम लक्ष्य की उपलब्धि की अब दूसरी समस्या शेष रही । अन्य देशों की भाँति भारतखण्ड में भी सामाजिक दृष्टि से अनेक प्रकार की समस्यायें रही हैं। निर्धनता, बेरोजगारी, किसान और मजदूरों का शोषण, जातीय एवं सामाजिक वैभिन्य, धार्मिक विभिन्नतायें, सामाजिक वैमनस्य आदि देश की प्रमुख समस्यायें रहीं। इनके अतिरिक्त स्त्रियों को लेकर ढेर सारी विषमतायें [illegible] रही हैं।

भारतीय लेखकों ने स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में विविध समस्याओं को साहित्य के माध्यम से उजागर किया । हिन्दी में काव्य के क्षेत्र में सर्वाधिक गहमागहमी रही । आधुनिक काल में छायावाद के अवसान के बाद प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, अकविता, भूखी पीढ़ी की कविता, बीट कविता, बीटनिक कविता, श्मशानी कविता आदि लगभग पचास प्रकार के आन्दोलन चलाये गये। कविता के बाद कहानी के क्षेत्र में पर्याप्त सरगर्मी रही। कहानी में भी आन्दोलनों के रूप में अनेक प्रकार के तेवर लक्षित किये गये। कविता के समान कहानी में भी नई कहानी, अकहानी, समान्तर कहानी, सचेतन कहानी, सक्रिय कहानी, जनवादी कहानी आदि अनेक आन्दोलन चले और आज भी इस प्रकार के प्रयत्न किये जा रहे हैं। कविताओं, कहानियों अथवा अन्य प्रकार की कोई विधा, सबमें एक लक्ष्य विशेष रूप से दिखता है। आजादी के बाद का रचनाकार अपने को जैसे तैसे साहित्य के क्षेत्र में प्रस्थापित करने के लिए बेचैन प्रतीत होता है। इसीलिए वह पुराने ख्यातिलब्ध स्थापित रचनाकारों के प्रतिबिम्बन में लगा हुआ है।

उसे लगता है कि, जबतक पुरानी जानीमानी [illegible] विभूतियों को तोड़ा नहीं जायेगा । सरस्वती के मन्दिर में उसे स्थान निश्चितः नहीं मिल सकेगा। कविता कोई हो अन्ततः कविता है। इसी प्रकार कहानी को किसी के नाम से अभिहित किया जाय वह कहानी ही है, फिर भी कहानी से स्वातन्त्र्योत्तर तेवरों को समझने की अपेक्षा तो है ही ।

नई कहानी का उदय अपने प्राचीन मूल्यों से परिवर्तित जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति के रूप में हुआ । स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व लिखी जा रही हिन्दी कहानी आदर्शों की कहानी थी । यद्यपि समाज की माँग यथार्थ दृष्टि की थी और वह आदर्शों की कहानी से ऊब चुका था । समाज भी आर्थिक संकट में था, नारी तथा समाज के अन्य पीड़ित और दलितवर्ग, भ्रष्टता और नैतिक एवं चारित्रिक संकट के माहौल में पैदा हुई युवापीढ़ी के असन्तोष और जीवन के विघटित होते हुये मूल्यों के कारण पैदा हुये परिवेश का शिकार बना हुआ था। देश के विभाजन के साथ तो जैसे मानवता का विघटन ही हो गया था। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उसके भयंकर परिणाम दिखाई दे रहे थे। देश में बनी योजनाओं से एक ओर कुछ भौतिक प्रगति हुई, तो दूसरी ओर सामाजिक कुंठाओं, और टूटती हुई आस्थाओं का प्रभाव तीव्र होता गया । समाज में आर्थिक दृष्टि से विपन्न रहने पर कुण्ठा, अकेलापन, अजनबीपन, घुटन, निरुद्देश्यता, मोहभंग-आक्रोश की भावना उत्पन्न हो गई। नई पीढ़ी के साहित्यकार के सम्मुख भ्रष्टाचार, बेईमानी, महँगी, सत्ता का मोह आदि समस्यायें ही रह गई। नई कहानी का जन्म ही इन समस्याओं के घेरे में हुआ । अपने चारों ओर के वातावरण से विक्षुब्ध होकर नये कहानीकारों के हृदय में तीव्र प्रतिक्रिया हुई और उस प्रतिक्रिया के फलस्वरूप नई कहानी ने जन्म लिया । मानव मूल्य, नैतिकता, अनैतिकता, वैज्ञानिक और टेक्नालॉजिकल प्रगति के बीच का युद्ध, नवीन परिस्थिति में यौन सम्बन्ध आदि यथार्थ को कहानीकार

ने कहानी के माध्यम से भोगे हुये यथार्थ की भाँति लिखा ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद निराशाओं एवं विषमता के बीच नई कहानी का जन्म तो हुआ, लेकिन एक समस्या उठी कि, नई कहानी का मूल रूप में सूत्रपात किसने किया । नई कहानी का सूत्रपात किसी एक कहानी के निर्माण से नहीं हुआ, बल्कि नई कहानी अपनी विकास परम्परा का युगानुकूल स्वाभाविक विकास है।

सामान्यतया नई कहानी का प्रारम्भ प्रेमचन्द की "कफन"[1] कहानी से माना जाता है क्योंकि, इस कहानी में नई कहानी की सभी विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं।

भारतवर्ष का आम आदमी आलसी, निकम्मा है। बिना परिश्रम के पेट भरना चाहता है दरिद्रता, अशिक्षा, आलस्य इस कहानी की मूल कथा है। यह कहानी कथा शून्य है, इसमें कथानक जैसा कुछ भी नहीं है, बिना कथानक के ही "कफन" कहानी बुन दी गई है।

बुधिया प्रसव पीड़ा से झोपड़ी के भीतर तड़पती रहती है, लेकिन उसका पति माधव और श्वसुर घीसू अलाव में आलू भूनकर खाने के लिए होड़ कर रहे हैं, माधव घीसू से कहता है, घीसू माधव से कहता है लेकिन अन्दर जाकर बुधिया को कोई नहीं देखता है। अन्ततोगत्वा प्रसव पीड़ा से बुधिया मर जाती है।

सबेरा होने पर पिता व पुत्र शोक मनाने का नाटक करते हैं। गांव के जमींदार के यहाँ जाते हैं और पैसा मांगकर ला भी जाते हैं।

पुत्र के मन में कहीं अपराध बोध है, पिता अनुभवी है, और वह पुत्र को समझा देता है कि, पुनः खाना उगलने के लिए कह देंगे कि, खाना अँटी से गिर गया है।

लेखक बड़ी ही सीधी भाषा से सारे परिवेश को उद्घाटित करता है। कथानक की अपेक्षा विस्तार को ज्यादा महत्व दिया है। कहानी की शिल्प और भाषा में ताजगी है।

"कफन" कहानी में नई कहानी की भाँति ही चरित्र की अपेक्षा घटनाओं को ज्यादा विस्तार दिया है। इस कहानी में बुधिया की मौत को विस्तार दिया है। कहानी का कोई अन्त और उद्देश्य नहीं है, कौतूहल नहीं है, जो कि, नई कहानी की अपनी एक विशेषता है। इन्हीं सब विशेषताओं के कारण नई कहानी का आरम्भ "कफन" कहानी से माना जाता है।

प्रेमचन्द के बाद कहानियों का निरन्तर विकास होता रहा, और लेखक भी लिखते रहे लेकिन नई कहानी का वास्तविक अस्तित्व स्वाधीनता के बाद उभर कर सामने आ सका। जैनेन्द्र, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, रमा प्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी। इन लोगों के माध्यम से कहानी का विस्तार निरन्तर होता रहा।

नई कहानी में सबसे पहले घटना देश, काल, पात्रों की इस सीमाहीन छूट का विरोध किया क्योंकि, यह छूट न तो कहानी को प्रामाणिक रहने देती थी, न विश्वसनीय, इसीलिए नई कहानी किसी भी सीमा में नहीं बँधी।

बदलती स्थितियों के इस नये परिप्रेक्ष्य में बाप-बेटे, भाई-बहन, पति-पत्नी, प्रेमी प्रेमिका, मित्र-मित्र, यानी सब मिलकर परिवार और परिवेश वही है, लेकिन उसके भीतर वह नहीं रह गया है, जो रक्त अणुओं में दौड़ा करता था। व्यक्ति व्यक्ति के बीच में जो तेजी से घट रहा है, बन और बदल रहा है, और

नया जन्म ले रहा है, उन सबको खोजना समझना और व्यक्त करना, नई कहानी की एक बहुत बड़ी पहचान है।

सन् 1950-60 के बीच में नई कहानी की धारा प्रारम्भ हुई। दुष्यन्त कुमार ने इसे नई कहानी की संज्ञा दी। डा० नामवर सिंह के समर्थन के उपरान्त यह नाम प्रचलित हो गया।

नई कहानी सामाजिक परिवर्तन से प्रेरित नवीन जीवन मूल्यों की कहानी है। नई कहानी में स्वतंत्रता के उपरान्त भारतीय समाज में आने वाले परिवर्तनों की सूक्ष्मता से पर्यवेक्षित कर उसे ही अभिव्यक्ति दी है। व्यक्ति के बेगानेपन और बदले हुये स्वरूप को नये कहानीकारों ने व्यावहारिक धरातल पर देखा और व्यावहारिक धरातल पर ही उसे अभिव्यक्ति दी। नई कहानी ही जीवन को अधिक सम्पूर्णता में अभिव्यक्त करती है।

आधुनिक काल में प्रेमचन्द्र और प्रसाद के युगों में कहानी के अनेक आयाम लक्षित होते हैं। प्रेमचन्द, प्रसाद, जैनेन्द्र, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, उपेन्द्र नाथ अश्क, रमा प्रसाद घिल्डियाल पहाड़ी। जैसे अनेक समर्थ कहानी लेखकों ने कथा साहित्य का श्रृंगार किया। इन कहानीकारों के द्वारा प्रस्तुत कहानियों का शिल्पन एक निश्चित ढर्रे पर चलता रहा। कथावस्तु, पात्र, चरित्रचित्रण, संवाद, देशकाल, परिस्थिति, भाषाशैली तथा उद्देश्य इन कहानी लेखकों के मानदण्ड हुआ करते थे। नये कहानीकारों ने कहानी के शिल्पन में नवीनता लाने के लिए पुराने मापदण्डों को तोड़ा, और उनके स्थान पर नवीन शैली में कहानियाँ प्रस्तुत कीं। कथावस्तु के स्थान पर कथ्य को विशेष स्थान दिया जाने लगा। कुतूहल जो कि, कहानी का प्राणतत्व माना जाता रहा, उसे नकारा गया, उसके स्थान पर सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत किये जाने लगे। कहानियों में भोगे हुये यथार्थ को प्राथमिकता प्रदान की गई और कहानी की विश्वसनीयता तथा प्रामाणिकता को अनुमोदित किया गया। कथावस्तु का फलक प्रायः व्यापक हुआ करता था और उसमें जीवन की किसी संवेदना को अभिव्यक्त किया जाता था।

उसके स्थान पर क्षणों के चित्रण को महत्व दिया गया । कहानी की भाषा जो सामान्यतः सादी और सपाट हुआ करती थी उसमें लाक्षणिकता, सांकेतिकता द्वन्द्वात्मकता को लाने का उपक्रम किया गया। कहानी को समृ. करने के लिए प्रतीकों, बिम्बों, अनुभूतों, आदि का प्रयोग किया जाने लगा । कहानी की शैली तथा रूप रचना में भी नये नये प्रयोग किये जाने लगे। सम्भवतः चल चित्र से प्रेरित होकर पूर्व दीप्ति तथा चेतना प्रवाह का उपयोग कुशलता से किया जाने लगा ।

इस प्रकार यह निःसंकोच और निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि, कहानी में कथ्य शिल्प, अभिव्यंजना आदि दृष्टियों से निश्चित बदलाव आया । ये भी मानने में कोई संकोच नहीं कि, हिन्दी कहानी उत्तरोत्तर समृद्ध होती जा रही है।

जब पूर्णतया यथार्थवादी सामाजिक दृष्टि को मर्यादा सार्थक सामाजिक मूल्यों की सीमा में अनुभूति के किसी आवेग को अनुशासन एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति की गरिमा प्राप्त होती है तो एक नई कहानी का जन्म होता है।

मूल्यों की स्थापना अथवा अन्वेषण और कलात्मक अभिव्यक्ति आपस में सम्बन्धित होते हुये भी दो बिल्कुल अलग अलग चीजें हैं जिन्हें नई कहानी अत्यन्त संतुलित रूप में सामने लाती है। नई कहानी को नये पुराने मूल्यों का संघर्ष इसे सघन और जटिल ही नहीं बना देती वरन् बौद्धिक बना देती है।

नई कहानी में जब मानव मूल्यों की बात की जाती है तो उसका सीधा अर्थ तत्कालीन सामाजिक परिवेश एवं समसामयिक जीवन की गति के भीतर से उभरते एवं स्वयं सृजन करते प्रगतिशील तत्वों से ही होता है।

यह युग परिवर्तन में सजग एवं सचेत रहकर नवीन मानव मूल्यों एवं परिवर्तित अवस्थाओं को सहजता से स्वीकार लेने की अनिवार्य माँग की जिसका दायित्व निर्वाह करने में नई कहानी यहाँ तक सफल रही है उसका प्रमाण (यह मेरे लिए नहीं, सावित्री नं0 2, हरिनाकुश का बेटा, गुलकी बन्नो (धर्मवीर भारती)। मलबे का मालिक, जंगला, फटा हुआ जूता, हक, हलाल (मोहन राकेश)। दुर्गा, वह मर्द थी (नरेश मेहता)। दिल्ली में एक मौत, खोई हुई जिन्दगी, बदनाम बस्ती, और उजड़ा हुआ मकान (कमलेश्वर)। जिन्दगी और जोंक, डिप्टी कलक्टरी, हत्यारे, एक असमर्थ हिलता हाथ (अमरकान्त)। हँसा जाई अकेला (मार्कण्डेय)। चीफ की दावत (भीष्म साहनी)। "बड़े शहर का आदमी" (रवीन्द्र कालिया)। "फेन्स के इधर और उधर" (ज्ञान रंजन)। "छिटकी हुई जिन्दगी" (ममता अग्रवाल)। "मुर्दा औरतों की भीड़" (जगदीश चतुर्वेदी)। तथा आखिरी कुआँ (अनन्त)। आदि कहानियाँ हैं।

नई कहानी किसी एक व्यक्ति की न होकर सम्पूर्ण युग की बनने का आग्रह करती है और सारे मूल्य व्यापक परिवेश में ही अभिव्यक्ति पाते हैं।

पिछली कई शताब्दियों में विघटनकारी शक्तियों को पहचान पाने की असमर्थता, मानव मूल्यों को न उभर पाने की असमर्थता, मनुष्य को उसके सामाजिक यथार्थ के भीतर देखने की दृष्टि और आत्माकांक्षा के जोर शोर से आने वाले कितने ही कहानीकारों को असामाजिक "मृत्यु" की नियति प्रदान की है।

डा0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने नई कहानीकारों के विषय में कहा है कि, "साहित्यकार होने के नाते हिन्दी के नये कहानीकारों का मुख्य लक्ष्य मानव की मानवात्मा की रक्षा करते हुये अपने देश की सभी प्रकार की विकृतियों को दूर कर व्यक्तिगत स्वाधीनता की रक्षा करना होना चाहिए। नये कहानीकारों को सजग रहते ही अपने महती उत्तरदायित्व को समझना है, और बहुत कुछ ने छोटे छोटे जीवन खण्डों को अनुभूतिजन्य पक्षों से देखना शुरू किया है,

और स्थानीय आचार विचार, रीति नीति, भाषा विशिष्ट शब्दावली, जीवन की रंगीनी आदि का समावेश कर आत्मक वैशिष्ट्य उत्पन्न किया । नारी कथाकारों ने भी आज के जीवन की परिवर्तनशीलता और नारी सम्बन्धी मूल्यों को बड़ी मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है।"[2]

पिछले बीस वर्षों में सेक्स सम्बन्धी धारणाओं के मान या पैमाने बदल गये हैं इसके अनेक कारण हैं। दूसरे महायुद्ध के दौरान में विशेषतः यूरोप के देशों के सामाजिक जीवन में भारी परिवर्तन आये थे। जिन दिनों इंग्लैण्ड पर जर्मन हवाई जहाज भयंकर बमबारी कर रहे थे, लंदन के हजारों लाखों नागरिक भूमि के भीतर के रेलवे प्लेटफार्मों पर सोते थे। वहाँ निरन्तर प्रकाश रहता था और किसी तरह का पर्दा नहीं था। उन्हीं प्लेटफार्मों के खुले प्रकाश में युवक और युवतियों के रात्रि जीवन के सभी व्यवहार उन्मुक्त रूप से चलते थे। उन परिस्थितियों ने इंग्लैण्ड की सेक्स सम्बन्धी पुरानी परम्पराओं को जिस तेजी से तहस नहस किया उससे वहाँ के जीवन और चिन्तन पर तीव्र प्रभाव पड़ा ।

इटली और फ्रान्स की परिस्थितियाँ उससे भी अधिक विकट थीं और मानव की सेक्स प्रवृत्ति उन दिनों बहुत नग्न रूप में उक्त एवं अन्य यूरोपियन देशों में नग्न रूप में दिखायी दी थी। परिणाम यह हुआ कि, इस सम्बन्ध के पुराने विचार बदल गये। साहित्य में जो बातें कुत्सित और अश्लील मानी जाती थी वे बातें अब साधारण दिखाई देने लगीं।

"सेक्स को प्रधानता देने की प्रवृत्ति केवल हिन्दी कहानी में ही नहीं यह प्रवृत्ति आज प्रायः सभी भारतीय भाषाओं की कहानियों में विद्यमान है।"[3]

हिन्दी कहानी में एकदम बदलाव नई कहानी के रूप में प्रस्तुत हुआ । वैसे तो अधिकांश नई कहानी के लेखक अपने मसीहा पथ प्रदर्शक और प्रेरक के रूप में प्रेमचन्द की ओर संकेत करते हैं और मुंशी प्रेमचन्द की [illegible] कहानी

"कफन" से कहानी का नया मोड़ स्वीकार करते हैं किन्तु उसके साथ ही कुछ कहानीकार अपने बीच से ही किन्हीं कहानीकारों को नई कहानी का प्रतीक बताने से भी हिचकिचाते नहीं ।

<u>नई कहानी</u> :- नई कहानी क्रमशः पाँचवें दशक में उभरी । किस रचनाकार विशेष से नई कहानी को जोड़ा जाय यह एक विवादास्पद प्रश्न रहा है। कुछ लोगों ने भैरव प्रसाद गुप्त को नई कहानी के सूत्रपात कर्ता के रूप में अभिव्यक्त किया किन्तु शीघ्र ही इस क्षेत्र में अनेक कहानीकार सक्रिय किये गये। अज्ञेय, कमलेश्वर, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, डा० लक्ष्मीनारायण लाल, डा० धर्मवीर भारती और अमर कान्त आदि लेखकों ने शीघ्र ही नई कहानी के क्षेत्र में अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया और इनमें से ही मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव विशिष्ट माने गये। इस त्रयी को नई कहानी के प्रवर्तकों के रूप में माना जाने लगा । इसमें सन्देह नहीं कि, नई कहानी के लेखकों ने कहानी को नवीनता से सम्पन्न किया । इनकी बहुतेरी कहानियाँ चर्चा का विषय बन सकीं। मोहन राकेश की "मलबे का मालिक", "परमात्मा का कुत्ता", "एक और जिन्दगी", "मन्दी", "हक हलाल", "बस स्टैण्ड की एक रात", "ज़ख्म और सेफ्टीपिन" आदि कहानियाँ कमलेश्वर की "राजा निरबंसिया" "चीफ की दावत, "भटकती राख", "लाश की रात", "नीली झील "बाप बेटी", "पास फेल", "तिलस्मी चिट्ठी", "सुनहरी किरण" आदि कहानियाँ । राजेन्द्र यादव की "जहाँ लक्ष्मी कैद है", "खेल खिलौने", "एक कमजोर लड़की की कहानी", "अभिमन्यु की आत्म हत्या" आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं।

नई कहानी के लेखकों ने कथ्य तथा शिल्प की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया उनके कथ्य में समाज के नवीन विषयों को स्थान मिल सका । आजादी के बाद देश के सामने जो चुनौतियाँ उपस्थित हुईं, नये कथाकारों ने उन्हें अपनी कहानियों में अभिव्यक्ति दी है।

स्वतंत्रता के साथ ही हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान के बीच विस्थापितों के रूप में हिन्दुओं का पाकिस्तान से भारत में और मुसलमानों का भारत से पाकिस्तान में जाना हुआ। इस परिवर्तन से प्रभावित जन समूहों को विभिन्न प्रकार की समस्यायें झेलनी पड़ी और परिस्थितियों तथा परिवेश को लेकर ढेरों कहानियाँ रची गईं। उदाहरण के लिए मोहन राकेश का "मलबे का मालिक" भीष्म साहनी का "अमृतसर आ गया है"। ऐसी कहानियाँ देश के विभाजन की समस्याओं को व्यंजित करती हैं। देश के विभाजन के परिणाम स्वरूप प्रभावित व्यक्तियों को क्या कुछ नहीं झेलना पड़ा तथा किन विषम परिस्थितियों से नहीं जूझना पड़ा यह सम्प्रति इतिहास का विषय बन चुका है। किन्तु कथाकारों ने अपनी कहानियों में विभाजन से सम्बद्ध अराजकता पूर्ण परिवेश का जीवन्त और मार्मिक चित्रण किया है। ऐसी कहानियों को भारतीय उपमहाद्वीप के विभाजन का यथार्थ दस्तावेज कहा जा सकता है। और "अमृतसर आ गया है" कहानियों को इस प्रकार की कहानी के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

मोहन राकेश की "मलबे का मालिक" कमलेश्वर की "जार्ज पंचम की नाक" भीष्म साहनी की "अमृतसर आ गया है" कहानियों को इस प्रकार की कहानी के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। अमरकान्त की "देश के लोग", "हत्यारे", सुरेश सिन्हा ने "पतन" में राजनीतिक प्रवृत्ति से सम्बद्ध सामाजिक जीवन चित्रित किया है।

<u>अकहानी</u> :- नई कहानी का आन्दोलन चल ही रहा था कि, कुछ युवा कलाकारों ने नई कहानी की संरचना की व्यापक पृष्ठभूमि को आत्मसात् किया और अकविता की भाँति उन्होंने कुछ अकहानी में स्वतंत्रता पूर्व कहानियों के पिटे पिटे प्रतिमानों का पूर्णतया से बहिष्कार करने का प्रयत्न किया। ऐसे कथाकारों में उल्लेखनीय हस्ताक्षरों में ज्ञान रंजन, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह जैसे कथाकार सम्मिलित हैं।

अकहानी के कथाकारों ने व्यापक परिवेश को कहानी का लक्ष्य बनाया । स्त्री पुरुष के सम्बन्धों को विशेष रूप से उजागर करने की चेष्टा की । स्त्री पुरुष के सम्बन्धों में वैचित्र्य को लेकर विभिन्न कहानियाँ स्थापित की गईं। ऐसी कहानियाँ भारतीय आदर्श के प्रतिकूल होने के बावजूद यथार्थ के निकट रहीं, हम जानते हैं कि, भारतीय संस्कृति में पति पत्नी के सम्बन्धों को ही आदर की दृष्टि से देखा तथा सराहा जाता है। किन्तु यथार्थ जीवन में पुरुष के अनेक स्त्रियों से सम्बन्ध देखे जाते हैं और इसी प्रकार स्त्री के अनेक पुरुषों से। कई बार इस प्रकार के सम्बन्ध काम से जुड़े होते हैं या आर्थिक विवशता का परिणाम होते हैं। इन विवशताओं के कारण कई बार सन्तानों को भी अपने माता पिता के दुष्कर्मों का भोग भोगना पड़ता है। नर नारी के सम्बन्धों से सैकड़ों कहानियों पर स्पष्ट ही फ्रायड का प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। मोहन राकेश की "एक और जिन्दगी", "जानवर" कमलेश्वर की "राजा निरबंसिया" "तलाश" राजेन्द्र यादव की "मेहमान" और "भविष्य के आस पास मंडराता अतीत" दूधनाथ सिंह कृत "सब ठीक हो जायेगा" और "प्रतिशोध" रवीन्द्र कालिया की "नौ साल छोटी पत्नी" मन्नू भण्डारी की "ईसा के घर इंसान" "तीसरा आदमी" महीप सिंह की "कील" ज्ञान रंजन की "कलह" कृष्ण अरोड़ा की "पंख तराशे हुये" धर्मवीर भारती की "गुल की बन्नो" नरेश मेहता की "तथापि" आदि ।

भारतीय साहित्य पर मार्क्सवादी चिन्तन धारा का व्यापक प्रभाव मिलता है। प्रगतिशील लेखकों ने इस तथ्य को भारतीय परिवेश के अन्तर्गत पहले से ही प्रस्तुत करना प्रारम्भ कर दिया था। यशपाल, बेचन शर्मा "उग्र", जैनेन्द्र आदि की कहानियों में प्रगतिशील तत्व, वर्तमान में नई कहानी के लेखकों तथा अकहानीकारों ने इस तथ्य को अपनी कहानियों में मुख्य रूप से उभारने का प्रयत्न किया। किसानों, मजदूरों, दलितों और शोषितों को लेकर कथाकारों ने अपनी कहानियों को विविध रूपों में प्रस्तुत किया। उदाहरण स्वरूप अमरकान्त की "जिन्दगी और जोंक" कहानी का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें एक भिखारी रजुआ की जिजीविषा को कुशलता से उकेरा गया है। लेखक यह कहना चाहता है कि, मनुष्य चाहे कितनी ही विषम परिस्थितियों में रहने के लिए विवश हो वह

जाने अनजाने मृत्यु से बचने की आकांक्षा करता है। भारतीय जनमानस सम्भवतः इस प्रकार की विलक्षण मानसिकता का चरम उदाहरण प्रस्तुत करता है। औसत भारतीय प्रायः गरीबी की सीमा रेखा के नीचे न्यूनतम स्तर पर जीवन जीने को बाध्य होता है किन्तु वह मृत्यु का आलिंगन नहीं करना चाहता। वह अपने जीवन के प्रति इतना उदासीन होता है कि, सारे भौतिक कष्टों को झेल कर भी वह अपनी आह और कराह को दबाकर जीवन जीता है। और अपनी अभावों की दुनियाँ को अपनी नियति और भाग्य मानकर जीवन समाप्त कर देता है। वह जीवन के प्रति उदासीन है अथवा महान सम..ता आदी कह पाना मुश्किल है।

अकहानी शब्द कहानी का विरोध अथवा विपर्यय नहीं है, जैसा कि, अकहानी शब्द से ध्वनित होता है परन्तु अकहानी का उन अर्थों अस्वीकृति का बोधक है। स्वातंत्र्या. के पूर्व की कहानियाँ एक निश्चित चौखटे में लिखी जाती रही है, और उनके मूल्यांकन के प्रतिमान कथानक, चरित्र चित्रण, सम्वादयोजना आदि रहे हैं।

अकहानीकारों ने इन प्रतिमानों को अपने कथाशिल्प में नकारा है, इन्होंने कथानक के स्थान पर कथ्य अथवा थीम को वरीयता प्रदान की है। इसी प्रकार चरित्र चित्रण में अन्वीक्षण पद्धति को अपनाने का उपक्रम किया है। अन्वीक्षण माध्यम से चरित्र के किसी एक विशेष पक्ष को लेकर पूरी गहराई तथा व्यापकता से सविस्तार अभिव्यक्ति देने का उपक्रम किया है। इसी प्रकार कौतूहल अथवा सस्पेन्स को इन्होंने अस्वीकार किया है, और उसके स्थान पर मार्मिक सांकेतिक अभिव्यक्तियों के माध्यम से अपनी बात को उभारने तथा निखारने का प्रयत्न किया है। इन प्रयोगों से निश्चय ही अकहानी के शिल्पन में नावीन्य का समावेश सम्भव हुआ है।

(4) मानव मूल्यों में सम्यक् परिवर्तन की माँग ।

(5) आम आदमी में जीतने की दृढ़ता की माँग ।

(6) संस्कारबद्धता को तोड़कर उसमें परिष्कार एवं यथार्थ की माँग ।

(7) जीवन में निष्क्रियता के स्थान पर सक्रियता की माँग ।

(8) परम्परागत संस्थागत नैतिकता पर प्रश्नचिन्ह ।

(9) परिवर्तित मूल्यों को व्यावहारिक रूप देकर क्रियान्वित करना ।

(10) राजनीति में सक्रिय भागीदारी ।

(11) समग्र क्रान्ति की माँग और सामाजिक परिवर्तन में भागीदारी ।

(12) आम आदमी के पक्ष में न्याय की माँग ।

शशि योहरा द्वारा विवेचित रचनात्मक बिन्दुओं के अतिरिक्त "सारिका" के समान्तर कहानी विशेषांकों के आरम्भिक पन्नों से कुछ विचार बिन्दु और भी उभरते हैं।

(13) सामाजिक-धार्मिक-सांस्कृतिक संस्थाओं का बहिष्कार क्योंकि पहले इन्हें बेईमान व्यक्तियों ने दूषित किया, और बाद में ये बेईमान लोगों को पैदा करने वाली मशीनों में तब्दील हो गयीं ।

(14) परम्परागत आदर्शवादी-सुधारवादी-सौन्दर्यवादी दृष्टिकोण का खुला विरोध ।

(15) साहित्य के परम्परागत सौंदर्य शास्त्र में परिवर्तन का दावा ।

(16) व्यवस्था द्वारा तरह तरह के भ्रमों में पड़े आम आदमी में वर्ग चेतना पैदा कर तमाम शिविरों की लड़ाई के लिए उन्हें एकजुट करना ।

(17) अत्यन्त तीव्र गति से [illegible] [illegible], ऐतिहासिक, सामाजिक शक्तियों की सही परख करना और समकालीन लेखन की सही दिशा निरन्तर निर्धारित करते जाना ।

समान्तर कहानियों के इन घोषणाओं के अन्तर्गत लिखित ही बहुत सारी अविस्मरणीय कहानियाँ हैं लेकिन सभी कहानियाँ इन चौखटों में एकदम फिट नहीं बैठती हैं।

इसे फैन्टेसी बना देता है क्योंकि ऐसा निर्णय कोई अदालत नहीं सुना सकती । इन सब अस्पष्टताओं के बावजूद "समान्तर कहानी" के मुख्य प्रचारक डा० विनय ने यह घोषणा की है "यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि, आज बावजूद प्रगति के ऊँचे शोर के आम असम्पन्न, अपने में टूटते, अपमान झेलते सामान्यजन की रेखाएँ स्पष्ट है और ये प्रतिरोधी ताकतें भी बिल्कुल साफ है जो पहले की किसी भी पारिभाषिक शब्दावली से नहीं पहचाना जा सकता, तेजी से उभर रहा है । लेकिन यह भी सच है कि, इस स्थिति पर बाकायदा समकालीन कहानीकारों का ध्यान गया है और साहित्य बावजूद अपनी सीमा के अपना काम कर रहा है।"[13] डा० विनय का यह आत्म संतोष फिर भी समान्तर कहानी को मरने से रोक नहीं सका ।

समान्तर का समर्थन करने वाले कुछ कथाकारों ने "समान्तर" की मृत्यु के बाद उसी की कब्र पर सक्रिय तथा जनवादी कहानियों के झण्डे फहरा दिये।

<u>जनवादी कहानी</u> :- जनवादी कहानियाँ वणिकता के विरोध में उभरी क्योंकि इनका उद्देश्य सामाजिक यथार्थ को प्रगतिशील दृष्टि से देखना था ।"[14] इन जनवादी कहानीकारों ने अपने आपको प्रेमचन्द की परम्परा से जोड़ा है। मुख्य बोध का विरोध करने वाली कुछ अच्छी कहानियों की भी रचना जनवादी कहानीकारों ने की थी । जनवादी कहानियाँ प्रत्यक्ष अनुभव और बौद्धिक समझदारी के तालमेल की ओर संकेत करती है।

रांगेयराघव की "गदल" भैरव प्रसाद गुप्त की "चाय का प्याला" "मंगली की टिकुली" मार्कण्डेय की "बीच के लोग" अमर कान्त की "जिन्दगी और जोंक" "बस्ती" "हत्यारे" "डिप्टी कलक्टरी" हरिशंकर परसाई की "भोला राम का जीव" भीष्म साहनी की "चीफ की दावत" शेखर जोशी की "कोसी का घटवार" और मुक्ति बोध की "काठ का सपना" आदि कुछ ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें गाँव तथा शहर के परिवेश में जीवन जीने वाले पात्रों

की जिजीविषा और संघर्ष को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है ।

आठवें दशक की विषम परिस्थितियों में जनवादी कहानीकार श्रमजीवी जनता के संघर्षों के प्रति प्रतिबद्ध हुआ । उन्होंने मजदूर आन्दोलनों का चित्रण करते समय मालिकों और सरकार के काले कारनामों को बेनकाब किया तथा कर्मचारियों के जीवन और चेतना को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की । श्री हर्ष की "भीतर का भय" कहानी में मालिकों एवं सरकार की यूनियन तोड़कर ताकिका को उघाड़ा है। पुलिस और मालिकों की गुण्डावाहिनी मजदूर नेताओं की हत्या करती है। गुण्डा भीनु को धमकी देता है- या तो नौकरी करो या यूनियन..।" उसे प्रमोशन का लालच देकर खरीदने का प्रयास किया जाता है। परन्तु वह यूनियन में घुसपैठ करके नेताओं को बरगलाने का प्रयत्न करते हैं। "निर्णायक" कहानी का बबुआ यूनियन से कहता है- "जिन्दगी बनाने का यह आखिरी मौका है, दोस्त इसे हाथ से मत जाने दो ।" दिनेश पालीवाल की "नियति" कहानी का नेता यूनियन के साथ विश्वासघात करके अफसर बन जाता है। दोनों कहानीकारों की कहानियों में कथ्यगत अनुभव-संसार और वैचारिकता का द्वन्द्व स्पष्ट दृष्टिगत होता है।

"चतुर्दिक व्याप्त आतंक और भ्रष्टाचार से आज का जनवादी कहानीकार दिशाहारा नहीं होता । उसे संघर्ष की दिशा में पूर्ण विश्वास है।" भ्रष्टाचार और शोषण की धुरी पर टिकी इस व्यवस्था में दिनोंदिन वर्ग-वैषम्य बढ़ता जा रहा है, पेट की आग बुझाने के लिये व्यक्ति किस कदर घृणित कार्य करने पर उतर आता है, इस चित्र को [illegible] ने "महुआ" कहानी में मार्मिक ढंग से लिया है। शोषित-पीड़ित जनता जब विद्रोह करने लगती है तो सत्ताधिकारी उसकी [illegible] और [illegible] से [illegible] राजनैतिक अनेक प्रकारक प्रहार करते हैं। उनके आन्दोलन पर [illegible] [illegible] [illegible] किया जाता है। किराये की भीड़ "भारतमाता" की जय जयकार करती है। उसी समय न जाने कितनी भीख माँगती भारत-माताओं को पुलिस [illegible] मारकर चौराहों से हटा रही होती है।

सैकड़ों आये दिन चौराहों पर दम तोड़ती रहती हैं। रमेश बतरा की "फूलों का देश" और प्रभात मित्तल की "भारत माता" मानव की करुणा पूरित अवस्था का उद्घाटन करती है।

जनवादी कहानी यथार्थ के ठोस धरातल पर उतर चुकी है। नयी सम्भावनाओं के जनवादी कहानीकार जीवन-मूल्यों के संघर्ष में अपनी भूमिका का निर्वाह करने के लिये कृत संकल्प हैं।

नई कहानी अपनी साहित्यिक यात्रा में कई मोड़ों से गुजरी, प्रत्येक मोड़ नयी कहानी को एक नया नाम देता रहा, नया नाम देने से कहानी कथ्य में ज्यादा अन्तर नहीं आया, परन्तु किंचित् स्थितियों में फर्क आ गया, कभी कहानी में राजनीति, सामाजिक, आर्थिक, स्थितियों की प्रधानता रही, कभी वह व्यक्तिपरक या आत्मपरक हो गई, या कभी वह शोषित दलित वर्ग या आम आदमी एवं सर्वहारा वर्ग की कहानी बन गई है। इन्हीं परिवर्तनों में नयी कहानी को अकहानी, सहज कहानी, सचेतन कहानी, समान्तर कहानी, जनवादी कहानी, सक्रिय कहानी, आदि नामों से अभिहित किया गया ।

कहानी के सन्दर्भ में डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का यह विचार दृष्टव्य है "सारी सफलता, दृष्टि की सीमा, आत्म मुग्धता, और अपने यथार्थ को परायों की नजर से देखने की कमजोरी के बावजूद आठवें दशक की कहानियों की इस पहचान से यह स्पष्ट है कि, हमारी कहानी नयी कहानी, सचेतन कहानी, समान्तर कहानी आदि का खोल तोड़कर आज ऐसे माहौल में आ गई है, एक ऐसे दौर में जिसमें परिवर्तन और अपरिवर्तन की शक्तियों में ध्रुवीकरण हो रहा है, जो नया है और अब इस बिन्दु पर लड़ाई विश्वास और विवेक के मध्य है। स्वभावतः और क्रमशः सम्पन्न लोग विश्वास या धर्म की ढाल ले, अपना विरोधी ताकतों की ओट से करना चाहेंगे।"[16]

जिन मूल्यों के लिये "आम आदमी" संघर्षरत था, उसका समर्थन नये कहानीकारों ने किया, और आजादी के बाद तो समाज में आये पारिवारिक विघटन के साथ नये सम्बन्धों के टुकड़े-टुकड़े में भी कुछ नया और मूल्यवान खोजने की कोशिश करती रही। नयी कहानी समानता, समता, न्याय और श्रम आदि मूल्यों के प्रति अपनी आस्था को स्वीकार करती है।

कहानीकार नर्मदेश्वर के अनुसार "आज की कहानी समसामयिक यथार्थ से जुड़ी होने के साथ-साथ बेहतर जीवन की तलाश में जन-संघर्ष की भूमिका भी तय करती है। इसीलिये वर्ग-संघर्ष, मूल्यहीनता, टूटते परिवेश में जूझते आदमी का अकेलापन, सामाजिक विसंगतियाँ, राजनीतिक आर्थिक परिप्रेक्ष्य में आदमी की अस्मिता का प्रश्न आज की कहानी के मुख्य विचार-बिन्दु हैं।"[17]

<u>सक्रिय कहानी</u> :- स्वाधीनता के बाद भारतीय समाज के हालात बदलाव की सक्रिय माँग करते हैं। आम आदमी आधुनिकता के दबाव में बदलती स्थितियों और मूल्यों के साथ गाँवों में जी रहा था, और अपने हालात को बदलने के लिए बेचैन और संघर्षरत था। सक्रिय कहानी ने इस दबाये हुये और संघर्षशील आदमी की आदमियत को समझा और कहानी पहचान तक सीमित न रखकर हालात को बदलने की भूमिका में सक्रिय हुई। यह सक्रिय भूमिका और जिम्मेदारी कहानी को स्थितियों के बदलाव के लिये ठोस, पूर्ण और सुदृढ़ आधार दे रही है। बदलाव की यह सक्रियता कहानियों में कहाँ तक सार्थक रही है, इसे मंच की दो सक्रिय कहानी विशेषांकों में संकलित कहानियों के आधार पर परखा जा सकता है।

मंच 78 के अंक में सक्रिय कहानी की अवधारणा पर निष्कर्षात्मक रूप देते हुये राकेश वत्स ने कहा "सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है कि आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवन्तता की कहानी। इस तरह, अहसास और बोध की कहानी जो आदमी को बेबसी, वैचारिक निहत्थेपन और

नपुंसकता से निजात दिला कर, पहले स्वयं अपने अन्दर की कमजोरियों के खिलाफ खड़ा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सिर पर लेती है जो साहित्य की इस सार्थकता के प्रति समर्पित है कि, साहित्य संकल्प और प्रयत्न के बीच की दरार को पाटने का एक जरिया है। विचार और व्यवहार के बीच का पुल है। यदि वह पुल जनता के बीच पहुँचकर, उसे सचेत और सक्रिय करने की भूमिका नहीं निभाता तो उसका होना या न होना एक बराबर है।"[18] "मंच" की सक्रिय कहानियों में जीवन के क्रान्तिकारी रूपान्तरण के साथ आदमी की बुनियादी इच्छाओं के संसार को जीवन्त और पुख्ता बनाने का प्रयास है। रमेश बतरा की "जंगली जुगराफिया" शोषण और अत्याचार के बहुविध रूपों का सजीव दस्तावेज है, जिसे देश के किसी भी कोने में घटित होते हुये देखा जा सकता है।[19] स्वदेश भारती की "जुलूस" जिसमें उत्पीड़ित लोगों की स्थितियों से अपना साम्य पाकर नायक भी "जुलूस" का अंग बन जाता है। सक्रियता की ओर उठाया गया यह पहला कदम है। इन कहानियों में एकरसता नहीं वैविध्य है। परिवेश की क्रूरता और विसंगतियों के बहुमुखी चित्र हैं। बम्बई की झोपड़पट्टी पंजाब व हरियाणा का ग्रामीण परिवेश, भ्रष्ट प्रशासन, के गर्हित रूप "अतिक्रमण अंत" "जंगली जुगराफिया" उर्फ लक्ष्मी नारायण" और नाभिकुण्ड में उभरे हैं। लेखकों ने स्थानीय मुहावरों, बोलियों, और परम्पराओं से परिवेश व स्थितियों को जीवन्त बना दिया है। सक्रियता के साथ-साथ जीवन की दूसरी संवेदनाएँ भी इन कहानियों में व्यक्त हुई हैं। सक्रिय कहानियों के अन्तर्गत ही भीष्म साहनी की "अमृतसर आ गया है" है। विभाजन की विभीषिका में मुसलमान बहुल इलाके से गुजरती ट्रेन में बैठे हुये पठान एक दुबले पतले हिन्दू बाबू को देखते आते हैं वजीराबाद में दंगों से घबड़ाया एक हिन्दू परिवार डिब्बे में घुसता है। पठानों में से एक उसे लात मारता है जब वो औरत के कलेजे पर लगता है। सामान फेंक कर उसे उतरने को मजबूर कर दिया जाता है। डिब्बे के हिन्दू मुसाफिर पठानों का विरोध नहीं कर पाते। केवल एक बुढ़िया लानत-मलामत कर करती है। गाड़ी के हरबंसपुरा पहुँचते ही आतंक का माहौल छँटने लगता है।

अमृतसर आ गया है की उल्लास भरी झाँकी में साथ बाबू पठानों को बेहिसाब गालियाँ देने लगता है। उत्तेजित होकर उन्हें मारने के लिए आता है तब तक पठान खिड़की से भाग चुके होते हैं। अपनी उत्तेजना को वह एक दूसरे मुसलमान को छुरे से घायल करके शान्त करता है।

इसी कहानी में अन्य मोटे ताजे हिन्दुओं और सरदारों की अपेक्षा दुबले पतले बाबू का अत्याचार के प्रति आक्रोश, प्रतिकार, जीवटता, और साहस उसकी जातीय चेतना, संवेदनशीलता और सक्रियता के द्योतक है। उसके संकल्प और व्यवहार में अद्भुत सामंजस्य है। वह मिलिटेंट पात्र है जो अपमान का दाह महसूस करता हुआ उसे दबा किये रहता है और समय आते ही बदला लेने के लिए उतारू हो जाता है।

"अमृतसर आ गया है" में सक्रियता है सक्रिय कहानी का आन्दोलन स्वच्छ व स्वस्थ मूल्यों के समाज के निर्माण की ओर उठाया कदम है।

सक्रिय कहानी का कथा नायक दब्बू और लाचार न होकर वह अपने अधिकारों के लिए एक जुट होकर लड़ना जानता है, जो संघर्ष प्रकारान्तर में जीत में बदल जाता है। यह बात विवेक [illegible] की "पहली जीत" कहानी में स्पष्ट हो जाती है कि, घरेलू नौकर चन्दन जिन्दगी का लम्बा समय अपने साहब व बीबी की चाकरी में गुजार देता है। जब वह अपना अधिकार माँगने आता है तब दुत्कार दिया जाता है किन्तु अब वह जागरूक है। उसके साथ हमपेशाओं का बल है, जिससे उसका संघर्ष जीत में बदल जाता है।

सक्रिय कहानियाँ शोषण और अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान करती हैं और उसके क्रियान्वयन का रास्ता भी सुझाती है।

"सँच"70 व 79" कहानियों के वस्तु और शिल्प में संतुलन है। "सक्रिय कहानियों के अनुभव विश्वसनीय, तत्व और निर्णायक महत्व के हैं। अनीतियों और वर्ग शत्रु की पहचान कराके इनमें वर्ग-चेतना और संघर्ष तक पहुँचने का उपक्रम है। इस संघर्ष से जुड़ने के लिये कहानीकारों ने रचनात्मक संभावनाओं की तलाश है, और उसके लिये पाठकों को मानसिक रूप से तैयार किया है, इन्हीं से इनकी रचनात्मक सार्थकता व्यक्त हुई है।"[20]

नई कहानी आंदोलन के प्रस्तुत विवरण से स्पष्ट प्रगट है कि, विविध विशेषताओं से जुड़े हुये होने पर भी उसमें भारतीय जनमानस की अभिव्यक्ति देने का प्रयास संभव हुआ है। यह काम नई कहानी आंदोलन से पूर्व भी रचनाकारों द्वारा किया जाता रहा है। वस्तुतः कहानी का तथ्य एक ही है, केवल उसके चुनाव में विविध प्रकार के सामयिक अनुरंजनों का उपयोग किया गया है। रचना शिल्प के धरातल पर उसमें फैशन तथा डिजाइन अधिक है और ऐसा होना स्वाभाविक ही है। जैसे मनुष्य तन ढकने के लिए तरह-2 रंगों से अनेक प्रकार के कपड़े निर्मित करता है, और फिर शरीर के अनुकूल ढालने के लिए तरह-2 के डिजाइन और पैटर्न देता रहता है, वैसा ही कुछ कहानी के आन्दोलनों में भी दिखाई देता है।

आज का युग तेजी से गतिशील है। आज मनुष्य अन्तरिक्ष में उड़ाने भरने लगा है, कुलाचे लगाता है, अठखेलियाँ करता है कुछ वैसा ही कहानीकार भी अपनी प्रतिभा कल्पना और अनुभव के आधार पर रचना कक्ष में करने के लिए प्रयत्नशील है।

वैज्ञानिक आविष्कारों चौंकानेवाली होती हैं किन्तु रचनात्मकता में इस प्रकार का कोई अभूतपूर्व कार्य कदाचित नहीं हो पा रहा है। समय से होड़ लेने के लिए काल काटनेवाली रचनाएँ प्रदान करने के लिए कदाचित उसे बहुत कुछ

करना है। मेरे कहने का आशय यह न समझा जाना चाहिए कि, हिन्दी कहानी साहित्य में जो कुछ हो रहा है वह सार्थक नहीं है उसकी सार्थकता अपनी जगह है, लेकिन कीर्तिमान बनाने के लिए उसे कुछ विशेष और अपूर्व करना है। आज मूल्यों की बहुत ही अधिक आवश्यकता है। तथाकथित सभ्य और सुसंस्कृत कहलाने वाला मनुष्य मूल्यों की दृष्टि से गुमराह हो चुका है। रचनाकारों को समय, समाज और विश्व मानवता को देखते हुये नये चिरन्तन मूल्य स्थापित करने हैं।

संदर्भ सूची

			पृष्ठ सं०
1-	हिन्दी की प्रगतिशील कहानियाँ	सम्पादक पंकज वर्मा	12
2-	बीसवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य नये संदर्भ	डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय	274-275
3-	नई कहानी दशा दिशा और संभावना	श्री सुरेन्द्र	263
4-	आज की कहानी परिभाषा के नये सूत्र	राजेन्द्र यादव	62
5-	समकालीन कहानी का रचना संसार	गंगा प्रसाद विमल	61
6-	समकालीन कहानी का रचना संसार	गंगा प्रसाद विमल	65
7-	माह पत्र अंक 12	डा० कृष्ण बिहारी मिश्र	86
8-	हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा	सम्पादक डा० रामदरश मिश्र डा० नरेन्द्र मोहन	
9-	हिन्दी कहानी आँठवा दशक	मधुर ओती	156
10-	हिन्दी कहानी आँठवा दशक	मधुर ओती	156
11-	आज का यथार्थ समान्तर संसार	कमलेश्वर	सारिका अगस्त 1974
12-	हिन्दी कहानी आँठवा दशक	मधुर अ ओती	166
13-	समकालीन कहानी-समान्तर कहानी	डा० विनय	नई दिल्ली 197
14-	हिन्दी कहानी आँठवा दशक	मधुर ओती	15
15-	हिन्दी कहानी आँठवा दशक	मधुर ओती	82
16-	समकालीन आलोचना बिन्दु प्रति बिन्दु	डा० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय	150
17-	हिन्दी आठवां (अंक) दशक	मधुर ओती	171
18-	मई 78 के अंक से		
19-	मई 78 के अंक से		
20-	हिन्दी कहानी आँठवा दशक	मधुर ओती	100

:: "अध्याय - "चार"::

नये कहानीकार एवं कुछ

मूल्यपरक कहानियाँ

"कहानीकार और उनकी कुछेक मूल्य परक कहानियाँ"

नई कहानी में भौतिक मूल्यों को ही मानव मूल्यों के विघटन का प्रमुख कारण माना गया है व्यक्ति की असहाय अवस्था का कारण धन की कमी है। वर्तमान युग में आर्थिक सुदृढ़ता व्यक्ति को टूटने से बचा सकती है। आर्थिक आधार पर लिखी गई कहानियों में बेकारी, सिफारिश और अनुशासनहीनता की समस्याओं को चित्रित किया गया है।

भौतिक सभ्यता अनेक प्रकार से संकट उत्पन्न करती है, और उन संकटों से मुक्ति की कहानी नई कहानी है।

पारिवारिक सम्बन्धों की कड़ियों को तोड़ने का श्रेय भी भौतिक सभ्यता को ही मानना चाहिये, आज की नारी भी आत्मनिर्भर हो रही है उसकी आत्मनिर्भरता ने ही पुरुष के साथ मित्रता का एक नया सम्बन्ध स्थापित किया है।

अपने युग की चिन्ता किये बिना अपने विचारों को साहित्य में रखना वीटनिक कहलाता है। नयी कहानी में नैतिक मूल्यों को पूर्णतः नकारा गया है। ये मूल्यहीनता की कहानियाँ हैं। ये मूल्यों के ध्वंस में विश्वास करते हैं यही बीटनिक प्रभाव है और ये इसी को आधुनिकता कहते हैं।

नैतिक मूल्यों का ह्रास नारी और पुरुष के सम्बन्धों में हुआ है। आधुनिक कहानी नारी और पुरुष के मैत्री भाव को भी चित्रित करती है।

नई कहानियों ने ही प्राचीन नैतिकता में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किया, इस युग की कहानी में प्रेम का चित्रण एक नये स्तर से किया गया। प्रेम में एक ही पक्ष नहीं अपितु दोनों के टूटने की स्थिति है।

समय के साथ सौन्दर्य विघटित हो गया था। नई कहानी में सौन्दर्य की सीमा में श्लील अश्लील का तो ध्यान रखना ही बेमानी होता गया और पुरुष को भी चित्रित करना उसके दायित्व की सीमा में आ जाता है। सौन्दर्य का सम्बन्ध भोग से हो गया है इसीलिये वह कला मूल्य को मानव मूल्य में बदलने लगा है। कहानी अपनी परम्परा से कटी हुई न होकर उसका विकासशील रूप ही है। कहानीकार प्राचीन परम्परा मानव मूल्य एवं तथ्यों को वर्तमान की कसौटी पर कसता है।

आजादी के पश्चात् विकसित कहानी का जो मूल स्वरूप है उसके प्रमुख तत्व निम्न हो सकते हैं:

1. मुक्त प्रेम और मुक्त यौन सम्बन्ध,
2. सन्त्रास भय और मृत्यु पीड़ा,
3. टूटते हुये सम्बन्ध ,
4. बदलते हुये सम्बन्ध,
. नवीन सम्बन्ध,
6. यथार्थ दृष्टि,
7. अस्तित्व की रक्षा और जिजीविषा,
8. प्राचीन नैतिक मूल्यों का विरोध ।

स्वतन्त्रता के पश्चात् बेकारी, उद्देश्यहीनता एवं भ्रष्टाचार ने मनुष्य को तोड़ दिया है। जिससे वह वैयक्तिक नैतिकता को प्रश्रय देता है, तथा सभी प्रकार के मूल्यों को नकारता है।

इसी तरह कहानीकार मूल्यहीनता चित्रण करते हैं। वे नारी और पुरुष के नवीन सम्बन्धों को अधिक महत्व देते हैं तथा पारिवारिक सम्बन्धों को न केवल टूटती हुई स्थिति में चित्रित करते हैं, अपितु स्वयं भी उन्हें तोड़ने में विश्वास करते हैं।

कहानी साहित्य के मूल्य चेतना के मूल में एक ओर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियाँ कार्य करती हैं तो दूसरी ओर कहानीकार का वैयक्तिक दृष्टिकोण भी रहता है।

कुल मिलाकर यह कि, सतत मानव मूल्यों का परिवर्तन क्रम निरन्तर गतिशील रहा है।

आजादी के उपरान्त अधिकांश कहानीकारों ने पति पत्नी, माँ पुत्री पिता पुत्री, भाई बहन, सम्बन्धों का पारस्परिक संदर्भ और सामाजिक सन्दर्भ में अनेकों कहानियाँ लिखी हैं। पति पत्नी अजनबीपन पारस्परिक संदर्भ..राजेन्द्र यादव की टूटना, नरेश मेहता की अनबीताव्यतीत आदि कहानियाँ हैं।

पति पत्नी का अजनबीपन सामाजिक सन्दर्भ..मन्नू भण्डारी की तीसरा आदमी, कहानी ।

माँ पुत्री का अजनबीपन सामाजिक सन्दर्भ कमलेश्वर की "तलाश"कहानी।

पारिवारिक अजनबीपन सामाजिक सन्दर्भ..उषा प्रियम्वदा की वापसी, रवीन्द्र कालिया की "इतवार का एक दिन" कृष्णा सोबती की "बदली बरस गई" ।

पारिवारिक अजनबीपन पारस्परिक सन्दर्भ धर्मवीर भारती की "यह मेरे लिये नहीं", ज्ञानरंजन की "शेष होते हुये" कहानी।

पिता पुत्री का अजनबीपन पारस्परिक सन्दर्भ निर्मल वर्मा की "माया दर्पण" कहानी ।

बहिनों बहिनों का अजनबीपन पारस्परिक सन्दर्भ निर्मल वर्मा की "दहलीज कहानी"।

दूसरे नगर, समाज लोगों के बीच में जाने और वहाँ अपने को मिसफिट पाने तथा अजनबी होने की भावना: निर्मल वर्मा की "पराए शहरमें" (प्रवास), उषा प्रियम्वदा की कहानियाँ "छुट्टियाँ" आदि कहानियाँ ।

जीवन में अजनबीपन के बाद हमारे जीवन में जो दूसरा परिवर्तन आया है, वह पति पत्नी के नए सम्बन्ध अर्थात् दोनों के व्यक्तिगत अहं, स्वतन्त्र सत्ता एवं अस्तित्व तनाव कटुता और अन्तिम परिणति तलाक ।

पति पत्नी के नए सम्बन्ध:पारस्परिक सन्दर्भ मोहन राकेश की "सुहागिनें" और "एक और जिन्दगी" आदि कहानियाँ ।

पति पत्नी के सम्बन्ध : सामाजिक सन्दर्भ धर्मवीर भारती की "सावित्री नम्बर दो" मन्नू भण्डारी की "आकाश के आइने में" आदि कहानियाँ ।

प्रेम के सम्बन्ध में इस आजादी के बाद अनेक परिवर्तन आये हैं। प्रेम सम्बन्धों में भी स्वार्थ, वासना, उद्देश्य, तथा अपने अपने व्यक्तित्वों के परस्पर उन्मीलन की सफलता या असफलता लक्षित होती है। भावुकता से भरा हुआ प्रेम इस काल में कम कहानियों में है।

"प्रेम में स्वार्थ से अभिप्राय उस सामाजिक मूल्य परिवर्तन से है, जिसमें नारी आधुनिक और प्रगतिशील बन गई कि, अफसरों, मंत्रियों, एवं दूसरे अधिकार प्राप्त लोगों से प्रेम करने, नारीत्व बेचने और स्वार्थ पूर्ति करने का साधन बनाया गया। वासनात्मक प्रेम तो स्वाभाविक भी है, और वह मानव जीवन के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।

आजादी के उपरान्त जिन नये वैवाहिक मूल्यों का विकास हुआ है उनमें नारी और पुरूष दोनों प्रेम करने के पूर्व या एक दूसरे के प्रति आकर्षित होने से पूर्व अपने जीवन के महती उद्देश्यों के सन्दर्भ में एक दूसरे को सोचने लगे हैं।

स्वातंत्र्योत्तर काल में जिस नारीयोचित मूल्य का विकास हुआ उसमें नारी का एक नया व्यापक अंह विकसित होता दृष्टिगोचरहोता है। उसका अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व बनाऔर आर्थिक रूप से स्वावलम्बिनी बनती जा रही है। इसलिये निजी अस्तित्व का भी प्रश्न उठा ।

प्राचीन वैवाहिक मूल्यों में नारी का कोई अस्तित्व नहीं होता था, ना ही नारी का कोई अंह, नारी का प्रेम भावुकता से भरा होता था, नारी के प्रेम में स्वार्थ न होकर, पुरूष के प्रति पूर्ण समर्पण था। आज पुनः प्राचीन मूल्य, नारी के अस्तित्व को विकसित नहीं कर पा रहे हैं ।

पुरूष का अपना अस्तित्व तो पहले से ही स्वतंत्र था । इसीलिये प्रेम की नई स्थिति में दोनों ही अपने अपने अस्तित्व को मिटाना नहीं चाहते है, उसके प्रति प्रत्येक क्षण सचेत रहते है। वे प्रेम भी करना चाहते है,

इसलिये वे एक विशेष बिन्दु तक अपने अपने अस्तित्व को एक दूसरे में मिलाने का प्रयत्न करते थे, पर उस बिन्दु को दोनों ही पार करना नहीं चाहते थे, क्योंकि जिसने वह बिन्दु पार किया नहीं कि, उसका अस्तित्व शून्य में विलीन हुआ, इसे दोनों में से किसी को भी गँवारा नहीं था। यदि उस बिन्दु विशेष पर बात बनानी हुई तो बन गई, नहीं तो बिगड़ गई।

प्रेम की जो नई स्थिति आजादी के बाद उभरी, उनमें दोनों ही पक्ष अतिरिक्त रूप से "कॉन्शस" रहने लगे और भावुकता का यहाँ कोई महत्व शेष न रह गया।

यह प्रेम का नया यथार्थ रूप था, जिसे नये कहानीकारों ने अपनी कहानियों में चित्रित किया। प्रेम प्रत्येक काल में ही साहित्यकारों का प्रिय विषय रहा है।

प्रेम और स्वार्थ सामाजिक सन्दर्भ विष्णु प्रभाकर की "धरती अब भी घूम रही है"। प्रेम और वासना, पारम्परिक सन्दर्भ मोहन राकेश की "वासना की छाया", नरेश मेहता की "चपा भीगी" आदि कहानियाँ।

प्रेम और उद्देश्य : सामाजिक सन्दर्भ मन्नू भण्डारी "यही सच है" कृष्णा सोबती "बादलों के घेरे" आदि कहानियाँ।

प्रेम और उद्देश्य : पारम्परिक सन्दर्भ. राजेन्द्र यादव की "छोटे छोटे ताजमहल", निर्मल वर्मा की "तीसरा गवाह" आदि कहानियाँ।

प्रेम और अस्तित्व के उन्मीलन की समस्या : पारम्परिक सन्दर्भ मोहन राकेश की "पाँचवें माले का फ्लैट", कमलेश्वर "नीला गुलाब"

मन्नू भण्डारी "पति का चुम्बन" राजेन्द्र यादव की "पुराने नाले पर नया फ्लैट" आदि कहानियाँ।

राजनीतिक जीवन की कहानियाँ : कमलेश्वर की "जार्ज पंचम की नाक", फणीश्वर नाथ रेणु की "पंच लाइट", मोहन राकेश "मलबे का मालिक" अमर कान्त की "हत्यारे" आदि कहानियों में विभाजन, राजनीतिक हथकण्डों का सामाजिक जीवन पर प्रभाव, पंचों की राजनीति या नेताओं की प्रवृत्ति आदि का चित्रण है।

बेरोजगारी की कहानियाँ : अमरकान्त की "इन्टरव्यू" तथा सुरेश सिन्हा की "नया जन्म" इन दोनों कहानियों में आजकल नौकरी देने के बहाने किये जाने वाले रोजगार, इन्टरव्यू का नाटक, भाई भतीजावाद आदि यथार्थ स्थितियों को लेकर नई पीढ़ी की कुंठा, निराशा एवं टूटन को सामाजिक मूल्यों के सन्दर्भ में यथार्थता से चित्रित किया गया है।

आंचलिक कहानियाँ : फणीश्वर नाथ रेणु, मार्कण्डेय, शैलेश मटियानी की कई कहानियों में ग्राम विशेष की स्थानीय संस्कृति, लोक व्यवहार की भाषा मुहावरे तथा जीवन आदि का यथार्थ चित्रण किया गया है।

भ्रष्टाचार की कहानियाँ : मोहन राकेश की "काला रोजगार" मन्नू भण्डारी की "इन्कम टैक्स का" और "नींद" आदि कहानियाँ।

पीढ़ियों का संघर्ष अर्थात आजादी के बाद की प्रमुख समस्या रही है। यह एक संक्रान्ति का युग था, जिसमें पुराने मूल्य टूट रहे थे और नये मूल्य उभर रहे थे।

पुरानी पीढ़ी अविश्वास और विचित्र आशंका से इस नई पीढ़ी नए उभरने वाले मूल्यों और आधुनिकता की नवीनतम प्रवृत्तियों को देख रही थी और नई पीढ़ी को सारे पुराने मूल्य रूढ़ और अव्यावहारिक प्रतीत हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में संघर्ष होना स्वाभाविक ही है। जिसका अन्त पुरानी पीढ़ी की पराजय में ही होता है, क्योंकि, सभी कहानीकार नई पीढ़ी के हैं और वे अपनी पीढ़ी के विचारों एवं आदर्शों की सार्थकता तथा उपयोगिता किसी न किसी प्रकार सिद्ध करना ही चाहते हैं।

पीढ़ियों का संघर्ष सामाजिक सन्दर्भ कमलेश्वर की "देवा की माँ" मोहन राकेश की "जंगला", राजेन्द्र यादव की "पास फेल" आदि कहानियाँ ।

पीढ़ियों का संघर्ष : पारस्परिक सन्दर्भ निर्मल वर्मा की "कुत्ते की मौत" ज्ञान रंजन की "शेष होते हुये" आदि।

नारी जीवन के आधुनिक आयामों को लेकर लिखी जाने वाली कहानियाँ : कमलेश्वर "जो लिखा नहीं जाता" मोहन राकेश की "ग्लासटैंक" राजेन्द्र यादव की "जहाँ लक्ष्मी कैद है" मन्नू भण्डारी की "कील"और "कसक" आदि कहानियाँ ।

सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार की कहानियाँ मन्नू भण्डारी की "सयानी बुआ", धर्मवीर भारती की "गुल की बन्नो" फणीश्वर नाथ रेणु की "तीर्थोदक" कहानियाँ ।

1960 के बाद के दशकों में जो नई पीढ़ी उभरी उसमें से कुछ लेखकों ने निश्चित रूप से उस ओर पारम्परिक संदर्भ से हटकर सामाजिक

परिवेश में नए यथार्थ को पहचानने और नये मानव मूल्यों को प्रतिस्थापित करने का प्रयत्न किया है ।

नई कहानियाँ युग की व्यापक चेतना से अनुप्राणित है। उनमें यदि कहीं नवीन मूल्यों की स्थापना नहीं भी है तो नवीन मूल्यों की ओर संकेत अवश्य ही है।

आज की कहानी व्यंजना प्रधान रहती है। उसका मूलाधार मानवतावादी है। मनुष्य में मनुष्य की पहचान और मनुष्य की नैतिक जिम्मेदारी का मांगलिक रूप ।

नई कहानी आन्दोलन के प्रारम्भिक काल में कमलेश्वर ने लिखा है: "जिस समय नयी कहानी अपना स्वरूप अख्तियार करने लगी, उस समय हिन्दी गद्य में "शाश्वत मूल्यों" का बोलबाला था। कथा साहित्य, पाप पुण्य, सुख दुःख, सौतेली माँ, सौत, कुलटा, शराबी, चरित्रहीन आदि मान्यताओं के इर्द गिर्द चक्कर लगा रहा था। हर कहानी किसी एक और झुकते निष्कर्ष पर टँगती थी और "सन्देश" देने की कला में महारत हासिल कर रही थी।"[1]

"स्टेशन पर खड़ी, अपने जाते हुये पति को विदा देती हुई आधुनिका हमारे पुराने लेखकों के लिये "एक हुँठा पान" बनी हुई थी, क्योंकि वे यह स्वीकार नहीं कर पा रहे थे कि, लिपिस्टिक लगाए और मेकअप किये हुये औरत की भी एक बहुत सच्ची भावात्मक दुनिया है या वह भी अपने पति के प्रति समर्पित हो सकती है या कि, वह भी अपनी तकलीफ में उतनी ही निरीह हो सकती है, जितनी कि वह औरत जो

दरवाजों की ओट से, लट पर आँचल डाले और माथे पर बिन्दी लगाये, अपने परदेश जाते पति को रो रोकर विदाई दे रही होगी। शाश्वत मूल्यों के प्रति समर्पित कहानी अपनी संवेदना उन्हीं क्षेत्रों तक सीमित बनाये हुये थी, जो कि, रूढ़ हो चुके थे। उस कहानी के लिये वह औरत ज्यादा सच्ची थी जो घर की चहारदीवारी में बन्द थी, उसका सुख दुख, एकांतिकता, और अवरुद्ध जीवन उस कहानी के लिए ज्यादा "पवित्र" था। अज्ञेय की "रोज" कहानी के अलावा किसी भी अन्य कहानी में वह लेखकीय कोण नहीं मिलता, जो उस रोज रोज की जिन्दगी की नीरसता और नीरवता को मुखर करता हो। उस समय की अधिकांश कहानियों में नारी एक व्यक्ति की तरह नहीं बल्कि कुछ कुछ "हिन्दू ललना" के अन्दाज में सम्प्रेषित हुई है।[2]

"शाश्वत मूल्यों की ई स्थापना में हमारे इन कथाकारों ने कहानी के वातावरण को यथार्थवादी ढंग से सम्प्रेषित जरूर किया, परन्तु आदमी के आंतरिक यथार्थ को उन्होंने हमेशा उपेक्षित किया। शाश्वत मूल्यों के इस अतिरिक्त आग्रह ने आदमी को आदमी नहीं रहने दिया। वह जीवन को वहन करने वाला केन्द्रीय व्यक्ति स्वयं अपने अस्तित्व के संघर्ष से विमुख होकर रूढ़ हिन्दू क विचार धारा का संघर्ष जीने के लिये बाध्य किया गया"।[3]

शाश्वत है केवल जीवन और मृत्यु और इसके बीच अस्तित्व का संघर्ष...परन्तु हमारे तत्कालीन कहानीकारों ने अपनी विशिष्ट मानसिक पद्धति को शाश्वत साबित करने का ढोंग किया और इसलिये वे प्रेमचन्द की कहानियों से दूर होते गये। कफन या "पूस की रात" या "शतरंज के खिलाड़ी" के आदमी अपने पूरे परिवेश में आदमी हैं...वे शाश्वत मूल्यों की खोखली मजबूरी हिन्दू या मुसलमान नहीं है और न लेखकीय अत्याचार के शिकार हैं।"[4]

कहानी को तिलस्मोई से वास्तविक छुटकारा नई कहानी की स्थापना के बाद ही मिला। "नयी कहानी" हिन्दी कहानी के समुन्नत अनुशासन स्वरूप के लिये एक सर्वथा उपयुक्त संज्ञा है।

"नयी कहानी ने बन्धन तोड़े, उसे हावों की संकीर्णता से मुक्त किया, स्थूल से वह सूक्ष्म की ओर बढ़ी, वह मनोरंजन भर ही नहीं रह गई। भावों का कोई स्पंदन ऐसा नहीं जो नयी कहानी में न आ सके, शिल्प की ऐसी कोई दिशा नहीं जो उससे अछूती रही हो।"[5]

नये कहानीकारों ने यथार्थ के धरातल पर प्रतिबिम्बित होती जीवन की घटनाओं पर अपनी लेखनी चलाई है। इस लेखनी में अतीत और भविष्य का नहीं, वर्तमान का अनुभव किया हुआ परिणाम दृष्टिगत होता है।

एंटन चेखव के अनुसार "अब तो कहानी का न कोई अन्त होता है, न प्रारम्भ वह जीवन की एक फाँक है।"[6]

नई कहानी "अब चेखव" के कथनानुसार जीवन की एक फाँक है, उसमें दिशा नहीं, दशा का संकेत होता है। सामाजिक जीवन के संक्रान्तिशील व्यक्ति और समाज के अनुभूति क्षण को चुनकर दोनों में सार्थक सम्बन्ध की खोज निकालना आज की कहानी की प्रमुख विशेषता है। परिवेश बोध को चित्रित करना नई कहानी की महत्वपूर्ण विशेषता है।

देनी चाहिये , और उसे बदलते परिप्रेक्ष्य को स्वीकार करते हुये उन समस्त दृष्टिकोणों को स्थापित करना चाहिये जो परम्पराओं के विरोध में उभरती चले जा रहे हैं।[19] नये कहानीकारों ने बदलते परिप्रेक्ष्य को स्वीकारते हुये परम्पराओं के विरोध में उभरते हुये मानव मूल्यों का कहानी के माध्यम से स्थापित किया है।

हर व्यक्ति वैयक्तिक रूप में अपनी जिन्दगी के लिये नये मानव मूल्यों की स्थापना चाहता था, पर सामाजिक स्वीकृति के लिये दूसरों का मुँह जोहता था। हर तरफ एक संकट व्याप्त था, वैयक्तिक और सामाजिक आचरण के दो मानदण्ड बने हुये थे और वे मूल्य, जो बहुसंख्यक व्यक्तियों द्वारा पोषित थे, सामाजिक सम्बन्धों के स्तर पर अपनी सार्थक स्थापना के लिये प्रयत्नशील थे।

ऐसे ही समय में जबकि पुराने लेखकों के मूल्य स्रोत चुक रहे थे और नया पाठक वर्ग बदलते हुये मानव मूल्यों की अभिव्यक्ति चाह रहा था, नयी कहानी का उदय हुआ।

इसलिये यह कहा जा सकता है कि, स्वातंत्र्योत्तर कहानी ने रूढ़ि के तत्व को काटकर एक नयी दिशा की ओर प्रयाण किया है। इस रूढ़ि को काट फैंकने में उन केन्द्रीय पात्रों का बहुत महत्व है जिन्होंने कहानी को इस भूमिका में उतारने का योग दिया। प्रेमचन्द, यशपाल, रांगेय राघव आदि के यहाँ भी इस भूमिका का संकेत मिलता है, पर उसकी सम्भावना सन् 50 के बाद प्रकट ही हुई। इस भूमिका का ही यह परिणाम है कि, हिन्दी कहानी ने विराट को क्षण के आकलने में और अभिजात वर्गों को व्यापक भूमि

"कमलेश्वर" : :

कमलेश्वर ने मुख्यतया मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ को अपनी कहानियों में अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है। कमलेश्वर प्रगतिशील कहानीकार हैं। और प्रारम्भ में प्रगतिशील आन्दोलन से भी घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित रहे।

कमलेश्वर की कहानियों में विराटता है, विराटता का बोध है, जीवन के विविध पक्षों का संस्पर्श कर यथार्थ अभिव्यक्ति देने का आग्रह है। और आधुनिक भाव बोध को स्पष्ट करने की क्षमता है। "राजा निरबंसिया" कमलेश्वर की बहुचर्चित कहानी है। जिसमें उन्होंने अपने परिवेश और वातावरण में आधुनिक मूल्यों की खोज की है। यह कहानी दृष्टि की अपेक्षा रूप के परिवर्तन का उदाहरण है। यह दुहरी कथा है.. एक ओर राजा की कथा और दूसरी ओर जगपती चंदा की अन्तर्कथा । उसमें जीवन की ट्रेजडी उभरकर सामने आती है, और पात्र जीवन के अकेलेपन के शिकार बने रहते हैं। गनीमत यही है कि, लेखक को "पिकल" ट्रेजिक नहीं है। उनकी अधिकांश कहानियों में परिवेशीय अभिव्यक्ति प्रधान रूप से पायी जाती है। वे मानवीय संवेदना की व्यापक परिधि में नवीन नैतिक मूल्य उभारना चाहते हैं।[12]

1.	पति पत्नी का प्यार निस्वार्थ हुआ करता था ।
2.	शारीरिक पवित्रता के मूल्य को सर्वोपरि महत्व था ।
3.	चरित्र के प्रति शंका उठ भी जाती थी तो पति पत्नी स्पष्ट रूप से अपनी चर्चा बन्धुता के साथ करते थे तथा शंका निवारण कर लेते थे।

6. जब किसी भी तर्क अथवा प्रमाण द्वारा शंका समाधान सम्भव नहीं होता था तब किसी न किसी प्रकार का दैवी चमत्कार हो जाता था . उदाहरण: कहानी में बच्चों का छोटा हो जाना और रानी की छातियों में दूध भर आना। ।

. स्त्री के चरित्र पर जब शंका की जाती थी तब वह अत्यन्त ही स्वाभिमान से और कुछ सीमा तक गर्व से किसी भी प्रकार की परीक्षा के लिये तैयार हो जाती थी। ऐसे समय वह अक्सर ईश्वर के चरणों में चली जाती थी। जैसे अपने सतीत्व को सिद्ध करने के लिये उन्होंने घोर तपस्या की"।

8. इन स्थितियों से गुजरते हुये उन लोगों को अर्थात रानी की अथवा उस युग के लोगों। किसी भी प्रकार का पश्चाताप नहीं होता था । यथार्थ मानसिक यंत्रणाओं से उन्हें गुजरना नहीं पड़ता था । क्योंकि उनके पास प्रत्येक के उत्तर तैयार थे। पति ने चरित्र पर शंका की है तो घोर तपस्या कर ली, इत्यादि जीवनगत मूल्यों में किसी भी प्रकार की टकराहट नहीं होती थी। मूल्यों का महत्व सर्वाधिक था ।

वास्तव में कमलेश्वर के ये वक्तव्य इस कहानी के मूल्यांकन में सहायक हो सकते हैं । "जीवन और उसके परम्परागत मूल्यों के प्रति उन पात्रों की आस्थामात्र ही थी असहमति है।"[13] इस कथावस्तु के माध्यम से कमलेश्वर एक ओर टूटते हुये जीवन मूल्यों को स्पष्ट करने में सफल हुये हैं तो दूसरी ओर इन मूल्यों के टूटने के बाद आदमी कितना अकेला पड़ जाता है। इसका भी बता गये हैं।

आधारित कहानी है। "उसकी प्रतीक्षा" आत्मपरक है। उसके पात्र निम्न मध्यवर्ग, मध्यवर्ग, उच्चवर्ग तीनों वर्गों के हैं। इसके पात्रों की जातिगत विशेषताओं को वास्तविक रूप से उद्घाटित करने में राजेन्द्र यादव को सफलता प्राप्त हुई है। उनके पात्र कृत्रिम मुखौटे नहीं लगाते। वे स्वाभाविक रूप में हमारे सामने आते हैं"। "खेल खिलौने"[43] में युद्ध की भ्रांति का प्रतीक की तरह प्रयोग करना निःसन्देह उनकी मौलिकता की उपज है। "एक कमजोर लड़की की कहानी" में उन्होंने वर्तमान जीवन के अन्तर्विरोधों की ओर संकेत किया है।

इस सम्बन्ध में स्वयं राजेन्द्र यादव ने एक स्थान पर लिखा है कि "एक अजीब मजबूरी है, अपने से जुड़े इन सूत्रों को तोड़ देता हूँ तो अपने लिए ही अपरिचित हो उठता हूँ, उन्हीं में बँधा रहता हूँ तो अपने कुछ न होने का अहसास करता हूँ। सब कुछ न छूटे, सन्दर्भ और आतंक ही सब कुछ हो गये। इन आतंकों और सन्दर्भों में छूटने और इन्हीं तोड़कर अपने को हीन पहचान पाने की स्थिति से घबराकर नये सन्दर्भ और आतंक बनाने, उन्हें पुरानों से जोड़कर परिचित करने की प्रक्रिया का सिलसिला शुरू होता है। टूट कर होकर अपने को पहचानने, न पहचानने की दुविधा तंग करती है। मुझे लगता है मेरा लिखना कुछ इसी बौखलाहट का प्रतिफल रहा गया है। अपने को अपने आपसे नोचकर "नये" बनाने, अनजाने पात्रों परिस्थितियों अवस्थाओं स्थितियों में फेंक फेंक देना, स्वयं अपने आपसे अपरिचित हो उठना और फिर अपने जैसे उस परिचित व्यक्ति की तलाश में भटकना और अचानक यह महसूस करना कि, भीड़ में वह मुझे छू छूकर निकल जाता है।"[44]

राजेन्द्र यादव प्रतिभाशाली कहानीकार हैं। स्वस्थ सामाजिक दृष्टि, यथार्थपरक जीवन, स्थितियों को उभारने की प्रयत्नशीलता भी उनकी कहानियों में मिलती है। "जहाँ लक्ष्मी कैद है" "पास फेल, तथा "लंच टाइम" जैसी कहानियों की आशा पाठकगण राजेन्द्र यादव से करते हैं। लेकिन जब अपने प्रिय कथाकार को सोद्देश्यता से भटक कर "आधुनिकता" के गलत चक्करों में पड़कर "एक कटी हुई कहानी" तथा भविष्य के आस पास मँडराता अतीत[45] जैसी घोर प्रतिक्रिया वादी कहानी लिखते पाते हैं तो निराश ही होते हैं। उनकी कहानियों में आधुनिकता के साज सामान होते हैं, पर वह जीवन ही नहीं होता।" उनके प्रतीक भी आरोपित और संवेदना के फलस्वरूप नहीं, चिन्तन के फलस्वरूप उभरे प्रतीत होते हैं। व्यक्ति का आंतरिक द्वंद्व ही उनका मुख्य विषय है।"[46]

उनके कहानी संग्रह निम्न लिखित हैं :
"अभिमन्यु की आत्म हत्या ॥19 9॥, किनारे से किनारे तक ॥1963॥, खेल खिलौने ॥1960॥, टूटना और अन्य कहानियाँ ॥1964॥, अपने पार ॥1968॥ जहाँ लक्ष्मी कैद है ॥1971॥, मेरी प्रिय कहानियाँ, राजेन्द्र यादव की श्रेष्ठ कहानियाँ, ढोल और अन्य कहानियाँ ॥1972॥ आदि। "जहाँ लक्ष्मी कैद है" और "टूटना"[47] सीमित अर्थों में उनकी उपलब्धियाँ हैं।

::भीष्म साहनी::

प्रगतिशील कहानीकार हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में प्रायः मध्यवर्ग को लिया है और उसकी विभिन्न समस्याओं को यथार्थ ढंग से चित्रित करने का प्रयास किया है। इस मध्य वर्ग की कुण्ठा, पीड़ा, घुटन, पिछड़ापन, रूढ़ियाँ और झूठी मान्यतायें आदि उनकी विभिन्न कहानियों में बड़े सशक्त ढंग से अभिव्यक्ति पा सकी है।

उनकी कहानीकला का मूलाधार समष्टिगत चिन्तन पर ही आधारित है। अपनी कहानियों में उन्होंने पूरे भारतीय समाज को उसकी समस्त अच्छाई बुराई के साथ ही प्रकट किया है, किसी व्यक्ति को नहीं। इसलिये न तो वह किसी के लिए अकवादी हैं, और न अपने अस्तित्व एवम् निजत्व के लिए दिन रात चिन्तित। लगभग सभी कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन मूल्यों पर प्रहार किया गया है और पैने तीखे व्यंग्य के माध्यम से उसकी कृत्रिमता एवम् खोखलेपन को उभारा गया है। भीष्म साहनी यथार्थवादी अधिक हैं, कलावादी कम। उनकी कहानियों में व्यंग्यात्मकता अधिक दिखती है।"[56] इस कथन की पुष्टि इनकी इन कहानियों से हो जाती है:- जैसे "चीफ की दावत" [57]"पहला पाठ", बाप बेटी", समाधि, साग मीट,[58] भाई रामसिंह, अकेली राख,[59] सबर की रात, झन्टू वाल,[60] पास फेल[61] ।1961।, शिकायती चिट्ठी,[62] सुनहरी किरण[63] आदि सभी कहानियाँ व्यंग्यात्मक अधिक हैं। भीष्म साहनी की भाषा उनके व्यक्तित्व के अनुरूप सादगीपूर्ण है। उन्होंने पूरे भारतीय समाज को अपनी कहानियों का विषय बनाया है। समाज के खोखलेपन पर प्रहार करते

पति से हमने अपराध किया तो भगवान ने हमसे बच्चा छीन लिया, अब भगवान हमें क्षमा कर देंगे। फिर कुछ क्षण के लिए चुप हो गई क्षमा करेंगे तो दूसरी सन्तान देंगे, तुम्हारे बीजा जी को भगवान बनाये रखे। खोट तो हमीं में है, फिर सन्तान होगी तो सौत का राज नहीं होगा।"[66] यहाँ सम्बन्धों की पुनः स्थापना है। भारती की कहानियों में नवीन जीवन मूल्यों की खोज, मानवीय संवेदना, आधुनिक परिवेश में बनते बिगड़ते मानव सम्बन्ध, सामाजिक चेतना आदि आयाम दृष्टिगत होती है।

डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय भारती को अन्य कहानीकारों से अलगाते हुये उनकी कहानी कला के सम्बन्ध में लिखते हैं "भारती की प्रारम्भिक कहानियों में कथानक स्थूल है, पर बाद की कहानियों में सूक्ष्म से सूक्ष्मतर हो गये हैं। उन्होंने अधिकांशतः समष्टिगत आधुनिकता का चित्रण किया है और वह आधुनिकता मात्र फैशन या नारे के लिये नहीं है। उन्होंने भारतीय जीवन पद्धति के परिवर्तनशील सन्दर्भ एवं नूतन आयामों को भली भाँति समझा है और उसकी मूल प्रवृत्तियों से युक्त आधुनिकता को सूक्ष्म से सूक्ष्म रेखाओं का अत्यन्त कुशलता से अंकन किया है। सामयिक बोध, आधुनिक परिवेश, एवं नवीन चेतना के कारण भारती की कहानियों में सामाजिक दायित्व बोध एवं निष्ठा की एक व्यापक पृष्ठभूमि प्राप्त होती है जो उनके दूसरे समकालीनों से उन्हें भिन्न करती है। उनमें न राजेन्द्र यादव की भाँति शिल्पगत चमत्कार है, न कमलेश्वर की भाँति दूसरों की सफल कहानियों से प्रभावित होने की प्रवृत्ति है और न

मोहन राकेश की भाँति सामाजिक दायित्व एवं तथाकथित नई प्रगतिशीलता को नारे बाजी के स्तर पर चित्रित करने का "पूर्वाग्रह" है। उनकी अपनी शैली है जिस पर उनके व्यक्तित्व की पूरी छाप है और वह उनकी प्रत्येक कहानी के साथ निरन्तर प्रौढ़ रूप में विकसित होती ही गई है।" 67

गुल की बन्नो, चाँद और टूटे हुये लोग, सावित्री नम्बर 2 बन्द गली का आखिरी मकान, मरीज नम्बर सात, धुँआ, यह मेरे लिये नहीं, आदि धर्मवीर भारतीय की श्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

॥"मार्कण्डेय"॥

स्वातन्त्र्योत्तर भारत के ग्राम्य जीवन में हुये परिवर्तनों का सफल चित्रण करने वाले कहानीकार हैं। इनकी कहानियों में राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण हैं। आधुनिक ग्राम जीवन और दृष्टिकोण में नये मोड़ आये हैं वे गाँव कहीं नहीं जो प्रेमचन्द के समय में थे।

युद्ध से लौटे सैनिक, उच्च शिक्षा प्राप्त और तरह तरह के विदेशी सिद्धान्तों से परिचित राजनीतिक कार्यकर्ता, शिक्षा समाप्त करके शहरों में नौकरी न पाने के कारण लौटे नवयुवक, सरकारी योजनाओं के कार्यान्वित करने के लिए गाँव में आकर रहने वाले सरकारी कर्मचारी तथा पदाधिकारी, अखबार, रेडियो, चुनाव, पंचायत आदि कई विशेषतायें हैं, जो हमारे ग्राम जीवन तथा सोच को एक नया रूप दे रही हैं। मार्कण्डेय को इस नये रूप की पूरी पहचान है।

मार्कण्डेय की अधिकांश कहानियाँ ग्राम जीवन की समस्याओं को लेकर लिखी गई है। नगरीय जीवन पर लिखी गई कहानियाँ बहुत कम है।

"हंसा जाई अकेला"[68] मार्कण्डेय की बहुचर्चित कहानी है। इस कहानी में मानवीय सहानुभूति का यथार्थ और सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है। मार्कण्डेय प्रगतिशील कहानीकार हैं तथापि उन्होंने प्राचीन सामाजिक नैतिकता को पूर्णतया तोड़ने का प्रयत्न नहीं किया है। उनकी कहानियों में शोषण के विरोध का स्वर प्रबल रूप से मुखरित हुआ है।

उनकी कहानी संग्रहों में "हंसा जाई अकेला", "पान फूल", "भूदान", सहज और शुभ", "माई" आदि उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह है।"

"हंसा जाई अकेला", 'माही', "आदर्शों का नायक" तथा घुन[69] आदि उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

उनमें जीवन की अद्भुत पकड़ भी है: यद्यपि उनका दृष्टिकोण भावुकता से पूर्ण और आदर्शोन्मुख रहता है। "तीसरी कसम" उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी समझी जाती है, जिसमें घटना और चरित्र के स्थान पर आन्तरिक संवेदना भली भाँति उभरी है.. भले ही उसमें फिर पुरातनत्व और रोमांटिक चित्रण आदि बातें पाई जायें और भले ही आधुनिकता उसे न छू गयी हो। ऐसी ही मर्मस्पर्शिता उनकी अन्य कहानियों में दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने मनुष्य की आन्तरिक चेतना और मनः स्थिति को कुशलता के साथ चित्रित किया है।

"रेणु" के कहानी संग्रहों में "ठुमरी" (1967), आदिम रात्रि की महक (1967), रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ आदि प्रसिद्ध हैं। तीसरी कसम अर्थात मारे गये गुलफाम, तीर्थोदक, रस प्रिया, लाल पान की बेगम,[72] ठेस, और तीन बिंदिया उनकी कहानियाँ हैं।

:: "अमरकान्त" ::

अमर कान्त प्रगतिशील कहानीकार हैं, इनमें मानवीय संवेदनशीलता है, जीवन का यथार्थ है और आस्था एवं संकल्प है। इनके पात्रों में अपूर्व जिजीविषा है, इनकी कहानियों से एक ऐसा दृष्टिकोण उभरता है, जो जीवन से जूझने और निराशा से उबर कर आत्मविश्वास से ओत प्रोत होने की प्रेरणा प्रदान करता है।

"रानी माँ का चबूतरा" कहानी में मन्नू भण्डारी ने नारी जीवन की पीड़ाओं, उसकी दयनीय स्थिति पर प्रकाश डाला है। समाज ऐसा है कि, जो दयनीय है, निरीह है, उन्हें निन्दा का पात्र बनाता है। "कभी "रानी माँ का चबूतरा" में पास पड़ोस के सभी लोग गुलाबी को चुड़ैल कहते हैं, कर्कशा और बुरी आदतों वाली मानते हैं जबकि तथ्यता इसके विपरीत है, वह तो बेचारी व्यथा ग्रस्त है। लोग ऐसे व्यक्तियों की सहायता भी नहीं करते। जब वह अपने बच्चों को घर छोड़ मजदूरी पर जाती है तो अगर उसका बच्चा नाली में गिर जाता है तो मुहल्ले के लोग उसे उठाते तक नहीं..."आ डाकू कहूँ आए बस्ती वाले। पहले कोठरी खोलकर जाती थी तो मेरा छोरा सरकते सरकते मोरी में आकर गिर गया। किसी ने उठवाया तो नहीं। बड़े अपने बनते हैं। मेरा छोरा भी तो न जाने किस माटी का बना हुआ है, सारे दिन मोरी के गंदे पानी में पड़ा रहा पर मरा नहीं, मर जाता तो पाप कटता. परिस्थिति से पीड़ित नारी के लिये इसके अतिरिक्त कहने को और क्या रह जाता है। "आज तक नारी इसी तरह घुट और टूट रही है" और पड़ोस के लिये रहस्यमयी बनी हुई है।" 80

"क्षय" कहानी में पिता के असुरक्षित हो जाने पर नवयुवती लड़की को परिवार की सारी देखभाल करनी पड़ती है, उसकी सारी आकांक्षाएँ विलीन हो जाती हैं। उसे सब कुछ छोड़कर परिवार चलाने के लिये अध्यापिका बनना पड़ता है। परिस्थितियों से घबराकर कुन्ती अपने असहाय पिता की बीमारी से अपनी तुलना करती है, उसे खाँसी भी आती है तो वह सहम जाती है "एकाएक कुन्ती को लगा कि, उसकी यह खाँसी, यह खोखली..खोखली आवाज, पापा की खाँसी से कितनी मिलती जुलती है.

..हूबहू वैसी ही तो है...सहमकर उसने गाड़ी के शीशे में से देखा, कहीं उसके चेहरे पर भी तो वैसा कुछ नहीं जो उसके पापा के चेहरे पर ..... प्रस्तुत कहानी एक संत्रस्त युवती की कहानी है। जो परिस्थितियों से लड़ते लड़ते टूटती हुई प्रतीत होती है।

::"उषा प्रियंवदा"::

उषा प्रियंवदा आज की प्रमुख कहानी लेखिकाओं में हैं और आज की पीढ़ी के दूसरे कहानीकारों की भाँति समष्टिगत चिन्तन से व्यष्टि चिंतन की ओर उनकी भावधारा भी मुड़ी है। आज के नारी जीवन में स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद जो परिवर्तन आये हैं और जिन नये मूल्यों को आत्मसात करने और पुराने मूल्यों को अस्वीकारने के लिए आज की नारी बिना सोचे उनको अपनाने के लिए आकुल हो रही है, उसके क्या-क्या परिणाम हुये हैं, उषा प्रियंवदा की कहानियों में अत्यन्त कुशलता के साथ प्रकाशित हुआ है।

इसके अतिरिक्त आधुनिक मध्यवर्गीय परिवारों की क्या स्थिति है, उनकी मान्यतायें किस सीमा तक परिवर्तित हो रही हैं, और मूल्य मर्यादा किन विवशताओं एवम् विकृतियों के कारण खण्डित हो रही हैं। और इस परिवेश में तथाकथित आधुनिक नारी अपनी उच्च शिक्षा एवम् अस्तित्व रक्षा की भावना से ओतप्रोत किस प्रकार विभाजित है। उषा प्रियंवदा ने अपनी नई कहानियों में इसका बहुत ही यथार्थ एवम् सजीव चित्रण किया है। उनकी सीधे ढंग की कहानियाँ वे हैं, जिनमें पति पत्नी के सम्बन्धों की आधुनिक परिवर्तित सन्दर्भों में व्याख्या है। दूसरे ढंग की कहानियाँ वे हैं जो उन्होंने विदेश जाने के पश्चात् लिखी हैं। जिनमें आत्म-परक,

जिन्दगी और गुलाब के फूल ॥1961॥ और एक कोई दूसरा॥1966॥ [83] किनारा कहाँ हैं॥1972॥ उनके कहानी संग्रह हैं। "वापसी" "कोई नहीं" "खुले हुए दरवाजे तथा "जिन्दगी और गुलाब के फूल" उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

::"शिव प्रसाद सिंह"::

"आज के कहानीकारों में शिव प्रसाद सिंह का विशेष महत्व है। इन्हें प्रेम चन्द परम्परा का कहानीकार माना जाता है। शिवप्रसाद सिंह भारत को गाँवों में मानते हैं और यही कारण है कि, वे ग्राम कथा को अधिक महत्व देते हैं। कुण्ठहीनता की कहानियों को वे "भौंडी, अमानवीय, नैराश्य तथा सपाट" मानते हैं।" [84]

"उनकी कहानियों में मानवीय मूल्य प्रमुख हैं। वे मनुष्य और उसकी जिन्दगी को महत्व देते हुये लिखते हैं—"मनुष्य और उसकी जिन्दगी के प्रति मुझे मोह है जो अपने अस्तित्व को उभारने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में विरोधी शक्तियों से जूझ रहा है, और विवशता, उपेक्षा, विफलता, प्रताड़ना, अशिक्षा, शोषण, राजनीतिक शोषण और मूल्य व्यावसायिकता के नीचे पिसता हुआ भी जो अपने सामाजिक और मनोवैज्ञानिक हक के लिए लड़ता है, हंसता है, रोता है, बार-बार गिरकर भी जो अपने लक्ष्य से मुँह नहीं मोड़ता, वह मनुष्य तमाम शारीरिक कमजोरियों, मानसिक दुर्बलताओं के बावजूद महान है। वे आधुनिकता को एक मूल्य के रूप में स्वीकार नहीं करते।" [85]

"दादी माँ" शिवप्रसाद सिंह की एक बहुचर्चित ग्राम जीवन का चित्रण करने वाली एक सफल कहानी है। "नन्हों" शिवप्रसाद सिंह की एक

"जरूर भोगनी होगी मुखिया जी....मैं आपके समाज को कर्मनाशा से कम नहीं समझता। किन्तु, "मैं एक एक के पाप गिनने लगूँ तो यहाँ बड़े सारे लोग, लोगों को परिवार समेत कर्मनाशा के पेट में जाना पड़ेगा.. है कोई तैयार जाने को?" [88]

समाज के आचरण भ्रष्ट तत्वों के विरुद्ध विद्रोह की आवाज कितनी मुखर है। शिव प्रसाद सिंह एक शिल्प-चेतना कहानीकार हैं। वातावरण का सजीव चित्रण प्रस्तुत करने में सफल हैं।

::"नरेश मेहता"::

नरेश मेहता ने अपनी कहानियों में आधुनिकता के नवीन आयामों को उभारने का सफल प्रयास किया है। "नरेश मेहता की कहानियों में निष्ठा, गरिमा और मर्यादा का संतुलित चित्रण किया है। अपने पात्रों को उन्होंने पूरी सहानुभूति दी है, और उन्हें उचित स्थिति में प्रस्तुत किया है। जिसकी "आधार भूमि व्यापक है।" [89] "तथापि" [90] नरेश मेहता की बहुचर्चित कहानी है।

प्रस्तुत कहानी के माध्यम से प्रेम की विभिन्न स्थितियों की व्याख्या की गई है। दो पुरुषों के आकर्षणों के बीच एक ऐसी नारी है जो सक्षम है, फिर भी आंतरिक स्तर पर अक्षम रही है। समर्पित होने की कामना करती है, पर पुरुष की तटस्थता के कारण सन्देह के कगारों पर खड़ी है। कुछ मिसअण्डरस्टैण्डिंग का अनुभव करती हुई आधुनिक नारी स्वाभिमान के अपने अधिकारों से किस प्रकार वंचित रहती है। इसका बहुत सूक्ष्म चित्रण नरेश मेहता की "तथापि" कहानी में हुआ है।

"नरेश मेहता का दृष्टिकोण यों तो आत्म-परक है, किन्तु उनकी सबसे अच्छी कहानियाँ वे हैं जो उन्होंने जीवन का यथार्थ लेकर लिखी हैं। इनमें "किसका बेटा",[91] "दुर्गा"[92] और "वह मर्द थी"[93] महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं। इन कहानियों को पढ़कर मानव जीवन के यथार्थ को पहचानने की उनकी अन्तर्दृष्टि एवं उसके परिवेश को अभिव्यक्ति देने की उनकी व्यापकता का परिचय प्राप्त होता है।"

"दूसरे की पत्नी के पत्र" में नरेश मेहता ने विधुर जीवन की अभिलाषा एवं मैत्री के विश्वास को अभिव्यक्ति दी है। "दुर्गा" "किसका बेटा", "श्रीमती माल्टन" तथा "वह मर्द थी" आदि कहानियाँ सामाजिक सन्दर्भों एवं नवीन यथार्थपरक परिवेश को आधार बनाकर लिखी गयी है।

"निशा जी",[94] "चाँदनी",[95] "अनबीता व्यतीत", और एक इतिश्री" कहानियों में व्यक्ति की मनःस्थितियों और उसकी प्रतिक्रियाओं का सूक्ष्म चित्रण है।

"विषय वस्तु, भाषा, अभिव्यक्ति की दृष्टि से नरेश मेहता एक सफल कहानीकार हैं। अनूठी प्रतीक योजना और भाषा सौष्ठव उनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है।

"अनबीता व्यतीत", "तिष्य रक्षिता की डायरी",[96] "किसका बेटा", "वह मर्द थी", निशाजी" और "एक समर्पित महिला", उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

शेखर जोशी ने अपनी "दाज्यू" कहानी में मानवीय सम्बन्धों को भुलाने वाली सभ्यता पर करारा व्यंग्य किया है। इसमें बिम्ब विचार में और विचार व्यंग्य में बदल जाते हैं।

"दाज्यू" सम्बोधन इस कहानी में एक प्रतीक है जिसके द्वारा पहाड़ी "ब्वॉय" "अपने छूटे हुये गाँव के अतीत, ऊँची पहाड़ियों, नदियों ईजा "माँ"...बाबा (पिता) छोटी बहन। "दाज्यू" (बड़ा भाई) सबको पा लेना चाहता है पर नागरिक सभ्यता उसे इस काल्पनिक प्राप्ति से भी वंचित रखती है।"

"दाज्यू" कहानी नगरीय परिवेश में लुप्त होते हुये मानव मूल्यों की कहानी है।

"शेखर जोशी अपनी कहानियों के अछूते कथ्यों और सरल शिल्प के साथ हिन्दी कहानीकारों में विशिष्ट सम्भावनाओं के लेखक हैं।" शेखर जोशी की कहानियों में सार्थकता है। कहानियों में यथास्थिति की स्वीकृति दिखाई पड़ती है। इनके प्रकाशित कहानी संग्रह हैं: "कोसी का घटवार", "बदबू" आदि। "सती", "बदबू" "दाज्यू" "कोसी का घटवार" इनकी उल्लेखनीय कहानियाँ हैं।

:: "दूधनाथ सिंह" ::

नई कहानी के कहानीकारों में दूधनाथ सिंह का महत्वपूर्ण स्थान है। दूधनाथ सिंह ने अपनी कहानियों में आधुनिक जीवन की विद्रूपताओं और विसंगतियों का वर्णन किया है। उनका दृष्टिकोण प्रायः यथार्थ और हताशा का है, जूझने का नहीं।[10] इनकी कहानियों में आधुनिक जीवन से टकराते हुये

दूधनाथ सिंह ने व्यक्ति के अन्तस का उद्घाटन अपनी कहानियों के माध्यम से किया है। वे शिल्प के प्रति जागरूक हैं, उनका शिल्प तीव्र और अन्तर से निःसृत होता है। दूधनाथ सिंह की कहानियों का प्रमुख स्वर आत्मपरक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति है।

उनके कहानी संग्रह हैं:- "सपाट चेहरे वाला आदमी",[106] "सुखान्त",[107] पहला कदम" आदि। "रक्तपात", "सपाट चेहरे वाला आदमी" "आइसबर्ग, "रीछ", बच्चों तुम उदास क्यों हो, "सुखान्त", "सब ठीक हो जायेगा",[108] "प्रतिशोध", कोरस,[109] "विस्तार", "इन्द्र धनुष", तथा स्वर्गवासी"[110] आदि उनकी प्रमुख कहानियाँ हैं।

:: <u>"कृष्णा सोबती"</u> ::

कृष्णा सोबती वैयक्तिक मूल्यों की कहानी लेखिका है। उनकी कहानियों में प्रेम, वासना, वात्सल्य, जीवन की घुटन, व्यक्ति तथा समाज के परस्पर सम्बन्ध आदि विभिन्न विषयों का वर्णन हुआ है। उनकी कहानियाँ पंजाब के वातावरण, परिवेश का चित्रण प्रस्तुत करती है। कृष्णा सोबती ने आधुनिक बोध को अपनी कहानियों में यथार्थ रूप में अभिव्यक्ति दी है।

"मित्रों मरजानी" उनकी सबसे प्रसिद्ध कहानी है। यह कहानी को परिवारों के जीवन पर आधारित कहानी है। दूसरी अच्छी कहानी "बादलों के घेरे" है। इस कहानी में महानगरीय जीवन के बोझ से पिसे व्यक्तियों का सूक्ष्म अध्ययन है। इस कहानी को पढ़ते हुए कई बार जैसे कोई खुरचता है, दीवार से रंग की परत उतारने या वृक्षों के आपस में टकराने से जैसी चिक-चिक सी एक अजनबीय अनुभव होती है, कुछ वैसी ही बात मन को बार-बार छू जाती है।"[111]

और "पगडंडियाँ" कहानियों में आज के दफ्तर जीवन की परतें खोली गयी हैं। इन कहानियों में परिवर्तित जीवन मूल्यों का चित्रण है। "रिश्ता"[114] कहानी में लेखक का चित्रण है। उनकी "पी०आई०पी०"[115] और "नया चश्मा" व्यंग्य प्रधान कहानियाँ हैं।

गिरिराज की कहानियों का कथ्य और शिल्प दोनों सशक्त हैं। इनके कहानी संग्रह हैं—"नीम के फूल" "चार मोती बेआब" "पेपरवेट",[116] रिश्ता और अन्य कहानियाँ आदि।

:: <u>"ज्ञान रंजन"</u> ::

नई कहानी के कहानीकारों में ज्ञान रंजन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनकी भावधारा वैयक्तिक चेतना पर आधारित है। ज्ञानरंजन की कहानियों में आत्मपरक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति मिलती है।

मूल्य विघटन एवं असन्तोष वर्तमान स्थिति के विरुद्ध विद्रोह की आवाज उनकी कहानियों में दृष्टिगत होती है। "फेन्स के इधर और उधर"[117] उनकी बहुचर्चित कहानी है। यह कहानी यांत्रिक सभ्यता के प्रभाव स्वरूप मानव मूल्यों के विघटन की कहानी है। फेंस केवल पड़ोसी के अलगाव का ही प्रतीक नहीं, मानवीय सम्बन्धों और संवेदनाओं के अलगाव का भी प्रतीक है।

सुरेश सेठ ज्ञानरंजन की कहानियों के सम्बन्ध में लिखते हैं "पिसी पीढ़ी, पराजय, ऊब, तनाव, निराशा, आत्महत्या, भीड़ में अकेलापन, पारिवारिक विघटन, प्रेम और यौन सम्बन्ध का मुर्दा हो जाना और

रवीन्द्र का व्यायक्तिक चेतना के कहानी कार हैं।

रवीन्द्र कालिया वैयक्तिक चेतना के कहानीकार हैं। रवीन्द्र की यह कहानियाँ हिन्दी कहानी के कई स्थापित मूल्यों को तोड़ती हैं। ट्रीटमेन्ट, कथ्य, भाषा, दृष्टि, और कहानियों में उभर उभरने वाले चेहरों के हिसाब से इन कहानियों में अपने पूर्वजों से टूटने का प्रयास है।" [121]

"नौ साल छोटी पत्नी" [122] में रोमांटिक भावबोध को हास्य व्यंग्य के स्तर पर चित्रित किया गया है। "यह कहानी सिद्ध करना चाहती है कि, आधुनिक स्त्री-पुरुष अब उस स्तर को पार कर चुके हैं जहाँ किशोर अवस्था के रोमानी अथवा बचकाने प्रेम को लेकर नीति-अनीति की धारणायें बनती हैं। आधुनिक दृष्टि के कारण स्त्री पुरुष सम्बन्धों में अधिक उदारता, स्पष्टता और तटस्थता आई है। "नौ साल छोटी पत्नी", तथा "गली कूचे" आदि इनके कहानी संग्रह हैं। रवीन्द्र कालिया के शिल्प में आत्मीयता एवं सहजता है।

:: "सुधा अरोड़ा" ::

सुधा अरोड़ा की अधिकांश कहानियाँ नारी के आन्तरिक द्वन्द्व को लेकर लिखी गई हैं। इनकी कहानियों के नारी पात्र परम्पराओं को तोड़ने वाले हैं। वर्तमान भारतीय जीवन के कुरूप को अभिव्यक्ति देने वाली कहानियाँ हैं।

नई कहानियों की लेखिकाओं में सुधा अरोड़ा का महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी कहानियों का शिल्प आकर्षक एवं प्रभाव शाली है। "बगैर तराशे हुए" "एक सैंटीमैंटल डायरी की मौत" "अविवाहित पृष्ठ" "बची हुई चीज" आदि सुधा अरोड़ा की उल्लेखनीय कहानियां हैं।

:: "महेन्द्र भल्ला" ::

महेन्द्र भल्ला की कहानियों में आधुनिक प्रवृत्तियों का समन्वय हुआ है और जीवन के यथार्थ का परिचय भी प्राप्त होता है। उनमें सूक्ष्मता और सांकेतिकता है, "एक पति के नोट्स" महेन्द्र भल्ला की बहुचर्चित कहानी है। प्रस्तुत कहानी में आधुनिक जीवन के नवीन स्वीकृत रूप का यथार्थ चित्रण एवं उसके खोखलेपन के झूठे अंकुश का प्रयास है। महेन्द्र भल्ला की कहानियों में दुर्बोधता नहीं है।

:: "रामदरश मिश्र" ::

जीवन और स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को लेखक ने नये ढंग से चित्रित किया है। लेखक जिस युग में रह रहा है वह युग उद्योग-धंधों, तकनीकी और वैज्ञानिक विकास का युग है, उसमें मनुष्य एक दूसरे से अपरिचित ही नहीं, वरन् अपने से भी अपरिचित है।

जीवन का मशीनीकरण हो गया है। इस दौड़-धूप और आपाधापी से जीवन में एक अकेलापन, तनाव, घुटन, मजबूरी, कुंठा, बिखराव आदि से पूर्ण अनेक स्थितियाँ उत्पन्न हो गई हैं। जीवन के पुराने मूल्य निर्जीव हो

अभिव्यक्ति देने में पर्याप्त सफलता मिली है। शैली की विशेषता अभिव्यक्ति में न होकर अनुभूति में है। उनकी कहानियों में एक विशेष "आईडिया" होता है।

:: "हरि शंकर परसाई" ::

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की विभिन्न असंगतियों को आधार बनाकर इन्होंने व्यंग्यात्मक कहानियाँ लिखी हैं। इनके व्यंग्य जीवन के हर पहलू पर है। हरिशंकर परसाई सशक्त व्यंग्य कहानीकार हैं। ये व्यंग्य बड़े ही कुशल तथा तीखे होते हैं। "भोलाराम का जीव",[134] "पाचक के हीरे तक", "पोस्टरी रूपता", "एक बेकार घाव", "तोरा हीरा हेराइला", "कचरे में", "सड़क बन रही है", भाइयो और बहिनो", "निठल्ले की डायरी", "एक फरिश्ते की कथा", आदि उनकी श्रेष्ठ व्यंग्यात्मक कहानियाँ हैं। राजनीतिक भ्रष्टाचार एवं समस्याओं पर व्यंग्य उनकी कहानियों की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

:: "श्रीकान्त वर्मा" ::

श्रीकान्त वर्मा वैयक्तिक मूल्यों के कहानीकार हैं। झाड़ी, संवाद आदि श्रीकान्त के कहानी संग्रह हैं। उनकी कहानियों में प्रेम का स्वर प्रधान है। इनकी कहानियों में प्रेम कहानियों को मानव स्थितियों की कहानियाँ मानते हैं। "झाड़ी" श्रीकान्त वर्मा की बहुचर्चित कहानी है। उनकी कहानियों में "झाड़ी" का ही दृष्टिकोण प्रमुख रहा है।

:: "राज कुमार" ::

राज कुमार की कहानियों में वैयक्तिक नैतिक मूल्यों की स्थापना हुई है। इनकी प्रमुख कहानियाँ हैं-"तितली", "[illegible]", "[illegible]", "पुनर्मिलन",

"कितना समय", "चोरी", "रेकार्ड", "क्षितिज के उस पार", "आघात" आदि। "एक चेहरा", "कुल्टा बीबी", एवं "समुद्र" इनके कहानी संग्रह हैं।

:: "काशीनाथ सिंह" ::

काशीनाथ सिंह की कहानियों में "आधुनिक जीवन की विडम्बनाओं, अतृप्त यौन भावना, विविध सामाजिक अभिशापों, भीड़ में खोये हुये इन्सान, आधुनिक जीवन की बोरियत आदि का चित्रण है। लेखक सामाजिक जीवन के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है और वह मानवीय मूल्यों की खोज करना चाहता है।"

"सुख का दुख" कहानी में बदलते जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति है। "लोग बिस्तरों पर" इनका कहानी संग्रह है। साठोत्तरी हिन्दी कहानीकारों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। काशी नाथ सिंह आधुनिक भाव बोध को अभिव्यक्ति देने वाले सफल कहानीकार हैं।

:: "प्रयाग शुक्ल" ::

प्रयाग शुक्ल की कहानियों में अवसाद, अकेलेपन और आधुनिक जीवन की विसंगतियों का चित्रण है। "हाथ", "कितना कुछ", "सामान्य भाषा", "अंधेरी आकृतियां और "अन्त" आदि इनकी प्रमुख कहानियां हैं। प्रयाग शुक्ल ने जीवन के विभिन्न पक्षों पर गहराई से महत्वपूर्ण तथ्यों को नवीन परिवेश में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

:: "विजय चौहान" ::

श्रीमती विजय चौहान का साठोत्तरी कहानी लेखिकाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। श्रीमती विजय चौहान के पास रचनात्मक प्रतिभा है।

प्रिंसिपल अपने दफ्तर के सामने खड़ा चिल्ला रहा था "तुम लोग जंगली और जाहिल हो गये हो क्या?"

भोला के मन में कोई कहकहा था, "हाँ मैं जंगली हूँ। अगर मुझे निर्माण न करने दिया गया, तो मैं ध्वंस करूँगा।" उसे याद आया बचपन में जब वह कागज पर अपनी मनपसन्द तस्वीर नहीं बना पाता था तो कागज को नोंच करके फेंक देता था ।

किसी व्यक्ति की इच्छा का हमेशा दमन करने से उसमें ध्वंसात्मक प्रवृत्ति का जन्म हो जाता है। इस कहानी का पात्र भोला इस मानव मूल्य को प्रतिपादित करता है कि, यदि मनुष्य की इच्छायें कुंठित हो गईं तो उसकी मनःस्थिति सृजनात्मक कार्यों से अलग होकर वह ध्वंसात्मक रूप ग्रहण कर लेती है। "अपने अज्ञात रूप की खिड़कियों के शीशे तोड़ने के लिए सबसे पहला पत्थर भोला ने उठाया"।

सदा की नायिका" कहानी में समस्त पुरातन मूल्यों के प्रति एक तीव्र वितृष्णा है।, "सदा की नायिका" त्याग और प्रेम की महामहिम मूर्ति की, आधुनिक सन्दर्भों में, परिणति की कहानी है। "सारी दकियानूसी नैतिकता, कुल-समाज के सारे पुरातन आदर्श-प्रेम-विवाह आदि के प्रति एक विक्षोभ और विद्रोह उसमें है और वह अपने परिचालित रूप में किसी भी ग्रंथि, कुंठा या मानसिक अवसाद की शिकार नहीं है, बल्कि किसी भी अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति में भी [illegible] नहीं है, न भावात्मक रूप से, न किसी और तरह।"[136]

इस कहानी में पुरातन मूल्यों के प्रति प्रतिभा के आक्रोश, क्षोभ और विद्रोह का चित्रण ही प्रमुख है।

नई पीढ़ी के कहानीकारों की श्रृंखला में सतीश "संतोष" का ।जंग। कहानी संग्रह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का ।पागल कुत्ते का मसीहा"। श्रीकान्त वर्मा, ।"झाड़ी" "संवाद"आदि। ममता कालिया ।"छुटकारा"। मानु खोलिया ।एक किरती और। आनन्द प्रकाश जैन ।"आठवीं भाँवर", "छति और हार"। अनीता औलक, विनीता पल्लवी, मनहर चौहान, ।बीस सुबहों के बाद। राम नारायण शुक्ल, गंगा प्रसाद विमल, शानी ।बबूल की छाँव, छोटे घर का विद्रोह। वीरेन्द्र गुप्त, ज्ञान प्रकाश, सुरेन्द्र अरोड़ा, अनन्त प्रेम मधुर, से०रा०यात्री, कमल जोशी, महेन्द्र गोयल, राकेश वत्स, प्रेमचन्द्र गोस्वामी, रमेश कुमार शील, कृष्णा अग्निहोत्री, ।टीन के घेरे। विजेन्द्रनाथ मिश्र, द्विजेश, कुलभूषण, ।पगडंडी और परछाइयाँ" "तलक"। उर्मिला गुप्त, राजकुमार भ्रमर, जगदीश चतुर्वेदी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं और अनेक कहानीकारों के द्वारा निरन्तर कहानी की अविरल धारा का विकास होता जा रहा है।

"सन्दर्भ सूची"

क्रम	पुस्तक	लेखक	पृष्ठ
1, 2, 3, 4-	नई कहानी की भूमिका	कमलेश्वर	21, 21, 25, 25
5-	नयी कहानी दशा दिशा संभावना	श्री सुरेन्द्र	306
6-	ऐंजल मोहन चैरवव	एक इन्टरव्यू	
7-	हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास	डा० लक्ष्मी नारायण लाल	332
8-	स्वातन्त्र्योत्तर कथा साहित्य	सीता राम शर्मा	56
9-	नयी कहानी की भूमिका	कमलेश्वर	91
10-	हिन्दी कहानी पहचान और परख	डा० इन्द्रनाथ मदान	165
11-	एक दुनिया समानान्तर	राजेन्द्र यादव	26
12-	द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा० लक्ष्मी नारायण वार्ष्णेय	181
13-	मेरी प्रिय कहानियाँ	कमलेश्वर	6
14-	कहानीकार कमलेश्वर संदर्भ और प्रकृति	सूर्य नारायण मा० चतुर्वे	18
15-	द्वितीय हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय	1, 2
16-	हिन्दी कहानी अपनी जुबानी	डा० इन्द्र नाथ मदान	121, 122
17-	" "	" "	122
18-	मेरी प्रिय कहानियाँ	कमलेश्वर	140
19-	श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ	डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय	131
20-	मेरी प्रिय कहानियाँ	कमलेश्वर	40
21-	" "	"	6
22-	" "	"	79
23-	" "	"	241
24-	" "	"	64
25-	द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय	178

100- एक दुनिया समानान्तर	राजेन्द्र यादव	359
101- नई कहानी पहला अंक, जून 1977	सुरेश सेठ	258
102- समकालीन कहानी का रचना विधान-	डा० गंगा प्रसाद विमल	30
103- सपाट चेहरे वाला आदमी	दूध नाथ सिंह	116
104- " "	"	9
105- " "	"	64
106- " "	"	143
107- सुखान्त	"	139
108- पहला कदम	"	78
109- " "	"	68
110- " "	"	50
111- आलोचना अक्टूबर-दिसम्बर	1968	106
112- एक दुनिया समानान्तर	राजेन्द्र यादव	122
113- पेपर वेट	गिरिराज किशोर	9
114- रिश्ता और अन्य कहानियाँ	"	145
115- " "	"	89
116- पेपर वेट	"	104
117- मेरी प्रिय कहानियाँ	ज्ञान रंजन	61
118- नई कहानी पहला अंक	सुरेश सेठ जून 1977	256
119- मेरी प्रिय कहानियाँ	ज्ञान रंजन	36
120- " "	" "	69
121- नई कहानी पहला अंक	जून 1977	247
122- नौ साल छोटी पत्नी	रवीन्द्र कालिया	68
123- बेला मर गई	राम दरश मिश्र	48
124- ठहरा हुआ समय	राम दरश मिश्र	103

:: "अध्याय — "पाँच" ::

कहानियों का मानव मूल्यों की दृष्टि से अनुशीलन

।खण्ड-एक।

"कहानियों का मानवमूल्य परक अनुशीलन"

अब तक जिन कहानीकारों की रचनात्मकता का उल्लेख किया जा चुका है। उनके आधार पर यह निष्कर्षित होता है कि, वर्तमान युग में निरन्तर मूल्यों की स्थिति में परिवर्तन होता जा रहा है। प्राचीन मूल्य टूटते जा रहे हैं। इसलिये कि, समाज में उनकी अर्थवत्ता, बेमानी होती जा रही है। समाज में भी निरन्तर क्रम से परिवर्तन हो रहा है। आज जीवन की गति वैज्ञानिक उपलब्धियों से जुड़ जाने के कारण बहुत ही तीव्र हो गई है। इस गत्यात्मकता को पकड़ने के लिये कहानीकार समाज की नब्ज पर हाथ रखते हुये तटस्थता की मुद्रा में निरीक्षण कर रहा है, और जैसे ही उसे कहीं कुछ असंगत दृष्टिगत होता है, वह अपनी लेखनी के माध्यम से उसे अभिव्यक्ति दे रहा है। उदाहरणार्थ रिश्ते में स्त्री और पुरुष की कोटियों को लें, पुराने जमाने से प्रेमी प्रेमिका, पति पत्नी, भाई बहन, पिता पुत्री अथवा पुत्रवधू, माता पुत्र अथवा दामाद, चाचा-भतीजी, चाची-भतीजा, मामा भान्जी, मामी भान्जा, देवर भाभी, जीजा साली जैसे विविध सम्बन्ध भारतीय समाज में अत्यन्त पुनीत थे। इन सम्बन्धों का रूप आदर्श पूर्ण था, किन्तु वर्तमान समय में लोगों ने आदर्शों को समाप्त कर दिया है, और केवल आदर्शों का मुखौटा लगाकर सम्बन्धों में परिवर्तन कर लिये हैं।

परिणाम यह हुआ है कि, सारे रिश्ते एक बिन्दु पर आकर केवल स्त्री और पुरुष में बंट गये हैं, या बंटते जा रहे हैं। कहने को हम यह सकते हैं कि, यह स्थिति पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क का परिणाम है। लेकिन वास्तविकता यह है कि, स्त्री हो या पुरुष उसकी मानसिकता में बदलाव आ गया है, आता जा रहा है। उपयुक्त और अनुकूल अवसर मिलते ही सारे पारिवारिक सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं और स्त्री स्त्री रह

जाती है और पुरुष पुरुष, कुछ वैसे ही जैसे आग के सम्पर्क में आते ही जमा हुआ घी एकदम पिघल जाता है। व्यक्ति सारे सम्बन्धों को ताक में रखकर फ्रायडी काम सिद्धान्त को व्यवहार में बदल लेता है। इस प्रकार भारतीय परिवेश में स्त्री पुरुष सम्बन्धों की स्थिति हाथी के दाँतों जैसी बन गई है खाने वाले दूसरे और दिखाने वाले दूसरे ।

ये तो नर नारी के रिश्तों की बात हुई सामाजिक स्तर पर इतना चारित्रिक पतन हो चुका है कि, सर्वत्र भ्रष्टाचार का बोलबाला है। आज भ्रष्टाचार ही शिष्टाचार बन गया है। ये बात जीवन के हर क्षेत्र में लक्षणीय है। व्यक्ति घर में बैठा होता है। कहला दिया जाता है कि, अमुक जी घर में नहीं हैं। इस प्रकार सत्य झूठ के रूप में ठूँठ में बदल गया है। आज किसी को बेईमान कह दो तो वह आपको मार बैठेगा । इसलिये हम कहते हैं कि आप तो सबसे बड़े ईमानदार है। वह व्यक्ति आपके व्यंग को समझता हुआ भी मुस्कराता है दो कारणों से या तो वह कहने वाले को मूर्ख समझता है या फिर व्यंग को तिलमिलाता हुआ भी ग्रहण करने के लिये विवश होता है। सारे संसार में आतंकवाद का बोलबाला है, कारण सिद्धान्त उजागर है। पशुशक्ति के माध्यम से व्यक्ति बिना कुछ बोये सब कुछ काट लेने की स्थिति में हो जाता है। धन हो, कामिनी हो अथवा किसी अन्य प्रकार की भौतिक उपलब्धि हो, आतंक के सहारे तुरन्त उपलब्ध हो जाती है।

आज तो सत्ता में परिवर्तन भी आतंकवाद के माध्यम से सम्भव हो रहा है । आतंकवाद के परिणाम स्वरूप हर व्यक्ति संत्रास की मनः स्थिति को जी रहा है। जयशंकर प्रसाद ने कामायनी के इड़ा सर्ग में इसे स्पष्ट रूप में लिखा है:-

[illegible] सी को [illegible] देता,
मन की अभिलाषा में विलीन ।
दुःखी [illegible] को बाँट रहा,
[illegible] की [illegible] अधिक दीन ।।

कदाचित संभव नहीं । उसे केवल बौद्धिकता के माध्यम से अनुभूति से समझा जा सकता है।

नई कहानी में आम आदमी की समस्याओं को नितान्त पैने और धारदार ढंग से अभिव्यक्ति दी जा रही है। साध्य तथा साधन जब दोनों ही श्रेष्ठता के मानदण्ड को सामने रखकर निर्मित किये जायेंगे तभी वास्तविक मानव मूल्य की सृष्टि सम्भव है। यदि इनमें से एक भी गलत होगा तो मूल्य का निर्माण सम्भव नहीं । वैसे जिन कहानियों को हमने अपने अनुशीलन में लिया है। उनमें मूल्यों की झलक मिल सकती है। किन्तु सामान्यतया मूल्यों का समाज निर्मित भवन अब मात्र खण्डहर बन कर रह गया है और मूल्य और मूल्यहीनता के बीच अनगिनत स्थितियाँ दिखाई देती हैं। जिसे मूल्यों की संक्रमण की स्थिति कहा जा सकता है। उनके नाम देना कदाचित दुष्कर है । ठीक वैसे ही जैसे कि, नीले हरे, पीले लाल रंग तो हम समझते हैं लेकिन उनके हल्केपन तथा गहराई के बीच कितनी स्थितियाँ बन जाती हैं और उन्हें हम नाम नहीं दे पाते हैं।

मानव मूल्य में मूल्य और मूल्यहीनता के बीच की सामाजिक प्रक्रिया का विवेचन इस अध्याय के अन्तर्गत थोड़ा बहुत व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। थोड़ा बहुत इसलिए कह रही हूँ कि, मनुष्य अपने आप में अपूर्ण है और पूरे पुरुषार्थ के बावजूद सम्पूर्ण सत्य उसकी मुट्ठी में कदाचित समा नहीं सकता । आज का आर्थिक संकट पति-पत्नी, भाई-बहन, तथा अन्य अनेक पारिवारिक सम्बन्धों, सामाजिक दायित्व बोध की अनेक समस्याओं के प्रति उत्पन्न स्वार्थ, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, सामाजिक उच्छृंखलता, ईर्ष्या, कुण्ठा, आत्मभिक्षा को जन्म दे रही है। दूसरी ओर व्यक्ति अपनी सीमित आर्थिक स्थिति के कारण अपनी विवशताओं से टकरा कर कुण्ठाग्रस्त आत्महीन हो जाता है और अपनी महत्वाकांक्षा के वशीभूत हो अनैतिक भ्रष्टाचार और स्वार्थी हो जाता है या फिर आर्थिक वैषम्य से टूट कर बिखर जाता है।

स्वतन्त्रता के पश्चात कतिपय युग में घटित घटनाओं ने भारतीय जीवन दर्शन को एक नवीन मोड़ दिया । भारतीय मानव चेतना ने आजादी की प्रसन्नता के साथ ही विभाजन का अभिशाप भी झेला है। धार्मिकता, स्वार्थ भ्रष्टाचार और असन्तोष की व्यापकता के साथ ही आस्थाओं को टूटते बिखरते और सम्बन्धों को छिटकते देखा है। इन पीड़ाओं के दंशन से उसकी आत्मा झनझना उठी है और आज देखते हैं कि, देश की सम्पूर्ण मानसिकता में तनाव, आतंक और दिशाहीनता समा गई है।

इन घटनाओं से प्रभावित रचनाकारों ने जहाँ एक ओर कुछ असत्य प्रवृत्तियों और कुण्ठावादी वैयक्तिक जीवन दर्शन को प्रस्तुत किया, वहीं दूसरी ओर कतिपय स्वस्थ जीवन मूल्यों को भी उजागर किया । जिनका आधार सामान्य मानव मन की अपने वर्तमान और भविष्य जीवन के प्रति आस्था और सामाजिक विकास के प्रति सहज और अटूट निष्ठा का प्रतिपादन किया । औद्योगिक विकास एवं यांत्रिक जीवन ने हमारे सामाजिक मूल्यों में एक विद्रोह युक्त नवीनता को विकसित कर सारी परम्पराओं और आस्थाओं के सामने प्रश्न चिन्ह लगा दिये हैं।

"मानव मूल्य" समाज के जीवन में सामाजिक धार्मिक और नैतिक पृष्ठभूमि के लिये एक ऐसी वैचारिक इकाई, जिसका विकास व्यक्ति से समाज की ओर होता है, उसके साथ हमारा मानसिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, जिसके आधार पर हम औचित्य का निर्माण करते हैं... मानव मूल्य जीवन के कुछ ऐसे सत्य हैं, जो समाज द्वारा मान्यता प्राप्त कर अलिखित रूप से हमारे आचरण का नियमन करते हैं। हमारे आचरणों और व्यवहारों का मूल्यांकन ही मूल्य नामक धारणा के रूप में स्थापित होता है। ये धारणाएँ ही हमारे व्यवहारों का निर्देशन करती हैं और आदर्शों की

स्थापना करती हैं जिनके आधार पर मनुष्य अच्छे-बुरे और सही-गलत की पहचान और घोषणा करता है। इसीलिये जीवन की परिस्थितियों में परिवर्तन होता है। परिवर्तन चक्र के साथ-साथ मूल्य चक्र भी घूमता है।[1] सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ मूल्यों में परिवर्तन होना कोई नई बात नहीं है, क्योंकि मूल्य समाज में ही बनते और बिगड़ते हैं। समसामयिक युग के रचनाकारों ने व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध फिर से स्थापित करने की चेष्टा की। वैज्ञानिक-तकनीकी प्रगति, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था, जीवन में मशीनीकरण, अत्यधिक औद्योगीकरण के फलस्वरूप भौतिक जगत की यह दिशा मूल्यहीनता में बदलती जा रही है। आर्थिक एवं सामाजिक दबावों के कारण सारे पुराने मूल्य नकारे जा रहे हैं।

मन्नू भण्डारी "अकेली", उषा प्रियम्वदा "वापसी", "जिन्दगी और गुलाब के फूल", सुधा अरोड़ा "बगैर तराशे हुए" कृष्णा [illegible] "[illegible]" "[illegible] और [illegible]" दीप्ति खण्डेलवाल "आधुनिक" "कोशिश" आदि कहानियाँ जीवन मूल्यों को उजागर करती हैं।

मूल्यों में परिवर्तन और विरोध हमेशा होता रहा है। जब युग परिवर्तन की प्रक्रिया मन्द रहती है तो पुरानी और नई पीढ़ियों की मान्यताओं, विचारों तथा जीवन मूल्यों में अधिक अन्तर नहीं उत्पन्न हो पाता, परन्तु जब परिवर्तन की गति तीव्र और सामाजिक घटनाएँ जटिल रहती हैं, तब यह अन्तर इतना अधिक बढ़ जाता है कि, दोनों पीढ़ियों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

आजादी के आसपास हुई घटनाओं ने मनुष्य को एक ऐसे मोड़ पर ला खड़ा किया जिसके एक ओर अपनी पीछे की ओर प्राचीन मान्यताएँ और आदर्शवादी जीवन-मूल्य हैं, तो दूसरी ओर यथार्थ का अत्यन्त विषम

और तीखा रूप दिखाई दे रहा था। नई पीढ़ी उस यथार्थ को गहरी अनुभूति से से अभिभूत हो रही थी और पुरानी पीढ़ी यानी पिता उसके नये रूप को देख कर आँखें बन्द किये रहने का प्रयत्न करता हुआ परम्परागत मान्यताओं से ही चिपके थे ....।

बदलते हुये जीवन मूल्यों और पीढ़ियों के संघर्ष की स्थिति के साथ आज के बदले हुये परिवेश में स्त्री-पुरुष का वह सम्बन्ध भी समाप्त हो चुका है जो पहले था। आधुनिक और नये परिवेश सन्दर्भों में प्रायः आज का स्त्री-पुरुष आपस में समायोग स्थापित नहीं कर सका है और दोनों के जीवन में बड़ा अन्तर्विरोध उत्पन्न हो गया है।

इस स्थिति को पूर्ण यथार्थता के साथ मन्नू भण्डारी [2], दीप्ति खण्डेलवाल [3], ममता कालिया [4], मृदुला गर्ग [5], कृष्णा अग्निहोत्री [6], ने अपनी कहानियों में उजागर किया है।

स्वातन्त्र्योत्तर काल के कथाकारों ने जीवन मूल्यों को मानवीय स्वतन्त्रता के अनुरूप ही ग्रहण किया है। बदलते मूल्यों की आवश्यकता यद्यपि बदलते भारतीय परिवेश के कारण भी हो सकती है, क्योंकि वर्तमान जीवन पुरानी समाज-व्यवस्था से नयी समाज व्यवस्था में प्रवेश करता है।

आज हम परिवर्तन प्रक्रिया के काल से गुजर रहे हैं। हम अपनी पुरानी समाज व्यवस्था के परिवर्तन के साथ नये जीवन मूल्यों में अपनी सार्थकता खोते जा रहे हैं। लेकिन यही जीवन मूल्य काल-निरपेक्ष मानव मूल्य बनते नजर आ रहे हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण और वैज्ञानिक सभ्यता के विकास के फलस्वरूप मानवीय जीवन एवं सम्बन्धों में परिवर्तन आये। विज्ञान ने सिद्ध किया कि, सृष्टि अपने नियमों से चलती है। इस सृष्टि का विकास अपने नियमों से होता है। मनुष्य उसी विकास की परम्परा में एक है, नैतिक मूल्यों का कोई निश्चित पारलौकिक स्रोत नहीं है ।[7]

प्राचीन मान्यताओं के टूटने और नवीन मान्यताओं की रूप रेखा अस्पष्ट रूप से सामने न आने के कारण जीवन में हर नैतिक मूल्य पर प्रश्न चिन्ह लगता जा रहा है। ये मूल्य पारिवारिक सन्दर्भ को लिये हुये एक ऐसे बोझ के लिये छटपटा रहा है। उसके समझ में नहीं आता वह किस प्रकार से अपने व्यक्तित्व की सार्थकता प्राप्त करे। वर्तमान में अपने को विशिष्ट पाकर वह भविष्य के प्रति चिन्तातुर है।[8] वह व्यक्ति विकृत सा ही दृष्टिगोचर होता है, किन्तु यही उसका सच्चा रूप है।

वास्तव में आज का व्यक्ति पग-पग पर आने वाले संकटों और खोखले मूल्यों के बीच व्याकुल हो छटपटाने लगा है। नैतिक मूल्यों के प्रति आज का व्यक्ति उदासीन हो चुका । वैज्ञानिक प्रगति ने धर्म व जाति को बेकार सिद्ध कर दिया है, जन्म मृत्यु के रहस्य अब वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में उद्घाटित किये जा रहे हैं। आधुनिक युग बोध में धार्मिक व्यवस्था लगभग समाप्त हो चुकी है ।

यही हेतु, यदि जाति जैसी सामुदायिक संस्थाओं का पारम्परिक महत्व कभी का समाप्त हो गया है और उसकी जगह नये नैतिक मूल्य स्थापित हो गये । परिवार मानवीय सम्बन्धों की एक ऐसी महत्वपूर्ण इकाई है, जहाँ व्यक्ति और उससे सम्बन्धित व्यक्तियों के आर्थिक, मानसिक एवं शारीरिक सम्बन्ध परस्पर जुड़े हुये होते हैं, और इन्हीं मानवीय सम्बन्धों के आधार

पर समाज तथा व्यक्ति के सारे नैतिक मूल्यों को देखा जाता है।

तत्कालीन युग में संयुक्त परिवार की परम्परा समाप्त हो चुकी है। आज परिवारगत भावना सेवा, श्रद्धा तथा त्याग आदि तत्व समाप्त हो चुके हैं। परिवार की यह कड़ी बाप-बेटे, माँ-बेटे, तथा पति-पत्नी तक ही टूट कर रुकी नहीं है, बल्कि परिवार के कई सदस्यों तक टूटने की यह प्रक्रिया जारी है।[10]

आज एक पिता को पुत्र चाहिये इसलिए वह वृद्धावस्था में उसकी सेवा कर सके, इसीलिये नहीं कि, वह अपना परलोक सुधार सके। आज व्यक्ति को परलोक नहीं, बल्कि इहलोक की चिन्ता है। पुत्र पिता को रखे या घर से निकल जाने को विवश कर दे, यह उसकी इच्छा पर निर्भर करता है क्योंकि वृद्धावस्था की कोई सुरक्षा आज के व्यक्ति के पास नहीं है।[11]

पति को पत्नी इसलिये चाहिये कि, वह आज के युग में पति के लिये सभी सुख साधन जुटा सके और परिवार की आर्थिक व्यवस्था में भी उचित रूप से सहयोग दे सके। मानो मैं तुम्हारे साथ तुम्हारा सब कुछ चाहता हूँ। एक अच्छी जिन्दगी भी जीना चाहता हूँ और एक अच्छी जिन्दगी जीने के लिये पैसा जरूरी है। सिर्फ मेरी तनख्वाह से क्या होगा ? हम ठीक से जी न सकेंगे।[12]

प्रेमी-प्रेमिका का सम्बन्ध अर्थ पर आधारित है। क्योंकि पैसा है तो सब रिश्ते हैं। पैसा नहीं तो अपने भी अजनबी हो जाते हैं।[13] वस्तुतः किसी भी स्वस्थ समाज में मूल्यों के टूटने की प्रक्रिया एक बिन्दु तक आकर फिर से जुड़ने की ओर झुकती है।[14] आज स्त्री-पुरुष दोनों स्वतन्त्र हैं। आज दोनों पर प्राचीन परम्परा जैसी शाश्वत रिश्ते, धर्म आदि का नैतिक बन्धन नहीं है। पति पत्नी के रहते पर भी बाहर प्रेमिका या सैनी के साथ समय व्यतीत करता है,[15] तो दूसरी ओर पति के रहते पत्नी प्रेमी की तलाश

राजेन्द्र यादव "टूटना" शांती, "एक नाव के यात्री, कमलेश्वर "राजा निरबंसिया" रवीन्द्र कालिया "नौ साल छोटी पत्नी" एवं लाल "रक्षा कवच" "रेत" अमर कान्त की "निर्वासित" आदि अधिकांश कहानियों में मानवीय मूल्यों के विघटन की अभिव्यक्ति की है।

जहाँ स्त्री पुरुष सम्बन्ध बदले वहीं माता पिता और सन्तान के सम्बन्धों में भी परिवर्तन हुआ है। आज पुत्र माता पिता को केवल अपनी सुविधा के अनुसार घर में रखना चाहता है। "माँ" तो घर में रह सकती है क्योंकि माँ घर का काम और बच्चे संभाल सकती है। लेकिन पिता का कौन संभाल सकता है।[18] उषा प्रियम्वदा , मृदुला गर्ग- लौटना और लौटना, दीप्ति खण्डेलवाल "सलीब पर" उर्मिला अग्रवाल "रबर बैंड" ज्ञानी की "एक नाव के यात्री" कहानियाँ इस सत्य को उजागर करती हैं।

प्रेमी-प्रेमिका सम्बन्ध मानवीय सम्बन्धों का ही एक आयाम है। जहाँ सारे सम्बन्धों में बदलाव आया, वहीं प्रेमी प्रेमिका के सम्बन्धों में भी बदलाव आया। अत्यधिक व्यस्तता और पश्चिम प्रभाव में सारे सम्बन्धों की नींव आर्थिक स्थिति और वर्तमान में उसकी उपयोगिता में है। "बड़ी सड़क" मन्नू भण्डारी, "आदर्श" दीप्ति खण्डेलवाल। "यदि ऐसा रहा" उषा प्रियम्वदा। "विराम" प्रदीप सिंह। आदि कहानियों में प्रेमी प्रेमिका के बदले परिवेश के यथार्थ का चित्रण मिलता है।

व्यक्ति सम्बन्धों में विघटन की प्रक्रिया स्वातन्त्र्योत्तर काल की मुख्य प्रवृत्ति रही है। पारिवारिक सम्बन्धों में तनाव, बदलाव, टूटन, अनास्था आदि की स्थितियाँ सामने उभर कर आयी हैं। स्वातन्त्र्योत्तर काल में भारतीय समाज का परिवार विघटन की ओर प्रवृत्त हुआ है।

स्वतन्त्रता के बाद परिवर्तित जीवन मूल्यों के कारण उन्नतशील पीढ़ियों का ज्ञान द्वन्द्व तथा स्थापित नैतिक मापदण्डों में परिवर्तन की स्थिति तथा पारम्परिक परिवार संस्था में विघटन की प्रक्रिया शुरू हो गई है।[19] पारिवारिक विघटन संयुक्त परिवार, पति-पत्नी, पिता-पुत्र, पिता-पुत्री, भाई-बहन का आपसी ढाँचा और उनके आपसी सम्बन्धों में विघटन की प्रक्रिया दिखाई देती है।

आज घर अन्दर ही अन्दर खण्डित हो रहा है। इन घर चलाने वालों की अत्यान्तिक प्रभुसत्ता और आतंक का परिणाम है। बेटा पिता के प्रति कोई अपनत्व की अनुभूति नहीं कर पाता उसे लगता है पिता क्यों नहीं मेरा पीछा छोड़ते, कल से घर में आगे ताला डालूँगा और पीछे के रास्ते से आया जाया करूँगा।[20]

संयुक्त परिवार में नव दाम्पत्य भी कुण्ठित हो रहा है। पति-पत्नी को मिलने के सहज अधिकार से वंचित रखा जा रहा है। दिन की तो बात छोड़िये रात में भी उन्हें पति-पत्नी। आपस में मिलने का मौका नहीं मिल पाता। आपस में मिलने का मौका मिले कभी सास छोटी ननद को सोने के लिये भेज देती है, तो कभी देवर उसी कमरे में घुस कर पैताने पड़ जाता, तो कभी रात बिरात सास माचिस मंगाकर उसके पास सुपारी की डिबिया खोजने लगती।[21]

जीवन की ये स्थितियाँ नई पीढ़ी में विक्षिप्त चेतना, आक्रोश की प्रबल प्रतिक्रिया उत्पन्न कर पारिवारिक विघटन की मनोभूमि तैयार करती हैं।

परिवार के स्वरूप को तोड़ने वाला प्रमुख कारण स्त्री स्वतन्त्रता रहा है। स्त्री स्वतन्त्रता के इस स्वरूप ने संयुक्त परिवार की परम्परागत भारतीय मान्यता को तोड़ा। धीरे-धीरे पश्चिम देशों की भाँति भारत में भी

संयुक्त परिवार समाप्त हुये और उनके स्थान पर परिवारों का स्वरूप व्यक्तिगत रुचियों के आधार पर निर्मित होने लगा।[22] इसका मुख्य कारण आर्थिक स्थिति है। आर्थिकता के कारण भी परिवारों में विघटन की प्रक्रिया दिखाई देती है। राजेन्द्र यादव "टूटना", भीष्म साहनी "चीफ की दावत", कानी "एक नाव के यात्री", मृदुला गर्ग "अलग अलग कमरे", उषा प्रियम्वदा "वापसी" कृष्णा अग्निहोत्री "टीन के घेरे" इन कथाकारों ने पारिवारिक विघटन और सम्बन्धों के परिवर्तन को प्रस्तुत कहानियों में चित्रित किया है।

माँ बहन का प्यार तभी मिलता है जब लड़का कमाऊ हो, वरना निकम्मा लड़का अवसाद के क्षणों में किसी कमरे में जाकर भूखा पड़ा रहे तो कोई पूछने भी नहीं जायेगा ...।[23]

कृष्णा अग्निहोत्री "मातम", दीप्ति खण्डेलवाल "आधुनिक अभिशाप" मृदुला गर्ग "कायदा", "लौटना और लौटना", कृष्णा सोबती "मित्रो-मरजानी" मन्नू भण्डारी "तीसरा आदमी", "ऊँचाई", कृष्ण बल्देव वैद की "त्रिकोण" आदि कहानियों में पारिवारिक विघटन एवं पारिवारिक सम्बन्धों के बदलते स्वरूप का चित्रण किया है।

स्वातन्त्र्योत्तर युग में भारतीय समाज में पति-पत्नी सम्बन्धों में एक विशेष परिवर्तन देखने को मिलता है। परिवारजन्य मूल्यों की संक्रान्ति अवस्था से गुजरता हुआ भारतीय परिवार पति-पत्नी सम्बन्धों के आपसी लगाव को बड़ी तीव्रता से महसूस कर रहा है। "एक जमाना था जब किसी पिता के पुत्र के साथ किसी पिता की पुत्री एक झटके के साथ जुड़ जाती थी।[24]

स्त्री पुरुष का एक साथ रहना प्राकृतिक अनिवार्यता है। स्त्री-पुरुष का साथ रहना एक सत्य है। वर्तमान युग में पति-पत्नी किस तरह एक साथ रहना

चाहते हैं, यह न आज की आधुनिक नारी समझ सकी है, और न पुरुष ही । कृष्ण बलदेव वैद "त्रिकोण", मन्नू भण्डारी "तीसरा आदमी, कृष्णा अग्निहोत्री की "कलियारे" संग्रह की अधिकांश कहानियाँ स्त्री पुरुषों के इस स्वरूप को उजागर करती है।

आज के स्त्री पुरुष वैवाहिक जीवन व्यतीत करते हुये भी जीवन में किसी तीसरे की आवश्यकता महसूस करते हैं। कृष्ण बलदेव वैद, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियम्वदा, मृदुला गर्ग, दीप्ति खण्डेलवाल की पत्नियाँ पति के रहते दूसरे पुरुष से सम्बन्ध स्थापित करती हैं, तो पुरुष घर में पत्नी के रहते बाहर स्त्रैनी या प्रेमिका के साथ समय व्यतीत करते हैं। आधुनिक स्त्री अपने को बनाये रखने के लिये वैवाहिक मूल्यों की परवाह नहीं करती, वह उसे तोड़ती चली जाती है। मन्नू भण्डारी की "बन्द दराजों के साथ" कहानी की मंजरी पहले "पति" से अनबन एवं सन्देह के कारण दूसरे पुरुष के पास चली जाती है।[25]

मन्नू भण्डारी की दूसरी कहानी "ऊँचाई" की नायिका पति के मित्र के साथ सम्भोग कर आती है। पति इस बात को देखता नहीं सुनता है। पत्नी शिवानी पति से कहती है वैवाहिक बन्धनों की भित्ती इतनी कच्ची नहीं कि, शरीर सम्बन्धों को लेकर टूट जाये।[26] कृष्ण बलदेव वैद की "त्रिकोण" कहानी की नायिका पति के मित्र के साथ सम्भोग करती है और पति उसे देख लेता है लेकिन न पति के मन में अवसाद है और न पत्नी को अपराध बोध की प्रतीति। नये कहानी कारों ने पति-पत्नी के सम्बन्धों को एक नया रूप प्रदान किया है।

वर्तमान युग में पारिवारिक सम्बन्धों के सारे नैतिक मूल्यों में परिवर्तन हुआ। नये कहानीकारों ने बदली हुई परिस्थितियाँ और बदली हुई मानसिक

चेतना के स्तर पर नवीन मूल्यों की स्थापना का प्रयास किया ।

आधुनिक युग में पारिवारिक सम्बन्धों के सारे नैतिकमूल्यों में परिवर्तन हुआ । रचनाकारों ने बदली हुई परिस्थितियों और बदली हुई मानसिक चेतना के स्तर पर नवीन मूल्यों की स्थापना का प्रयास किया । महीप सिंह की "कील" कहानी पिता-पुत्री के सम्बन्धों के टूटन की स्थिति व्याख्यित करती है। राजेन्द्र यादव की "जहाँ लक्ष्मी कैद है" में लाला रूपाराम "पिता" अपनी "पुत्री" लक्ष्मी का विवाह इसलिये नहीं करते कि, कहीं लक्ष्मी "धन" वास्तव में उनके घर से न चली जाय । सिम्मी हर्षिता की "पशुभोग" कहानी में बेटी अपने पिता के प्यार से मुक्ति पाना चाहती है और पिता को डर है कि, लड़की की शादी के बाद वह अकेला रह जायगा ।

वर्तमान समय में सारे वांछित रिश्ते समाप्त हो चुके हैं। सारी नैतिकता खत्म हो चुकी है। पिता-पुत्री का वह सम्बन्ध समाप्त हो चुका है। आज नारी माता, पुत्री, बहन, भाभी नहीं रही केवल पुरुष की नजर में केवल स्त्री है। रात में जब पिता को कोई स्त्री नहीं मिलती तो वह अपनी पुत्री को मिटाता है और बेटी अपने परिवार को बचाने के लिये पिता के प्रति समर्पित हो जाती है "क्या करूँ" ? पिता को शराब के बाद कुछ पल के लिये औरत का शरीर छूने भर की जरूरत पड़ती है.....जब कोई औरत उन्हें सौंपने को नहीं मिलती है......मेरे साथ पल इस तरह से गुजारते हैं।[26]

तो दूसरी ओर पिता बेटी की शादी इसलिये नहीं करना चाहता है कि, कमाऊ बेटी चली जायेगी तो परिवार का खर्च कैसे चलेगा । मानो टी तथा श्यामली की शादी पिता इसलिये नहीं करना चाहते । मानो और श्यामली अन्दर से टूट चुकी है। दोनों शादी करना तो चाहती हैं, लेकिन उन्हें आर्थिकता रोक देती है। यदि शादी कर लेंगी तो घर का खर्च कैसे

चलेगा । माता पिता बेटी की भावनाओं से अन्जान बन उसे, शादी करने से रोकते हैं....पता नहीं इस देवी सी लड़की का दिमाग कैसे खराब हो गया....अरे सारे शहर में तो इसके कैरेक्टर की चर्चा है।[28]

स्वातन्त्र्योत्तर काल में भाई बहन के प्यार आदि की बातें अब बेतुकी लगती हैं। भाई-बहन के सम्बन्धों में अब परिवर्तन आ गया है। इस परिवर्तन का मुख्य कारण अर्थोपार्जन है। आज सारे सम्बन्ध आर्थिकता पर निर्भर है। बहन की नौकरी लगते ही बेकार भाई की जगह बहन वृन्दा ले लेती है। जहाँ भाई की इच्छा होती थी वहाँ अब वृन्दा की होने लगती है। जब वृन्दा कमाती नहीं थी, तब भाई सुबोध माँ और बहन के प्यार का पात्र था । अब जब वे बेकार है तो घृणा का पात्र बन गया है।

अब भाई-बहन, माँ बेटे के वह धीमे धीमे सम्बन्ध भी समाप्त हो चुके हैं, जो पहले थे। वृन्दा की नौकरी से पूर्व सुबोध का अपना अलग ही संसार था। अलग कमरा था, सामान था, माँ थी, बहन थी, और साथ ही प्रेमिका भी जिसके साथ उसकी सगाई हो चुकी होती है। सुबोध की सारी चीजों पर अब वृन्दा का अधिकार हो गया है।

नौकरी न लगने के कारण सुबोध की स्थिति नौकरों से भी ज्यादा खराब हो जाती है। जिस काम को पहले घर के अन्य सदस्य करते थे, वही काम अब सुबोध को करने पड़ते हैं। यहाँ तक कि, वृन्दा की सहेली को उसके घर भी छोड़ने जाना पड़ता है। वही सहेली जो कभी सुबोध की प्रेयसी व मंगेतर थी। उसने भी साथ छोड़ दिया । यह स्थिति यहाँ तक आती है, अवसाद के क्षणों में उसे खुद ही चाय बनाना पड़ता है और घर में उसके लिये किसी को चिन्ता नहीं।[29]

संयुक्त परिवार परम्परा टूटने से व्यक्ति अनेक स्तरों पर अलग हो गया है। समाज का स्वप्न देखने वाला मानव आज इन लघु परिवारों में भी संतोष और आत्मीयता पाने में असमर्थ है। कृष्णा अग्निहोत्री "टीन के घेरे"[30], उषा प्रियम्वदा "वापसी" आज का युवा वर्ग अपनी पत्नी और बच्चों को ही अपने परिवार की परिधि में समझता है। पिता और वह भी रिटायर.. क्या आवश्यकता है उन्हें साथ रखने की हाँ पुत्र माँ को साथ रखने को तैयार है, क्योंकि वह रहेगी तो घर गृहस्थी का काम देख लेगी। नौकर चोरी नहीं कर पायेगा। रात में पार्टी में जाने पर बच्चों को निश्चिन्त होकर घर पर छोड़ा जा सकता है। पर पिता को घर में रखना असम्भव है।

मणिका मोहिनी की कहानी "दूरियाँ" के पिता पुत्र को बचपन में पुत्र के अनैतिक कार्यों को लेकर बुरा भला कहते हैं। युवा होने पर वही पुत्र पिता से अलग हो जाता है। ममत्व के कारण पिता कभी कभी पुत्र के घर मिलने चले जाया करते हैं, पर पिता का आना पुत्र को बुरा लगता है। उनके आने से पुत्र का चैन हराम होता है। पिता से बचने के लिये वह घर के बाहर ताला डालकर पीछे बैठने को सोचता है। "वे क्यों अपने रिश्ते का बोझ अब तक मुझ पर डालते रहते हैं, मैं उन्हें कैसे समझाऊँ कि, उनका होना भी मेरे लिये कोई अस्तित्व नहीं रखता, और उनके नाम पर मैं भीतर से सिर्फ एक सर्द झुरझुरी भरकर रह जाता हूँ.... मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि, तुम क्यों मेरे पिता की संज्ञा का बोझ ढोये हो।[31]

दूसरी तरफ अभिमन्यु अनुराग की "रक्त बैंक" का युवा पुत्र बीमार पिता माता, अविवाहित बहन भाई की चिन्ता से मुक्त होकर अलग हो रहा है। उसने साफ कह दिया है कि, वे परिवार की कुछ भी सहायता नहीं कर सकता। विवाह होकर सारा परिवार पूर्णतया आश्रित हो जाता है।[32]

दीप्ति खण्डेलवाल की "आधुनिक" कहानी में पुत्र सुधीर आधुनिक विचारों का है। पिता के सारे आदर्शों को ठुकरा कर एक नया रूप देता है। अपने हर काम को उचित आधुनिक "द माडर्न वे आफ लाइफ" कहता है.. जब भी गाँव जाता है पिता को एक नया घाव दे जाता है...पापा...बप्पा नहीं कहूँगा, "इट्स बस्ट फूलिश"....आपको मालूम है जमाना कितना तरक्की कर चुका है[33]।

स्वातन्त्र्योत्तर युग में पिता पुत्र के वे रिश्ते समाप्त हो चुके हैं। आज पुत्र वेहिचक पिता से एक सेक्सी लड़की की माँग करता है...एक तो डाक्टर, दूसरी लड़की चाहे काली हो या गोरी इससे कुछ भी फरक नहीं पड़ता, पर लड़की होनी चाहिये सेक्सी...।[34]

वर्तमान समय में नैतिकता और कर्तव्य की धारणा बिल्कुल बदल चुकी है। पिता द्वारा किये गये उपकारों का नहीं, उल्टे पिता द्वारा न की गई चीजों के प्रति प्रतिशोध की भावना ही अधिक काम करती है। आधुनिक पुत्र पिता के प्रति अपने स्वाभित कर्तव्यों से कहीं भी चिन्तित नहीं है।[35] बल्कि कई बार हम देखते हैं पिता के साथ पुत्र का बुरा व्यवहार होता है। पाश्चात्य रंग में रंग होने के कारण भारतीय परम्परा का उपहास उड़ाता हुआ पुत्र अपनी पत्नी के सामने पिता को नौकर की उपाधि दे डालता है।

मन्नू भण्डारी कृत "बाप"[36] और मेहरुन्निसा परवेज की कहानी "पितृलोक" का पुत्र अपने पुराने परिवेश से कट चुका है। शराबी एवं बूढ़े बाप के प्रति उसके मन में जरा भी स्नेह नहीं है। टीनी चारपाई पर पड़े नरकंकाल को देखकर वह सोचता है, यही कंकाल नुमा बाप जिन्दा आदमी, उसका बाप कहलाता है। "सफर के दौरान वह सोचता है...वह पिता कहता

को चित्रित किया गया है।

नयी कहानियों में नये पुराने मूल्यों की टकराहट की प्रवृत्ति संवेदनात्मक स्तर पर भी अभिव्यक्त हुई है। इन कहानियों में मानव संवेदना मूल्यगत धारणाओं और मान्यताओं के प्रति तीव्र आक्रोश और तनाव देखने को मिलेगा। क्षोभ और उदासीनता के द्वन्द्व की यातनाओं से गुजरता हुआ भारतीय मनुष्य हर जगह अयोग्य एवं मिसफिट पा रहा है। पुराने मूल्यों से चिपका रहना वह नहीं चाहता और नवीन मूल्य वह गढ़ नहीं सकता, इस निराशाजनक स्थिति का सामना करता हुआ कहीं-कहीं अपनी सहनशीलता को भी खो बैठा है।[39] आज यथार्थ में मूल्य संघर्ष दो पीढ़ियों की बदलती मानसिकता एवं आस्थाओं अनास्थाओं का संघर्ष है। स्वतन्त्रता के बाद की कहानियों में मनुष्य को उसके परिवेश में चित्रित करने का ही आग्रह रहा है। बदलती परिस्थितियों में सामाजिक नैतिक मूल्यों में परिवर्तन आये हैं। आर्थिक दबाव के कारण संयुक्त परिवार में परिवर्तन आया है। पुरानी पीढ़ी की आसक्तियों को नकारती हुई, नयी पीढ़ी का संघर्ष है। पुराने नये मूल्यों में अन्तर का परिणाम है। जीवन मूल्यों विश्वासों और मान्यताओं के सन्दर्भ में मूल्यों की टकराहट देखी जा सकती है।

विचार परिवेश सन्दर्भों में परिवर्तन ही यथार्थ की स्थिति है। भौतिक आधारों के बदलने से समाज का सन्तुलन तथा मनुष्यों का चिन्तन भी बदलने लगा। भौतिक सभ्यता ने जहाँ सामाजिक मूल्य दिया है, वहीं पर मनुष्य को सारे पुराने और नये मूल्यों से रिक्त कर दिया है। इन मूल्यों से विहीन व्यक्ति अपनी भौतिक सन्तुष्टि के लिये सारे परम्परागत मूल्यों को तोड़ता गया और नये प्रकार के मूल्य हीन सम्बन्धों को निर्मित करता गया। इस प्रकार पीढ़ी संघर्ष परिवार में भी पिता-पुत्र, माँ-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-बहन, भाई-भाई के बीच दिखाई देती है।

राजेन्द्र यादव की कहानी "बिरादरी बाहर" दो पीढ़ियों के संघर्ष का चित्रण करने वाली कहानी है। "बिरादरी बाहर" भी एक ऐसे ही परिवार की कहानी है जिसमें पिता परम्परागत जीवन मूल्यों के प्रति अपने मोह के कारण ही स्वयं को परिवार से बिल्कुल कटा हुआ पाता है। आज नयी पीढ़ी के व्यक्ति के लिये प्राचीन मूल्यों का उल्लंघन कोई विशिष्ट घटना नहीं है, किन्तु पुरानी पीढ़ी के व्यक्ति के जीवन में वही घटना उथल पुथल मचा देती है। "बिरादरी बाहर" का पिता अपनी पुत्री के विजातीय विवाह-सम्बन्ध को किसी भी रूप में स्वीकार नहीं कर पाता और इसीलिये वह सारी नयी पीढ़ी के प्रति आक्रोश से भर उठता है। पहले कभी परम्परागत मूल्यों का विरोध करने वाले को बिरादरी से बाहर कर दिया जाता था। किन्तु आज के परिवर्तित समाज में परम्परागत मूल्यों का समर्थन करने वाला व्यक्ति स्वयं को बिरादरी से बाहर अनुभव करता है। हमारे देखते-देखते ऐसे न जाने कितने पिता बिरादरी से बाहर हो गये। यह कहानी भी सिर्फ एक व्यक्ति की ही कहानी नहीं है अपितु उस समूची पुरानी पीढ़ी की कहानी है जो अभी तक प्राचीन जीवन मूल्यों से चिपटा हुआ है और परिवार में अपना एकछत्र शासन देखने की इच्छा में बिरादरी से बाहर हो चला है।

मन्नू भण्डारी की "त्रिशंकु" कहानी परम्परागत मूल्यों एवं आधुनिक मूल्यों में फंसी एक ऐसी माँ का चित्रण है जो अपनी किशोरी पुत्री को पूरी स्वतन्त्रता देना चाहती है, पर कभी उसे अपने समय की लड़कियों की, माता पिता की रोक टोक याद आने से फिर अपने आपको वही पुराने युग की माँ के रूप में ढाल लेती है। वह न तो आधुनिक बन कर बेटी को पूरी छूट दे पाती है, और न ही परम्परा से चले आये संस्कार के अनुरूप रूढ़िवादी माँ ही बन पाती है। त्रिशंकु के रूप में बीच में ही लटक जाती है।

वर्तमान में पुराने रिश्तों का अस्तित्व खत्म हो रहा है। माँ बाप के आदर्शात्मक रूप टूटने के दो कारण है। एक पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी की भावनाओं को नहीं समझ पा रही है।[40] दूसरे दोनों पीढ़ियों के बीच इतनी चौड़ी खाई है कि, उन्हें पाटा नहीं जा सकता है। पुत्र पुराने सम्बन्धों को तोड़ता है। पुत्र पिता के पुराने अन्तर्विरोधों को नये तरीके से काटता जाता है।[41]

युग के दबाव के कारण पुराने मूल्यों को हटा तो दिया गया पर उसकी जगह नया जीवन मूल्य स्थापित न हो सका। पुराने मूल्य आधुनिकता के आवेग के कारण हट तो गये लेकिन आकर्षण फिर भी बना रहा। अतः पुराने मूल्यों को छोड़ने और नये को अपनाने की समस्या वर्तमान की मानसिकता का एक हिस्सा बन गयी है।

परम्परागत मोह अधिकतर कहानियों में बना रहा है, जिससे पुराने नये मूल्यों में टकराहट भी परिलक्षित होती है। पति-पत्नी को अपनी सम्पत्ति मान कर चलता है। यदि पत्नी इसका विद्रोह करती है, तो वह "पति" सारा क्रोध पत्नी पर उतारता है। दीप्ति खण्डेलवाल की "तपिश के बाद" इसका उदाहरण है। सुमि अपने पति का विद्रोह करना चाहती है...जी चाहता है कि, रास्ते में ही किसी हेयर ड्रेसर के यहाँ उतर जाऊँ और अपने इन लम्बे केशों का बन्धन काट फेंकू। लेकिन केश काट फेंकने से ही क्या होगा? उन बन्धनों का क्या होगा जो मेरे नारी मन की अपनी ही निष्ठाएँ हैं।[42]

आज की आर्थिक स्थिति में कुण्ठित नारी-पुरुष के लिये पलायन है, जिसे वह अपनी स्तुति का साधन समझता है। पुराने नये मूल्यों का संघर्ष स्त्री-पुरुष की व्यक्तिगत मानसिकता पर आधारित है। शरीर की पवित्रता का महत्व औपचारिक हो गया है। दीप्ति खण्डेलवाल-"कोहरे" में नितिन कुमार स्वयं अपनी पत्नी को मित्र के साथ भटकाने के लिये कहता है...मैं चाहता हूँ वह अपना

आदमी नहीं है, लेकिन वह आपका क्या ले लेगा? ज्यादा से ज्यादा कुछ देर और आँख सेंक लिया करेगा। तो ये बेचारा भी क्या करें, आप चीज ही ऐसी हैं।[43]

तार्किक और वैज्ञानिकता के कारण स्वातन्त्र्योत्तर काल में स्थापित नैतिक मूल्य टिक नहीं पा रहे हैं। इस युग में पीढ़ियों का संघर्ष इतना मजबूत है कि, कोई भी पक्ष इन स्थितियों से हटकर पलायन की बात सोचता ही नहीं। बल्कि यथार्थ से आज हर पीढ़ी का व्यक्ति जूझना चाहता है। भले ही वह यथार्थ पीड़ा जनक क्यों न हो।[44]

समसामयिक युग में जिस नई चेतना का विकास हुआ, उसमें स्त्री-पुरुष का एक नया विकसित रूप दिखायी देता है। दोनों आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बन चुके हैं। इसीलिये दोनों में निजी अस्तित्व का भी प्रश्न उठा। पुरुष का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व तो पहले से ही था। नारी भी अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के लिये सजग हो गयी।[45] आज वह पुरुष की भाँति स्वतन्त्र प्रेम की माँग करने लगी है।[46] इसलिये कि, वह आर्थिक रूप से स्वतन्त्र है। तन पति के लिये मन प्रेमी के लिये समर्पित है।[47] प्रेम की इकतरफी स्थिति को दोनों नहीं मिटाना चाहते, उसके प्रति प्रत्येक क्षण सजग रहते हैं।[48]

स्वतन्त्रता के बाद का प्रेम स्वार्थ से परिपूर्ण दिखायी देता है। यह परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन से है। आज नारी इतनी आधुनिक और प्रगतिशील बन गई कि, उसे अपनी[49] एवं दूसरे अधिकार प्राप्त लोगों से प्रेम करके, नारीत्व बेचने और स्वार्थ-पूर्ति करने के लिये प्रेम की तलाश में दो पुरुषों के बीच[50] भटकती नजर आती है। आज हम प्रेम की जिस नई दिशा को देख रहे हैं उसमें भावुकता का कहीं कोई अंश नहीं होता है। उदाहरणस्वरूप -

"प्रतिध्वनियाँ", निरुपमा सेवती "कुहरे देवदार", कृष्णा अग्निहोत्री "फालतू औरत", कहानी में पति-पत्नी में तलाक और दोबारा मिलन की कथा को नये ढंग से निरूपित किया है। जिसमें प्रेम का स्वरूप नया आयाम पाता है।

उषा प्रियम्वदा की दूसरी कहानी "सम्बन्ध" प्रेम के स्वरूप को नया आयाम प्रस्तुत करती है। श्यामला विदेश में रहती हुई, अनुवादक का काम करती है। उसका सम्बन्ध डा० सर्जन से है जो उसका पति भी है, पिता भी है, प्रेमी और बन्धु भी है। आर्थिक रूप से वह स्वतन्त्र है। लेकिन डा० सर्जन से वह शादी नहीं करना चाहती। इस सम्बन्ध में प्रेम के परम्परागत मूल्यों का विरोध स्पष्ट होता है। [51]

स्त्री पुरुष के प्राकृतिक आकर्षण को नकारा नहीं जा सकता। स्त्री पुरुष आज भी साथ रहना चाहते हैं। स्त्री-पुरुष के बिना तथा पुरुष स्त्री के बिना नहीं रह सकता। यह परम्परा सदियों से चली आ रही है। इसे आधुनिक स्त्री पुरुष दोनों स्वीकार करते हैं। हाँ आज सेक्स का स्वरूप अवश्य बदला हुआ नजर आ रहा है। नैतिक-अनैतिक, पाप-पुण्य, अच्छाई-बुराई की व्याख्यायें बदल चुकी हैं।

वर्तमान युग में स्त्री-पुरुष स्वेच्छा से यौन सम्बन्ध स्थापित करते हैं। मन्नू भण्डारी कृत "ऊँचाई" कहानी की शिवानी सेक्स के प्रति उदार दृष्टिकोण रखती है। शिवानी की दृष्टि से उसका अपने प्रेमी अतुल के साथ सम्भोग कर आना अस्वाभाविक या असामान्य बात नहीं है। पर आकर वह पति शिशिर को अतुल के साथ किये गये सम्भोग के बारे में बताती है, क्योंकि वह अपने को स्थापित वर्जनाओं से मुक्त समझती है।

स्वतन्त्रता पूर्व की नारी की तरह आधुनिक नारी का स्वतन्त्र अस्तित्व पुरुष से पूर्णतः मुक्त नहीं है। शायद ऐसा कभी होगा नहीं। परम्परा से चली आ रही, स्त्री पुरुष के सम्बन्धों को तोड़ना असम्भव है। आधुनिक स्त्री पुरुष परम्परागत पाप बोध से मुक्त हो गये हैं, यौन मुक्ति ऐ आवश्यकता मान ली गई है। काम और पाप बोध को एक साथ रखकर एक दूसरे का पर्याय नहीं माना जा रहा है।

काम प्रेरक की अनुकूलता दाम्पत्य जीवन में काम अतृप्ति, अनैतिक प्रेम और दाम्पत्य प्रतिबद्धता की स्थिति देखी जाती है। पति पत्नी सम्बन्धों में काम अतृप्ति घर को बिगाड़ने में बड़ा हाथ होता है। मनुष्य में कामेच्छा प्राकृतिक है। शारीरिक मानसिक अतृप्ति स्त्री-पुरुष को घर से भटका देती है। पुरुष को जब पत्नी से शारीरिक तृप्ति नहीं मिलती तो वह घर के छोटे घेरे से निकलकर बाहर इच्छा पूर्ति का प्रयास करता है।[52] और यही प्रवृत्ति आज स्त्रियों में भी देखी जा रही है।[53] मन्नू भण्डारी "ऊँचाई"[54] की शिवानी, कील और कसक[55] की रानी का परगमन और बाहों का घेरा[56] की [illegible] की काम कुण्ठा आदि का परिणाम है।

बच्चे माता पिता के स्वच्छन्द काम सम्बन्धों को देखकर कई कुण्ठा ग्रन्थि से ग्रस्त हो जाते हैं। मेहरुन्निसा परवेज कृत "मिले हुये क्षण"[57] दीप्ति खण्डेलवाल की "ये दूरियाँ"[58] कहानी की अंजु की माँ का पापा के साथ चिपक कर बैठना, बार-बार कन्धों का सहारा लेना देखकर अंजु और भी कुंठित हो जाती है। वह जीवन को सहज ढंग से नहीं जी पाती है।[59] बच्चों के कोमल मन पर माता पिता की ये हरकतें बुरा प्रभाव डालती हैं। वे जीवन भर के लिये मनोरोगी हो जाते हैं। कृष्णा अग्निहोत्री की "आक्टोपस" कहानी की "नीता" को इन [illegible] के [illegible] होती है। [illegible] से उसे

है मनुष्य ने अपने सुख के लिये नये नये वैज्ञानिक खोज किये। उसका यह वैज्ञानिक खोज सार्थक हुआ लेकिन उसके साथ ही वह स्वयं से पराया हो गया है। उसके चारों ओर मृत्यु, भय, संत्रास, अकेलापन और अजनबीपन का बोध उसे निगल रहा है।

आज व्यक्ति अपने परिवेश से ही अजनबी है, वह अपनों के बीच में रहते हुये भी अजनबीपन और अपरिचित से त्रस्त रहता है। कमलेश्वर की "खोई हुई दिशाएँ", मृदुला गर्ग की कहानी "अदृश्य" में मनुष्य के अजनबीपन की स्थिति का सार्थक अभिव्यक्ति से चित्रण हुआ है। आदमी के परिचय की दिशायें खत्म हो गई हैं। डाक्टर घर में पत्नी बच्चों के साथ रहते हुये भी सबसे अजनबी है। घर में सबके रहते हुये भी उसे कोई नहीं दिखता। पत्नी की हत्या हो जाने पर पुलिस के पूछने पर वह लाश पहचानने से इन्कार कर देता है।[65]

अपरिचिता के प्रभाव में आज व्यक्ति हर जगह अपने को उपेक्षित महसूस कर रहा है। उपेक्षा की स्थिति ने मानव को और भी निराशावादी बना दिया है। सारी शक्ति उसकी व्यर्थ ही नष्ट हो रही है। निराशावादी ही अजनबीपन की देन है। यह अजनबीपन एक व्यक्ति का नहीं पूरे परिवेश का है।

अकेलापन आज के मनुष्य की नियति बन चुका है। यह विशेष रूप से नगरों और महानगरों में देखने को मिलता है। वैज्ञानिक सभ्यता के कारण मानवीय सम्बन्ध आज इतने औपचारिक और कृत्रिम हो गये हैं कि, कोई किसी के लिये अपना समय बर्बाद नहीं करना चाहता। आधुनिक मनुष्य को कहीं भी अपने मन की भावना का एहसास नहीं हो रहा है। प्रेम, स्नेह, दया, ममता, आदि के पारस्परिक भावनाओं का प्रायः लोप हो रहा है। कोई भी कार्य या तो व्यक्ति पूर्ति के लिये या फिर स्वार्थपूर्ति के निमित्त करता है। इस स्थिति में व्यक्ति के अकेलेपन का बोध होता है।

उषा प्रियम्वदा की "स्वीकृति" कहानी में अपने अकेलेपन से पीड़ित प्रेम सम्बन्ध के लिए तरसती एक ऐसी नारी का चित्रण है जो शारीरिक और मानसिक वेदना से त्रस्त है। उसका यहाँ कोई अपना नहीं है। यहाँ तक विदेशी मित्र उसे पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाता और पति सत्य उसे पूरी तरह छोड़ नहीं पाता।[66] नये कहानीकारों के कहानियों के अधिकांश नायक अपने अकेलेपन की पीड़ा से व्यथित हैं। "एक कटी हुई कहानी" राजेन्द्र यादव की एक ऐसी ही कहानी है जिसके समस्त पात्र एक अकेलेपन के एहसास से ग्रस्त हैं। फणीश्वर नाथ रेणु की कहानियाँ "तीसरी कसम"[67] लालपान की बेगम",[68] आदिम रात्रि की महक" आदि में व्यक्ति की इसी स्थिति का चित्रण है। कमलेश्वर की कहानी "नीली झील" की भी यही वेदना है।

आधुनिक व्यक्ति अपने अतीत और भविष्य से कटा हुआ नजर आता है। अकेलापन, उदासीनता और निरर्थकता बोध का निरन्तर अनुभव करते जाना आज के व्यक्ति के लिये नियति बन गयी है।

आधुनिक व्यक्ति तनाव, भय और मृत्यु बोध, निराशा व्यथा, विसंगति और निरर्थकता बोध आदि से घिरा हुआ है। नये कहानीकारों ने व्यक्ति की इन स्थितियों का चित्रण बड़े ही सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। राजेन्द्र यादव की "टाकर" कहानी इस तनाव को बड़ी ही सफलता से अभिव्यक्त करती है। कहानी का प्रमुख पात्र हरि सारे दिन नकली जीवन जीता है और यह नकली जीवन उसके लिये भीषण तनाव की स्थिति उत्पन्न कर देता है।

यह तनाव भय और मृत्यु बोध महानगरीय जीवन में अधिक व्याप्त है। महीपसिंह की "[illegible]" एक ऐसी ही कहानी है। "[illegible]" कहानी में

महानगरीय जीवन की भयाक्रांत स्थितियों का काफी कुछ आभास मिल जाता है।

कमलेश्वर की कहानी "युद्ध" में भी यही भय और संत्रास है। विज्ञान ने मानव को संत्रास में जीने के लिये विवश कर दिया है। महीपसिंह की "घुटन" भी इसी प्रकार भय और संत्रास को चित्रित करने वाली कहानी है। इस प्रकार स्वातन्त्र्योत्तर भारत का व्यक्ति इस भय, संत्रास, कुण्ठा आदि से उत्पन्न बहुस्तरीय संत्रास की अनुभूति कर रहा है।

नई कहानियों में मृत्युबोध को विभिन्न स्तरों पर देखा जा सकता है। निर्मल वर्मा की खोज का "मृत्यु बोध एक ठण्डे और निर्जीव अंधेरे बीच में उगे हुये एक बेनाम भय और संत्रास के इर्द गिर्द घूमता है"।[69] मोहन राकेश की कुछ कहानियों में निराशा, व्यथा, विसंगति और कुण्ठा आदि की अनुभूतियों का चित्रण है। उदाहरणतः "उर्मिल जीवन" कहानी की नायिका कुण्ठा बोध से घिरी है। एक और जिन्दगी" "मिसपाल" [illegible] और [illegible] कहानियों में क्रमशः कुण्ठा निराशा अकेलेपन और अजनबीपन की अनुभूतियों से सम्बन्धित स्वर देखे जा सकते हैं।

राजेन्द्र यादव की "[illegible]" "बिरादरी बाहर" "किनारे और" टूटना आदि कहानियों में, कमलेश्वर की "बीमार गुलाब" "दुखों के रास्ते" आदि में भी व्यथा, अकेलापन, वेदना, और कुण्ठा आदि अनुभूतियों से सम्बन्धित भाव देखे जा सकते हैं।

नई कहानियों में यथार्थ को नये रूप में प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि, आज का कथाकार जीवन की वास्तविकताओं के प्रति अधिक सचेष्ट है। वह आज पुरातन, मिथ्या, आदर्शों और नैतिकताओं से अपने को मुक्त कर चुका है।

यथार्थवाद के नाम पर वह पुराने मूल्यों का खण्डन और नवीन मूल्यों की स्थापना करना चाहता है।

"स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी को यथार्थवाद ने सबसे अधिक प्रभावित किया। डा० देवी शंकर अवस्थी ने सबसे पहले इस कोण से कहानी में यथार्थ की स्थिति को स्पष्ट करने की कोशिश की थी।"[70]

डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय भी आज के समूचे कहानी साहित्य में यथार्थ बोध को स्वीकारते हैं। "वास्तव में आज के समूचे कहानी साहित्य में, व्यक्तिगत रूप में कुछ कहानीकारों को छोड़कर एक प्रमुख यथार्थ-बोध है जो उसकी अपनी परम्परा का नवीनतम संस्करण है। आज की आधुनिकता से ओत-प्रोत लेखक शंकालु होने के साथ ही यथार्थोन्मुख होता है। विवश होकर उसे जीवन सत्य स्वीकार करना ही पड़ता है, क्योंकि जीवन और व्यक्ति में इतना अधिक वैचित्र्य आ गया है कि, उसकी सतहों से जूझ ही बन सकते हैं।"[71]

नये कहानीकारों ने मनोविश्लेषण का आश्रय लेकर जन जीवन व के परिवर्तनशील रूपों का चित्रण करते हुये मनुष्य के विभिन्न कुण्ठाओं का चित्रण किया है। स्वतन्त्रता पूर्व की अपेक्षा नई कहानी में मनुष्यों के ग्रन्थियों विकृतियों और कुण्ठाओं से पर्दा ही नहीं, बल्कि मन के भावों का एक कुशल वैज्ञानिक की तरह विश्लेषण करने का प्रयास किया है। आधुनिक, सामाजिक जीवन की अनेक कुण्ठाओं का व्यंग्य पूर्ण चित्रण कर मनुष्य के आन्तरिक और बाह्य शैलियों की आत्मीयता स्थापित कर दी।

मनोविज्ञान आज के कथाकारों के आकर्षण का केन्द्रीभूत विषय रहा है। असफल वैवाहिक जीवन की सब कुण्ठायें, पारिवारिक विघटन, नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर उनके सामाजिक जीवन की

अपनी प्रस्तुत की है। असाम्य की स्थिति दमन को जन्म देती है। यौवन अतृप्ति अथवा दमन स्त्री पुरुष के दाम्पत्य, स्वास्थ्य विकास में अत्यन्त बाधक है। प्यार की आद्रता जहाँ नारी पुरुष को नहीं मिलती प्रायः वे असामान्य और कुण्ठित हो जाते हैं। मन्नू भण्डारी "कील और कसक" "तीन निगाहों की एक तस्वीर" "घुटन", दीप्ति खण्डेलवाल "अर्थ" "निर्वासन" उषा प्रियम्वदा की "स्वीकृति", "प्रतिध्वनियाँ" कृष्णा अग्निहोत्री "आदमी को नहीं पर", मणिका मोहिनी- "पितार पर" आदि कहानियों में सेक्स की माकदी को मनोवैज्ञानिक ढंग से आंका है। इनकी कहानियों का स्वर असन्तोष का है।

"सन्दर्भ सूची"

क्रम	ग्रन्थ	लेखक	कहानी / संग्रह	पृष्ठ
1-	द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय		80
2-	तीन निगाहों की एक तस्वीर	मन्नू भण्डारी	तीन निगाहों की एक तस्वीर	1
3-	कोशिश में	दीप्ति खण्डेलवाल	सलीबघर	74
4-	सीट नम्बर छह	ममता कालिया	सीट नं० छह	77
5-	कैशियर	मृदुला गर्ग	टुक	50
6-	गलियारे	कृष्णा अग्निहोत्री	फालतू औरत	71
7-	नई कहानी में आधुनिक बोध	साधना शाह		35
8-	यही सच है और अन्य	मन्नू भण्डारी	तीसरा आदमी	28
9-	गलियारे	कृष्णा अग्निहोत्री	बन्द खिड़की	1
10-	कहानी की संवेदनशीलता, सिद्धान्त और प्रयोग	भगवान दास वर्मा		198
11-	जिन्दगी और गुलाब के फूल	उषा प्रियम्वदा	वापसी	143
12-	दीप्ति खण्डेलवाल	अभिशप्त	सलीबघर	69
13-	जिन्दगी और गुलाब के फूल	उषा प्रियम्वदा	जिन्दगी और गुलाब के फूल	155
14-	हिन्दी कहानी की संवेदनशील सिद्धान्त और प्रयोग	भगवानदास वर्मा		198
15-	गलियारे	कृष्णा अग्निहोत्री	फालतू औरत	61
16-	हरी बिन्दी	मृदुला गर्ग	कितनी कैदें	31
17-	ऊँचाई	मन्नू भण्डारी	एक प्लेट सैलाब	126
18-	जिन्दगी और गुलाब के फूल	उषा प्रियम्वदा	वापसी	143
19-	नई कहानी में आधुनिक बोध	साधना शाह		50
20-	माया नवम्बर 1976	मणिका मोहिनी	दूरियाँ	

"सन्दर्भ सूची"

क्रम	पुस्तक	लेखक	कहानी	पृष्ठ
42-	नारी मन	दीप्ति खण्डेलवाल	तापिश के बाद	164
43-	सलीब पर	दीप्ति खण्डेलवाल	कोशिश में	77
44-	नई कहानी में आधुनिक बोध	साधना शाह		86
45-	नारी मन	दीप्ति खण्डेलवाल	तापिश के बाद	160
46-	अवकाश [illegible]	मृदुला गर्ग	टुकड़ा टुकड़ा	41
47-	एक प्लेट सैलाब	मन्नू भण्डारी	ऊँचाई	126
48-	नारी मन	दीप्ति खण्डेलवाल	प्यार	53
49-	नारी मन	दीप्ति खण्डेलवाल	धुप धुनी	84
50-	यही सच है	मन्नू भण्डारी	यही सच है	144
51-	कितना बड़ा झूठ	उषा प्रियम्वदा	सम्बन्ध	9
52-	गलियारे	कृष्णा अग्निहोत्री	करार	43
53-	कितनी कैदें	मृदुला गर्ग	हरी बिन्दी	31
54-	एक प्लेट सैलाब	मन्नू भण्डारी	ऊँचाई	126
55-	मैं हार गई	मन्नू भण्डारी	[illegible]	116
56-	एक प्लेट सैलाब	मन्नू भण्डारी	बाहों का घेरा	100
57-	गलत पुरुष	शैलकान्तिलाल परदेश	बिके हुये क्षण	65
58-	नारी मन	दीप्ति खण्डेलवाल	ये दूरियाँ	150
59-	नारी मन	दीप्ति खण्डेलवाल	ये दूरियाँ	150
60-	टीन के घेरे	कृष्णा अग्निहोत्री	आक्टोपस	31
61-	गलियारे	कृष्णा अग्निहोत्री	करार	44
62-	गलियारे	कृष्णा अग्निहोत्री	करार	44
63-	कितनी कैदें	मृदुला गर्ग	दुनिया का कायदा	105
64-	नारीमन	दीप्ति खण्डेलवाल	धुप धुनी	83

"सन्दर्भ सूची"

65- गलेशियर	मृदुला गर्ग	उदय	152
66- कितना बड़ा झूठ	उषा प्रियम्वदा	स्वीकृती	62
67- मेरी प्रिय कहानियाँ	फणीश्वर नाथ रेणु	तीसरी कसम	22
68- मेरी प्रिय कहानियाँ	फणीश्वर नाथ रेणु	लाल पान की बेगम	54
69- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन	डा० के लाल शर्मा		61
70- नई कहानी की भूमिका	कमलेश्वर		163
71- द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय		148

x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x

:: "अध्याय-"पाँच" ::

कहानियों का मानव मूल्यों की

दृष्टि से अनुशीलन

।खण्ड-दो।

कलाप को अति महत्ता दी है क्योंकि जगपति को ठीक और अच्छी दवाइयाँ दिलाने के लिए रुपयों की आवश्यकता होती है और रुपये उसके पास नहीं थे। पत्नी चंदा जब दवाइयाँ लाकर रखने लगी तब जगपति का यह ख्याल था कि, कड़े बेचकर यह सारी व्यवस्था कर दी है। स्वस्थ होकर घर आने के बाद उसे पता लगता है, कड़े तो बिके नहीं गये हैं, दवाइयाँ किसी और की कृपा से लाई गई है।

जगपति यह जानते हुये भी मौन रह जाता है। वह बचनसिंह और चन्दा के सम्बन्धों को अनदेखा करता है। बचन सिंह के रुपयों से ही लकड़ी का टाल लगवाता है उसे यह ज्ञात है कि, उसकी सीमा कहाँ और पतन की जा रही है। चन्दा का माध्यम के रूप में उपयोग कर लेते समय उसे कुछ अनुभव नहीं हुआ परन्तु बाद में पश्चाताप की प्रक्रिया आरम्भ होकर अन्त में इसी पश्चाताप के कारण उसे आत्महत्या करनी पड़ी। परिस्थिति से मजबूर होकर किन्तु सुख की खोज में परेशान। आज परिस्थितियाँ इतनी कुछ क्रूर और भयानक हो चुकी हैं कि, जिन्दगी के श्रेष्ठ मूल्यों नैतिक मूल्यों को या तो मजबूरी से तोड़ना पड़ता है या उन्हें पूर्णतः नकार कर आगे जाना पड़ता है। इसी अर्थ के अतिरिक्त मोह के कारण सभी नैतिक तथा अन्य मूल्य टूट जा रहे हैं।

कहानीकार ने एक ही कहानी के माध्यम से प्राचीन एवं नवीन मानव मूल्यों की स्थापना की है। आज का युग वैज्ञानिक तथा इससे पीड़ित मूल्यों का युग है। विश्वासों और दैवी शक्तियों का स्थान प्रकाश तथा बुद्धि ने लिया है।

"पुराने मूल्यों के टूटने पर वह नवीन मूल्यों की स्थापना के लिए विकल रहता है। हिन्दी के नये कहानीकार के लिए भी यह सत्य है। पर नये मूल्यों की स्थापना के लिए भूमि तैयार करने से पहले पुराने मूल्यों के झाड़-झंखाड़ को साफ कर देना भी आवश्यक है। पुराने मूल्यों की जड़ता का चित्रण

करके नया कहानीकार यही कह रहा है। पर वह भूला हुआ है। पुराने सभी मूल्य अपनी सार्थकता नहीं खो बैठे हैं।"[5]

इस कहानी में पहली कहानी राजा रानी के दाम्पत्य जीवन पर आधारित है और दूसरी कहानी कमपति और चन्दा के दाम्पत्य जीवन पर। राजा आखेट के लिए चले गये थे। ठीक सातवें दिन नहीं पहुँचे, इसलिये रानी उन्हें ढूँढने चली गई। कमपति रिश्तेदारों के यहाँ विवाह में चला गया और दसवें रोज वापस नहीं आया इसलिये चंदा ढूँढने अस्पताल चली गई, राजा, कमपति दोनों निरपेक्षियाँ हैं। रानी पति रक्षा के लिए वेश बदल बदल कर राजा से उस रात एक सराय में मिली और गर्भवती हो गई। चंदा अपने पति की सुरक्षा के लिए, उसे नई जिन्दगी देने के लिए अपना शरीर कम्पाउण्डर को समर्पित करती है।

एक श्रेष्ठ मूल्य की रक्षा के लिये पति की जिन्दगी, दूसरे महत्त्वपूर्ण मानव मूल्य की शारीरिक पवित्रता। की हत्या वह कर देती है। रानी राजा के लिए चिन्तित थी, इसीलिये उन्हें ढूँढती जंगल में गयी थी। संतति नहीं हो रही है इसलिये राजा चिन्तित है और राज्य छोड़कर चले जाते हैं तो रानी वेश बदल कर उन्हें मिलती है। मात्र उनकी चिन्ता कम करने के लिए। चंदा भी पति को बचाने के लिए और बाद में उसकी बेकारी को हटाने के लिए अपने शरीर को बेचती है। यहाँ तक दोनों कहानियाँ समान्तर चलती हैं। परन्तु बाद में दोनों दो विरुद्ध दिशाओं की ओर बढ़ती हैं। यहाँ पर लेखक दो भिन्न जीवन मूल्यों को रेखांकित करता है।

परदेश से जब राजा वापिस आते हैं तो राजमहल में उन बालकों को देखकर रानी से सारा स्पष्टीकरण पूछते हैं। यह बच्चे किसके हैं, कहाँ से आये हैं" इत्यादि रानी टुनमुनकर उत्तर टाल भी देती है।

जगपति सब जानते हुये भी चुप है। इस लाचारी में ही दो युगों का मूल्यगत अन्तर स्पष्ट हो जाता है। आधुनिक युग के इस जगपति को सम्पत्ति ही महत्त्वपूर्ण प्रतीत हो रही है- अन्य नैतिक मानव मूल्य नहीं। भौतिक मूल्य अर्थ से सम्बन्धित हैं और ये नैतिक मूल्यों को तोड़ रहे हैं व्यक्ति के टूटने का एक बड़ा कारण आर्थिक स्थिति है "राजा निरबंसिया"।

अपनी व्यक्तिगत "जिन्दगी" और उसके लिए आवश्यक "सम्पत्ति" यह दो मानव मूल्य इस युग में शेष रह गये हैं। इन दो मूल्यों के लिए बड़े से बड़े मूल्य को त्यागने के लिए आज का मानव तैयार हो गया है। अपने व्यक्तिगत सुख के लिए जगपति ने पत्नी का माध्यम के रूप में प्रयोग किया है। परदेश से लौट आने के बाद दो बालकों को राजमहल में देखकर राजा शंकित हो गया, उसे अपनी पत्नी पर सन्देह भी हुआ इसी कारण उसने स्पष्टीकरण माँगा था। जगपति को पता चलने के बाद वह मौन और परेशान हो जाता है। यहाँ दोनों स्थानों पर घटनाएँ एक हैं परन्तु प्रतिक्रियाएं भिन्न हैं, वास्तव में आदि अनन्तकाल से विश्व में ऐसी ही घटनायें घटित हो रही हैं। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है। इन घटनाओं को देखकर, अथवा इन घटनाओं से गुजरते हुये, उस युग का व्यक्ति किस प्रकार प्रतिक्रियायें व्यक्त करता है। इस पर ही उस युग के मानव मूल्य निर्धारित किये जाते हैं।

राजा ने रानी पर शक किया। इस शक को उसने व्यक्त किया तथा रानी तपस्या के लिए चली गई। जगपति भी शक करता है परन्तु अपने शक को वह व्यक्त नहीं करता क्योंकि चंदा के शरीर में सौदे से उसका अस्तित्व रूप से जीना सम्भव भी है। जगपति की यह प्रतिक्रिया आज के युगीन मूल्यों को स्पष्ट करती है। रानी अपनी परीक्षा में सफल हो गई, लेकिन चंदा की परीक्षा का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि न किसी की परीक्षा लेने की इच्छा है, न देने की। कारण दोनों ही घटनाओं से परिचित हैं।

आर्थिक आधार पर लिखी गयी कहानियों में बेकारी, सिफारिश और अनुशासनहीनता की समस्याओं का चित्रण किया गया है। इस चित्रण को श्रीमती चित्रा चौहान कृत "एक कुंवारिन का जन्म" कमल जोशी कृत "जीवन चक्र" जीतेन्द्र कृत "टूटा पत्ता" अमरकान्त कृत "डिप्टी कलेक्टरी" शत्रुघ्न लाल कृत "रोज की बातें" ज्ञानी कृत "दिन" आदि कहानियों में अपने यथार्थ रूप में देखा जा सकता है।

मृदुला गर्ग की "अलग अलग कमरे"[6] कहानी नये मूल्य मूल्यान्वयन (वैल्यू आफ इनवाल्वमेन्ट) और आधार युक्त जीवन मूल्यों की कहानी है। पिता डा० नरेन्द्र देव पुत्र डा० सुरेन्द्र देव के मध्य निरन्तर द्वन्द्व चलता रहता है। पिता अपने पुत्र को आधारयुक्त जीवन मूल्यों को विरासत में देना चाहता है पर पुत्र सुरेन्द्र नई पीढ़ी का और अति आधुनिक होने के कारण स्वीकार नहीं कर पाया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय युवक ने परम्परागत मान्यताओं और रूढ़ि नैतिकता के प्रति विद्रोह करना प्रारम्भ किया। वह परम्परागत मान्यताओं के बन्धन में जकड़ा नहीं रहना चाहता था। "नई नई वैज्ञानिक उपलब्धियों के साथ तथा आधुनिक संसार के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध जुड़ जाने के कारण भारतीय युवक ने पाश्चात्य दर्शन, संस्कृति तथा रहन सहन को स्वीकार किया जिसके माध्यम से परम्परागत भारतीय मूल्यों में परिवर्तन हुआ। नया भारतीय नवयुवक अपने सजग अस्तित्व बोध के कारण, परम्परागत आदर्शों के बारे में प्रश्न करने लगा और उनमें व्यापक परिवर्तन की माँग करने लगा। परिणाम यह हुआ कि, शीघ्र ही नये भारत में जीवनगत आस्था के दो स्पष्ट रूप दिखाई देने लगे। एक वह था जो पुराने आदर्शों, मूल्यों और रूढ़ियों के साथ पूरी तन्मयता के साथ जुड़ा था और उनसे न मुक्त होना चाहता था और न मुक्त होने की बात ही सोच सकता था। दूसरा वर्ग

सभ्यता के नये उपकरणों को स्वीकार करने के साथ साथ समस्त प्राचीन रूढ़ियों और अंधविश्वासों को समाप्त करके नये जीवन को अपनाने की बात करता था । इस प्रकार प्राचीन भारतीय मूल्यों और आधुनिक मूल्यों में एक व्यापक टकराहट दिखाई देने लगी ।"[7]

मृदुला गर्ग की "अलग अलग कमरे" दो पीढ़ियों में वैचारिक असामंजस्य, पुरानी और नई पीढ़ी की टकराहट, मूल्यों के द्वन्द्व और नई पीढ़ी के पारम्परिक मूल्यों से कटाव की कहानी है। यह दो पीढ़ियों के वैचारिक असामंजस्य, पुरानी और नई पीढ़ी की टकराहट और उसकी विजय की कहानी है। सांकेतिक रूप में पुरानी पीढ़ी की पुनः अधिकार प्राप्ति की कहानी है.....। एक सीमा के बाद पुरानी पीढ़ी नयी पीढ़ी से सामंजस्य करने से इन्कार कर देती है और अपने पूर्वाधिकार प्राप्त करने के प्रति सचेष्ट हो उठती है। इस सत्य को लेखिका ने कहानी में अभिव्यंजित किया है।

"अलग अलग कमरे" दो अलग अलग कमरों की कहानी प्रतीकात्मक रूप में होकर भी पीढ़ियों के बढ़ते हुये अन्तर और दो अलग, किसी सीमा तक विपरीत मूल्यों की कहानी है। इसीलिये यह अपने मूल उद्देश्य में अपने समय के सापेक्ष सत्य, मूल्य संक्रान्ति को व्यक्त करती है।

यह कहानी पारिवारिक स्तर पर एक स्थिति को लेकर पिता और पुत्र के पारस्परिक सम्बन्धों के बढ़ते हुये वैचारिक दृष्टिकोण और मूल्यगत परिवर्तन और पीढ़ियों के बढ़ते हुये अन्तर को प्रकट करती है। कहानी के दो प्रधान पात्र पिता और पुत्र दोनों में मूल्यों को लेकर एक द्वन्द्व निरन्तर चलता रहता है। वैसे वे दोनों अलग हैं। पिता का [illegible] [illegible] में पूरा विश्वास है और वे आजीवन उसका निर्वाह करते हैं । उनका [illegible] उनके बारे में पूर्णतः उदासीन है। पिता पुरानी पीढ़ी

के हैं इसलिये अपनी पीढ़ी के अनुरूप उन्होंने अपने समय के कुछ मानव मूल्य भी अपना लिए हैं। ये मानव मूल्य हैं सहयोग, करुणा, त्यागशील, परोपकार सेवाभाव, मानवीयता आदि। उनके पुत्र डा० सुरेन्द्र का इन पारम्परिक मूल्यों में कोई विश्वास नहीं है।

डा० पिता ने अपना शिक्षण बड़े कठोर परिश्रम और तंगहाली में हासिल किया था, इस संघर्षशील जीवन ने उन्हें संयमी, आत्म निर्भर और कर्तव्यपरायण तो बनाया ही, मानवीय जीवन मूल्यों से भी उन्हें जोड़ रखा। आधारभूत जीवन मूल्यों से वह सहज बंध गये थे। कहानी में वे अपनी पीढ़ी की पारम्परिक मूल्य परम्परा और आस्था के सच्चे प्रतिनिधि हैं पर नई पीढ़ी का इन मूल्यों में जरा भी विश्वास नहीं रहा है। नयी पीढ़ी आधुनिक भौतिक मूल्यों में ही आस्था रखती है। इन आधुनिक मूल्यों में एक नये मूल्य "मुद्रान्यायम" के मूल्य (वैल्यू आफ इन्सेन्टिव) ने भी जन्म लिया है। इस मूल्य का अर्थ है उन मूल्यों या व्यवहारगत क्रियाओं को प्रश्रय देना या पोषित करना जिनके बदले में पुरस्कार रूप प्राप्त हों। नई पीढ़ी इन व्यावहारवादी मूल्यों को विशेष महत्व देती है। डा० नरेन्द्र अपने पुत्र सुरेन्द्र को आधारभूत जीवन मूल्यों को विरासत में देना चाहते हैं पर सुरेन्द्र नई पीढ़ी का होने के कारण उसे स्वीकार नहीं कर पा रहा था।

डा० नरेन्द्र देव के एक पुराने मित्र पाठक के बीमार पड़ने पर डा० सुरेन्द्र देव को फिर बुलाया जाता है। सुरेन्द्र देव और उनके पिता नरेन्द्र देव के बीच टकराव उत्पन्न हो जाता है। पिता के बहुत कहने सुनने पर अनमने भाव से डा० सुरेन्द्र वहाँ जाते हैं और थोड़ी देर में लौट आते हैं। देर हो जाने के कारण मरीज गुजर जाता है। डा० नरेन्द्र को इससे सदमा पहुँचता है। वह अपने दोस्त की विधवा को सान्त्वना देने के साथ उन्हें दो हजार रुपये का चैक भी दे आते हैं।

एक बड़े जीवन मूल्य का निर्वाह कर जब वे अपने घर लौटते हैं तो उन्हें अपने कमरे में चादर बदली हुई मिलती है "इस पलंग पर रंगीन चादर किसने बिछाई है" चकित स्वर में डा० बुदबुदाता है और नरेन्द्र देव ने जोर से आवाज लगायी है "सुरेन्द्र" | "कम्पाउन्डर" और जवाब में उनका पुत्र डा० सुरेन्द्र बड़े ढीठपन से कहता है...मैं....और इसके साथ अन्दर छिपा यथार्थ भी उभर आता है"। सफेद चादर रोज मैली होती है, रोज बदलनी पड़ती है आखिर इस तरह कितनी चादरें रखी जायेंगी घर में।" और वे उस अपनी इच्छा या चाह के लिए चुनौती मानते हैं।

सुरेन्द्र को वह कह देते हैं कि "तुम अपने लिए कोई दूसरा दवाखाना ढूंढ लो।"

डा० नरेन्द्र देव ने मूल्यों को मात्र आदर्श के रूप में नहीं रहने दिया था, बल्कि मूल्यों को अपने जीवन में उतार लिया था।

इन कठोर श्रम और साधना तथा लगन के जीवन मूल्यों के साथ उनमें कोमलता और सौन्दर्यता के प्रति तथा अन्य कोमल भावों के प्रति एक सहज अनुराग भी था।

डा० नरेन्द्र देव ने अपने जीवन मूल्यों का संरक्षण करते हुये पहले भी दो बार पराजय का सामना किया था। डा० नरेन्द्र के तीन बच्चे थे एक लड़का सुरेन्द्र देव और दो लड़कियाँ अब, आकाश तीनों के लिए उन्होंने अपनी कोठी में दो दो कमरे रिजर्व करवा दिये थे और उन्हें हर प्रकार की छूट दे रखी थी। इस स्वतंत्रता के बावजूद उनकी प्रत्याशा के अनुरूप बच्चे न हुये।

अपने अलग अलग कमरों की दहलीज को अपनी अपनी सम्पत्ति की सरहद मानकर वे अपनी रजधानी में खुद गये। "यह मेरा है, इस पर मेरा अधिकार है..... का भाव उन्होंने अपनी अपनी तरह प्रकट किया कि, यह

उसका है इसमें दूसरे की साझेदारी है" जैसी बातें अखरने लगीं ।

यहीं डा0 नरेन्द्र देव का पहला मोह भंग हुआ था....उन्हें एकबारगी लगा था कि, जिन आधारभूत मूल्यों की रक्षा के लिए उन्होंने अपनी दुनिया दी थी उनका उस पर कोई असर नहीं पड़ा था ।

उन्हें दूसरा तीक्ष्ण अनुभव तब हुआ जब उन्हें अपने एक दिवंगत मित्र के लड़के को अपने संरक्षण में ले लिया और उसी लड़के कौशिक से उनकी लड़की उषा ने छिपकर मन्दिर में जाकर आर्य समाजी रीति से कौशिक से विवाह कर लिया था और यह भेद उन पर तब खुला, जब वह माँ बनने वाली हो गयी ।

डा0 नरेन्द्र देव का दूसरा मोह भंग था...उन्हें उस समय शायद लगा कि, जीवन मूल्यों की रक्षा वे अपनी लगन और आस्था से कर रहे हैं, उसके लिए उन्हें ऐसी कीमत चुकानी पड़ रही है। पर इससे वे टूटे नहीं थे। मूक दर्शक की तरह वे सब देखते रहे थे और उन्होंने सब स्वीकार कर लिया था । पर न मूल्यों से मुँह मोड़ा था, न उनपर प्रश्न, प्रतिप्रश्न उठाये और न वे उनके प्रति आस्था में विचलित हुये थे।

उषा प्रियम्वदा की "वापसी"[8] कहानी पारिवारिक मूल्यों की कहानी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमें भारतीय परिवारों में विघटन की स्थिति दृष्टिगत होती है, अर्थात् परिवारों के स्वरूप में परिवर्तन आया है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से "परिवारों" में किसी प्रकार की अव्यवस्था ही पारिवारिक विघटन है।"[9] चूंकि विघटन से तात्पर्य है पूर्णत्व में परिवर्तन । विस्तृत अर्थों में पारिवारिक विघटन, सदस्यों को एक में बांधनेवाली स्थितियों या क्रियाओं का कमजोर हो जाना, टूट जाना या उनमें असंबद्धता की स्थिति है। इस प्रकार पारिवारिक विघटन में केवल पति पत्नी के ही तनाव नहीं बल्कि पिता पुत्र या अन्य सदस्यों के बीच होने वाले तनाव की भी गणना की जाती है।'[10]

पारिवारिक मूल्यों का धीरे धीरे विघटन हो रहा है। परिवार के सदस्यों का जो आपस में भावनात्मक सम्बन्ध था उसका वर्तमान समय में कोई महत्व नहीं रह गया है। वापसी कहानी आज के समाज का यथार्थ है और यथार्थ सदैव कटु होता है। पिता गजाधर बाबू रिटायर होने के उपरान्त अपने घर लौटते हैं। गजाधर बाबू की वापसी उनके अपने लिए कड़ी यथार्थ है। एक सुखी परिवार में, गजाधर बाबू की वापसी अस्तित्व बाधा बना हुआ है। अब उनकी वापसी ही आनन्द और बहारें ला सकती हैं। पारंपरिक मूल्यों के नैतिक बोध के विघटन की कहानी है।

पारिवारिक सम्बन्ध की बदलती हुई स्थिति की सूचना यह कहानी हमें देती है। प्राचीन काल में वही परिवार सुखी माना जाता था। जिसमें माता पिता तथा बड़े बूढ़े हों लेकिन वर्तमान समय में सुखी परिवार की व्याख्या बदल गई है। उसमें बूढ़ा पिता बाधा स्वरूप ही है। पिता को अपने परिवार में अपने ही बच्चों एवं पत्नी के द्वारा उपेक्षा का सा भाव अनुभव होता है।

"वापसी" के पिता गजाधर बाबू उच्च पराजय की यातना को भोगने वाले प्रतिनिधि व्यक्ति हैं। गजाधर बाबू अपने परिवार के एक बूढ़े सदस्य हैं जिन्होंने अपने परिवार को अपनी कमाई और परिश्रम से ऊँचा उठाया, आज स्वयं अपने परिवार के बीच अस्थायित्व का अनुभव कर रहे हैं। वे रिटायर्ड स्टेशन मास्टर हैं। नौकरी के दौरान अपने परिवार को छोड़ कर कई वर्षों अकेले रहे हैं। कभी समय छुट्टी के दिनों में जब भी घर जाते तो सारा परिवार उनकी उपस्थिति में खिला हुआ रहता, गजाधर बाबू सन्तोष का अनुभव करते। आज रिटायर हो गये हैं और अपने घर शीघ्र लौटना चाहते हैं। आज उन्हें इस उम्र में भी सारी सुखद स्मृतियाँ छेड़ रही हैं।

धीरे धीरे परिवार का नवचेतना की आवाज में शक्ति आती गई और उसके साथ ही परम्परागत धारणाएँ एक एक करके समाप्त होने लगीं। जो शक्ति पहले परिवार की चेतना को अपनी मुट्ठी में जकड़ देती थी वही शक्ति क्षीण होती गई।

गजाधर बाबू की वापसी उनके अपने लिए बड़ी यथार्थ है, क्योंकि हैं वस्तु किन्तु पिता के रूप में परिवार के परम्परागत शक्ति का अंत इसी प्रकार होना था।

पारिवारिक मूल्यों का धीरे धीरे विघटन हो रहा है। परिवार के सदस्यों का जो आपस में भावनात्मक सम्बन्ध था उसका वर्तमान समय में कोई महत्व नहीं रह गया है। वापसी कहानी आज के समाज का यथार्थ है और यथार्थ सदैव कटु होता है।

"परिवार मानव सम्बन्धों की एक महत्वपूर्ण इकाई है। इसमें भी कई पारम्परिक मान्यताएँ आज खोखली सिद्ध हो रही हैं। आज हमें परिवार का रूप विघटित हुआ तो दृष्टिगत हो ही रहा है किन्तु परिवारगत वात्सल्य सेवा श्रद्धा आदि तत्व कहीं दृष्टिगत नहीं होते। आज एक पिता को पुत्र चाहिए इसलिये कि, वह वृद्धावस्था में उसकी सेवा कर सके।"[11]

पारिवारिक मूल्यों के विघटन का बड़ा ही यथार्थ चित्रण प्रस्तुत हुआ है जहाँ पिता अपने परिवार में अजनबी बन जाता है और अन्त में उसे परिवार भी छोड़ना पड़ता है।

"वापसी" कहानी परम्परागत मूल्यों के पराजय की कहानी है। यह एक व्यक्ति की अपने ही द्वारा निर्मित अपने ही परिवार से वापसी की कहानी न होकर खरे पुराने मूल्यों से वापसी और एक नई दिशा में जाने की कहानी है।"[12]

"चीफ की दावत"[13] भीष्म साहनी की बहुचर्चित और आज के जीवन में व्याप्त, हो रहे प्राचीनता के प्रति नकार के भाव की द्योतक है। प्रस्तुत कहानी के सन्दर्भ में डा० नामवर सिंह भीष्म साहनी को सफल कहानीकार मानते हुये लिखते हैं "चीफ की दावत" में अपनी निरक्षर और बूढ़ी माँ ही एक समस्या बन गई, जैसे घर के "फालतू सामान" बड़ी सामान से भी बड़ी समस्या। सामान को छिपाना तो आसान है लेकिन इस जीवित सामान का क्या करे? और इस तरह शामनाथ एक कूड़े की तरह अपनी माँ को इस घर उस घर में छिपाता फिरता है। उधर माँ है कि, लड़के के इस व्यवहार का बुरा नहीं मानती, बल्कि स्वयं ही अपने अस्तित्व से संकुचित हुई जा रही है और लड़के के भले के लिए अपने को यहाँ से वहाँ छिपाती फिरती है। एक विडम्बना यह भी है। परन्तु हुआ यह कि, शामनाथ ने जिस चीज को इतना छिपाया, आखिर में वह छुप नहीं। चीफ ने माँ को देखा ही नहीं बल्कि बुरी हालत में देखा। परन्तु शामनाथ के घबराहट के बावजूद स्थिति सुधर गयी। चीफ माँ से स्वयं मिले और अन्त में शामनाथ ने देखा कि, जिस "सामान" को छिपाने के लिए उन्होंने इतनी परेशानियाँ उठाई, वह छुप ही नहीं सका अपितु हितकर भी साबित हुआ। यहाँ तक कि दावत से भी बढ़कर। यह सबसे बड़ी विडम्बना है। और गहरे जाकर देखें तो माँ केवल एक चरित्र ही नहीं बल्कि प्रतीक भी है। प्रतीक सम्पूर्ण प्राचीन का।"[14]

आधुनिक परिवेश में माँ के प्रति बेटे के बदलते व्यवहारिक पारिवारिक मूल्यों की कहानी है। पुत्र शामनाथ अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए "प्रमोशन" पाने की इच्छा अपनी बूढ़ी माँ जिन्हें आँख से भली भाँति दिखता भी नहीं है फुलकारी बनाकर अपने साहब को देने के लिए आज्ञा देते हैं।

इस कहानी में एक व्यक्ति के दो पक्षों को उभारा है। एक ओर चीफ के अधीनस्थ एक हैसियत रखने वाले कर्मचारी शामनाथ हैं, तो दूसरी ओर

एक बूढ़ा माँ का निर्वाह करने वाले बेटे। यही उनके व्यक्तित्व के दो रूप हैं, जो कहानी में और चित्रित परिवार में उभरते हैं और उस बदलाव तथा अन्तर को प्रतिबिम्बित करते हैं जो इधर नयी पीढ़ी और उससे पूर्व की बुजुर्ग पीढ़ी के मूल्यों में क्रमशः अन्तर आता जा रहा है।"[15]

शामनाथ ने अपने चीफ को खुश करने के लिए एक डिनर पार्टी दी है। बॉस अंग्रेज है और उसे हिन्दुस्तानी चीजों में, हिन्दुस्तानी लोगों में दिलचस्पी है। शामनाथ अपनी माँ को घर के एक कोने में छिपा देते हैं माँ में उन्हें अपना पुरानापन दिखाई देता है, जिसे वह अपने साहब को दिखाना नहीं चाहते या माँ उन्हें उनकी ही मूल स्थिति का खुला एहसास दिला जाती है, और वे इससे कतराते हैं। चेहरे पर झुर्रियाँ, अपने अन्दर बढ़ती उम्र की पीड़ा लिए हुये और अति साधारण वेशभूषा में बूढ़ी माँ उन्हें समय और प्रसंग के विपरीत जान पड़ती है। माँ उसमें अपने ही मूल संस्कारों का प्रतीक बन गई है, जिसके लिए अब वे शर्मिन्दगी महसूस करते हैं। उन्होंने शिक्षा और ऊँचा पदप्राप्त कर आधुनिकता का एक आवरण ओढ़ रखा है जिसने शायद उनकी असलियत को ढँक रखा है। कैसे वे उसे उजागर हो जाने दें? प्राचीन मूल्यों का यह परिवर्तन आज की युवा पीढ़ी में स्पष्ट परिलक्षित होता है कि, वह जिस स्थिति में पढ़े, लिखे, पले जिससे पोषित हुये, आज उसी को नकार रहे हैं।

माँ को साहब के सामने आने की मनाही है....सामने पड़ने से अनर्थ खड़ा हो सकता है। पर जब इतनी ताकीद के बावजूद साहब की नजर माँ पर पड़ जाती है...वे अस्त व्यस्त होकर बरामदे में एक कुर्सी पर पैर लटकाये बैठी हुई हैं..तो शामनाथ का मन खीज और गुस्से से भर उठता है।

माँ के प्रति बेटे की एक प्रधान भूमिका सहज श्रद्धा और समादर भाव की हुआ करती थी, निर्वाह के अतिरिक्त। संस्कार और अनुशासन इस भूमिका

के नियामक हुआ करते थे, और उसका निर्वाह बेटे का प्रमुख कर्तव्य हुआ करता था। यही दायित्व बोध आजीवन माँ बेटे को बाँधे रखता था।

साहब माँ से मिलने के लिए बायाँ हाथ आगे कर देता है तो माँ घबराहट और संकोच के कारण अपना बायाँ हाथ साहब की ओर बढ़ा देती है और अफसरों की देसी स्त्रियों की मखौल बन जाती है। शामनाथ और खीज उठते हैं। साहब के मुँह से आती शराब की बदबू से माँ सिकुड़ी जा रही है, पर वे हाथ भी नहीं हटा सकती, वहाँ से हटने की बात तो दूर है। माँ को लगता है, यहीं नहीं, ऐसी या इसके समानान्तर स्थितियों में भी वे समय और स्थान से विपरीत होती जा रही हैं। या, यह जगह अब उनके लिए नहीं रह गई है। वे तीर्थ यात्रा पर चली जाना चाहती हैं।

माँ से कोई लोकगीत सुनाने का आग्रह किया जाता है तो वे बरबस अपनी सरलता और अबोधता से शादी के अवसर पर गाया जाने वाला पंजाबी लोकगीत गा देती है...अफसर लोग और हिन्दुस्तानी साहबों की बीबियाँ सहसा हँस पड़ती हैं...स्थिति एकदम हास्यास्पद हो उठती है।

एक ओर यह माँ के प्रति ठंडापन है, वे समय के विपरीत या आउट आफ डेट मानी जाती हैं और पुराने युग का स्मृति शेष, पर वहीं उनसे काम निकालने की तरकीबें सोचने में भी उनका बेटा नहीं हिचकिचाता है। "चीफ की दावत" के साहब जब यह चाह प्रकट करता है कि, माँ उनके लिए बेलबूटे कढ़ा हुआ एक अचार तैयार कर दें, तो शामनाथ बड़े उत्साह से उनका प्रस्ताव माँ तक बढ़ा देते हैं और उनकी स्वीकृति लिये बिना या उनकी इच्छा अनिच्छा की परवाह किये बिना ही साहब को वादा भी कर बैठते हैं..उन्हें यह भी ख्याल नहीं होता कि, माँ की बूढ़ी आँखें फुलकारी कैसे बना पायेंगी। साहब को खुश करने का इससे अच्छा मौका और कौन सा हो सकता है और वे उसे कैसे खो सकते हैं।

पार्टी खत्म होने के उपरान्त शामनाथ माँ के पास आते हैं और कहते हैं "ओ अम्मी, तुमने तो आज रंग ला दिया।...साहब तुमसे इतना खुश हुआ कि, क्या कहूँ, ओ अम्मी! अम्मी.. माँ इसी समय अपने हरिद्वार जाने की बात कहती है तो शामनाथ तुरन्त आक्रोश में आ जाते हैं, और उलाहना देते हैं कि, माँ को उनकी जरा भी परवाह नहीं है...कि, साहब को फुलकारी बना कर देने के बजाय वह हरिद्वार जाने की सोच रही है... कि साहब को यदि उपहार न मिले तो उनका प्रमोशन खटाई में पड़ जायेगा।

माँ का दिल पसीज उठता है...वह आखिर माँ है...वह तुरन्त अपना प्रयास कैन्सिल कर देती है और शामनाथ से कहती है, यदि उसकी फुलकारी से उनकी तरक्की हो सकती है तो वह जरूर यहीं रहकर साहब के लिये फुलकारी बनायेगी।

"तो मैं बना दूंगी, बेटा, जैसा बन पड़ेगा बना दूंगी। इसके अलावा वह और कुछ नहीं कह पाती। वह भी भूल जाती है कि, उसकी आंखें कमजोर हैं और उन्हें इस बुढ़ापे में उनपर जोर डालना ठीक नहीं है।

कहानीकार भीष्म साहनी ने बहुत ही बारीकी से इस बदलते परिवेश के यथार्थ मूल्य का चित्रण "चीफ की दावत" में किया है। लड़के के उदासीन, उपेक्षापूर्ण, कठोर दृष्टिकोण के माँ का बेटे के प्रति शुभ दृष्टिकोण प्रदर्शित, स्नेह और बेटे के लिये कुछ भी कर जाने का भाव रखता है। भले परिस्थितियां उसमें अपनी भलाई न भी रह पाती हो। यही माँ की बेटे के प्रति परम्परागत भूमिका भी है और परिस्थितियों के औद्योगिकरण मोड़ ने या पारिवारिक सम्बन्धों के कठोरता और उदासीन रवैये ने उसमें कोई बहुत परिवर्तन पैदा नहीं होने दिया है। माँ अपनी पारम्परिक पारिवारिक मूल्यों की भूमिका निभाये लिये जाती है।

कहानीकार "शानी" की "एक नाव के यात्री"[17] कहानी पारिवारिक और सामाजिक भूमिकाओं और विघटन मनःस्थिति को मद्देनजर रखते हुये व्यापक मानव सम्बन्ध को परखने और विश्लेषित करने की कहानी है। परम्परागत नैतिक मूल्यों के दबाव में सच्चाई को स्वीकृत न करने की असमर्थता के कारण आधुनिक व्यक्ति के जीवन में तनाव के लिए एक स्थिति पैदा हो जाती है। जिसके कारण रज्जन को स्टेशन पर बीवी से कहना पड़ता है कि, वह सलमा के मन पर पड़े गलत प्रभाव को हटाने हेतु "तू अगर उसे बातों बातों में यह विश्वास दिला दे कि, हम इंग्लैण्ड से घर भर को कितनी खुशी हुई है तो..."[18]

"एक नाव के यात्री" परिवारगत मूल्यों के पराजय की कहानी है। नई पीढ़ी का बेटा अपने बाप के प्रति कृतज्ञता के बोध से भीगी भावनाओं का बेहद अपने इज़हार नहीं करता। वह अपनी स्वतन्त्रता पर विश्वास रखता है। रज्जन अपने घर हिन्दुस्तान आने के बावजूद कई दिनों के उपरान्त आया क्योंकि घर में सभी सदस्य उसका इन्तजार करते करते थक चुके थे। आने पर वह माता पिता से प्यार की ज्यादा उम्मीद कर रहा था, और उसे अपनी कर्तव्यपरायणता की जरा भी बोध नहीं हुआ क्योंकि वृद्धावस्था में माता पिता को अपने बेटे के प्यार की कितनी आशाएं होती हैं। और वहाँ रज्जन जो कि इंग्लैण्ड में रहकर अपने पिता के अन्धी आँखों के प्रति इतना भावुक होता है और अपने साथ इंग्लैण्ड ले जाकर इलाज कराने की बात पत्र में लिखता है। और घर आने पर केवल औपचारिक बातें ही करता है।

"रज्जन जाने की कह रहा था।" उस रात बीवी ने पापा के कमरे में माँ को कहते सुना।

"किसके जाने की?" पापा ने चौंक कर पूछा, "बेटे" "नहीं", दूसरी और देखकर माँ धीरे से बोली।"[19] पिता के ये वाक्य मूल्यों के विघटन की प्रक्रिया को और उसकी अनिवार्यता को सूचित करते हैं।

जबकि, रज्जन के आने के उपरान्त दोस्तों ने यह कहना शुरू कर दिया था, "अरे भाई, अब तुम यहाँ हो ही कितने दिन।" दूसरे मित्र सक्सेना ने कहा, "चन्द दिन ही तो बस" रज्जन आ गया है। तुम्हें अपने साथ ले जाये बिना थोड़े ही मानेगा।"[20] यहाँ पापा को और उनके दोस्तों को यह उम्मीद थी कि, रज्जन अपने पापा को इंग्लैण्ड अपने साथ ले जायेगा।

वास्तविकता में रज्जन द्वारा पापा को स्पष्ट निराशा ही हाथ लगती है इसीलिए रज्जन द्वारा लाया गया कोट को उसके सामने नहीं पहनते। बल्कि जाने के उपरान्त पहनते हैं और पूछते हैं इसका रंग कैसा है।

इस कहानी के माध्यम से यह स्पष्ट हो जाता है कि, पारिवारिक मूल्यों के अन्तर्गत मानवता का इतना अभाव हो गया है कि, एक बेटा अपने बाप के प्रति पूर्ण तो क्या सामान्य कर्तव्य भी नहीं निभाता। बल्कि वृद्ध माँ बाप को एक बोझ सा अनुभव करने लगता है।

"आज के युग ने अनेक परंपरागत जीवन मूल्यों के विघटन के उपरान्त जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण मूल्य दिया है वह है व्यक्तिसत्ता की चेतना। आज व्यक्ति मात्र एक सामाजिक या पारिवारिक इकाई न होकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है। वह माता पिता, पति पत्नी या भाई बहन होने से पूर्व एक पुरुष या स्त्री है जो इन आरोपित सम्बन्धों में अपने व्यक्तित्व को विलीन नहीं कर देता अपितु उसकी रक्षा के लिये सतत प्रयत्नशील रहता है। "कमलेश्वर के "तलाश"[21] की नायिका को भी अपने इसी खोए हुये व्यक्तित्व की तलाश है, जो विभिन्न आरोपित सम्बन्धों में लुप्त हो गया है। वह माँ होने के साथ ही एक नारी भी है जो अपने पति की मृत्यु के साथ ही अपनी नारी सुलभ भावनाओं को दफना नहीं देती अपितु उन्हें जीवित रखना चाहती है। उसका प्रत्येक कार्य मानों उस छिपे हुये नारीत्व को ही जीवित करने का प्रयास है। उसकी पुत्री सुमी अपनी माँ की इस तलाश से परिचित है, और यथासम्भव उसमें सहायक होने का प्रयास करती है। वह जानती है कि, माँ भी एक

व्याकुलता सामाजिक दृष्टि से अनैतिक है, किन्तु फिर भी वह इसके लिए उन्हें दोषी नहीं ठहराती अपितु माँ की स्वतन्त्रता में बाधक न बनने के विचार से ही घर छोड़कर चली जाती है।"[22]

आधुनिक नारी का एक रूप विद्रोह का है। आज वैधव्य के कारण नारी घुट घुटकर जीना पसन्द नहीं करती। वह अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों को दबाना नहीं चाहती। वह अब इस दृष्टि से समाज का किसी प्रकार का बन्धन नहीं स्वीकारती। "कुमी को अपनी विधवा माँ के अनैतिक सम्बन्धों का पता है। फिर भी वह अनभिज्ञ सी बनकर माँ के प्रति आत्मीयता प्रदर्शित करती है। वह एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाती है, जहाँ अलग रहकर, माँ को अधिक खुला वातावरण दे सके। अलग रहकर माँ बेटी के सम्बन्ध कुछ ऐसे निर्मम एवं आत्मिक हो जाते हैं, जैसे दोनों में कोई रिश्ता ही नहीं रहा हो। कमलेश्वर की "तलाश" आधुनिक नारी के इस अनिवार्य व्यक्तित्व कोण को स्थापित करती है।"[23]

बदलते सन्दर्भ में आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व और मूल्यों के टकराहट की यह एक सांकेतिक कहानी है।

कुमी अपने माँ की प्रत्येक जरूरत एवं आवश्यकता को पूर्ण करती है। माँ की तात्कालिक जिन्दगी के प्रति भी कुमी दृष्टि रखती है। कुमी किसी नये भावात्मक कुल में बंधती जा रही है। अपने आप में अकेली रहते हुये भी वह अपनी इस आन्तरिक माँग के प्रति सचेत भी है, सहिष्णु भी। उसके रहते उन्हें कैसे असुविधा होती है उसे देखकर मम्मी को पापा की याद हो आती है और उदास हो जाती है।

कुमी का हॉस्टल को जाना, दोहरे दायित्व बोध से प्रेरित है। माँ को उन्मुक्तता दे पाना और अपने साथ पापा की तमाम स्मृतियों को उठा

दूर ले जाना, और वहाँ से अपने आप को ले आकर पापा को अपने साथ ले आना, क्योंकि अब वहाँ उनकी प्रासंगिकता शेष नहीं रही है....पापा रुके हुये, हैं न वह आते हैं....जाते हैं।

कहानी की शुरुआत उस दिन से होती है, जिस सुबह सुमी को मम्मी के कमरे में काफी के खाली प्याले में जली हुई तीलियाँ, राख और सिगरेट के टुकड़े मिलते हैं....बरामदे में आकर, कमरे के बाहर वाले दरवाजे को खुला देखकर उसे लगा था, जैसे मम्मी अपनी सुबह कहीं चली गयी पर, कमरे में आकर मम्मी उसे थकी हुई, बेखबर सोई हुई मिलती है....उनके चेहरे पर मासूमियत दिखाई देती है।

उसे याद आती है, रात को मम्मी और मिस्टर चन्द्रा को उसने काफी बनाकर दी थी....जब वे रजिस्टरों के बीच बातचीत में कुछ ऐसे तल्लीन रहे थे और मम्मी ने उससे कहा था तू सो जा सुमी...हमें तो अभी दो तीन घंटे और लग जायेंगे।

मम्मी और सुमी का विलुप्त होता संवाद दो पीढ़ियों के बीच समाते जा रहे [illegible] का ही द्योतक है।

पापा का न होना सुमी को माँ की अपेक्षा अधिक सालता है। इस तथ्य में स्वातंत्र्योपरान्त मूल्यों की बदलती स्थिति का अन्तर स्पष्ट होता है।

पापा मम्मी के जन्म दिन पर फूलों का गुच्छा भेंट करते थे और ग्यारह वर्ष पहले बड़े प्यार से उन्होंने डायरी में मम्मी के बारे में कुछ लिखा था और उन्हें जीवन भर सुख देने की शपथ खाई थी। सुमी पापा का छोड़ा हुआ काम पूरा कर रही है।

और, कभी कभी मम्मी सुमी को देखकर ऐसे पुकार उठती थी, जैसे पापा आ गये हों और धीरे धीरे सारा कुछ एक ठंडी औपचारिकता में अपने लगता है जैसे ये दोनों धीरे धीरे अपने अपने अकेलेपन में घिरती चली गई है।

तलाश नई पीढ़ी की नई चेतना और आधुनिक भूमिका के आविर्भाव की कहानी है। क्योंकि सुमी में भी संवेदना है वह माँ की भावनाओं को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समझती है और उसमें अपने को बाधक सा महसूस करती है और माँ के अस्पष्ट वक्तव्य को....."सुमी सचमुच अपने की कितनी याद दिला जाती है" समझ कर होस्टल चली जाती है।

कहानीकार कमलेश्वर जी ने इस कहानी में एक नया मूल्य स्थापित किया है, कि, आज के युग में माँ (स्त्री) को भी अपने समय की माँग को पूरा करने का पूर्ण अधिकार है। माँ बेटी में कोई फर्क नहीं है। बेटी की प्रत्येक जरूरत इच्छाओं की पूर्ति करने को माँ सदैव इच्छुक रहती है तो बेटी भी माँ के प्रत्येक आवश्यकताओं को पूर्णतः ध्यान में रखे क्योंकि पुरुष ही स्त्री की भावनाओं को समझे ऐसा ही नहीं है, स्त्री भी, स्त्री की भावनाओं और जरूरत को समझ सकती है। और उसी अनुसार अपने को व्यवस्थित कर सकती है।

जैसा कि, तलाश कहानी में कमलेश्वर ने यही मूल्य स्थापित किया है कि, अवस्थानुसार स्त्री चाहे वह माँ ही क्यों न हो अपने ढंग से अपना जीवन जी सकती है और इस कार्य में बेटी माँ की बाधक न बन कर सहयोगी बने।

कमलेश्वर इस विधा के माध्यम से बदलते नैतिक, सामाजिक और पारिवारिक मूल्यों को इस कहानी में प्रस्तुत करते हैं। और दूसरे स्तर पर यह कहानी माँ बेटी के सम्बन्धों को उद्घाटित करती है।

को अन्य भौतिक वस्तुओं में पाने की कोशिश करना आज के इस वैज्ञानिक युग की सबसे बड़ी विडम्बना है। परन्तु धीरे धीरे यह युग मम्मी की तरह अनुभव कर रहा है कि, यह तलाश प्राणलेवी तलाश है क्योंकि मम्मी ने अन्त में मातृत्व और वात्सल्य को ही स्वीकारा है। इसी कारण वह फिर उन चिरन्तन सम्बन्धों की ओर मुड़ रही है।

"टूटना"[24] कहानी में राजेन्द्र यादव ने पति पत्नी के सम्बन्ध और पति पत्नी के बदलते दृष्टिकोण और आकांक्षाएँ एवं बदलते मूल्य एवं मूल्यहीनता की स्थिति को चित्रित किया है। पति की पत्नी के प्रति अधिकारवादी प्रवृत्ति का आधुनिक समय में ह्रास हुआ है।

"टूटना" कहानी अभिजात्य वर्ग के मूल्यों और मध्यवर्गीय पारिवारिक मूल्यों की कहानी है। एक गरीब घर के निम्न मध्यवर्गीय सभ्यता में पला हुआ, बुद्धिमान युवक, किशोर के अपने अन्दर उत्पन्न हुये हीन ग्रन्थि का प्रभाव किस कदर उसको अपने में तोड़ता है, उसका चित्रण कथाकार ने बड़ी सफलता से किया है। कहानी एक धुरी पर चलती है लेकिन इस धुरी को चलाने वाले पात्र तीन हैं। किशोर, लीना और दीक्षित साहब, तीनों में बहुत ही असमानता है। लीना एक सम्भ्रान्त परिवार की और कमिश्नर दीक्षित साहब की कन्या है, जो कि, एक साधारण लड़के किशोर से अपनी पसन्द से विवाह करती है।

"नारी और पुरुष अपनी अपनी नयी पूर्ण रूप की खोज में प्रयत्नशील हैं, किन्तु खोज की यह दिशा उनके व्यक्तित्वों को खंडित कर रही है। इस खोज में आधुनिक नारी के कई चित्र उभर रहे हैं। परम्परागत वर्जनाओं से आधुनिक नारी धीरे धीरे मुक्त हो रही है, नवीन समस्याओं का सामना करने लगी है। आर्थिक स्वावलम्बिता और मानसिक स्वतंत्रता के कारण वह

जीवन को अच्छा या बुरा बनाने के लिए स्वतंत्र है। किन्तु इस आत्म निर्भरता का यह मतलब नहीं कि, वह बिना पुरुष के सम्पर्क के जीवन व्यतीत कर सकती है। पुरुष के साथ रहना उसकी प्राकृतिक आवश्यकता है चाहे वह परम्परागत पत्नी धर्म का निर्वाहन करती हो। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसे कई विपरीत स्थितियों का सामना करना पड़ता है। विचित्र बात यह है कि, आधुनिक स्त्री, चाहे कितनी ही स्वतंत्र हो, अब भी पुरुष संस्कार से आक्रान्त है। इसका एक कारण शायद यह है कि, हजारों वर्षों की परम्परा से पुरुष संस्कार का प्रभाव स्त्री के मानसिक संगठन का हिस्सा बन कर रह गया है। इस मानसिक गुलामी से मुक्ति पाना इतनी जल्दी संभव भी नहीं है। दूसरा कारण यह है कि, पुरुष अब भी, स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व का हिमायती होकर भी, स्त्री को पुरुष संस्कार से मुक्त नहीं होने देता"।[25]

विवाह के उपरान्त पति पत्नी में समानता परक मूल्यों में फिर व्यावहारिक मूल्यों के साथ साथ संस्कारगत मूल्यों में असमानता के कारण आपसी तनाव प्रारम्भ हो जाता है। मीना पर भौतिकता का अत्यधिक प्रभाव है। मीना जजबात में आकर किशोर से विवाहबद्ध हो जाती है। लेकिन विवाहोपरान्त मीना किशोर के साथ सामंजस्य नहीं कर पाती है, दोनों के अतः संस्कारगत मूल्यों का जो अन्तर था वह मिट नहीं रहा था। क्योंकि वैवाहिक मूल्यों को बनाये रखने के लिए संस्कारगत समानता आवश्यक होती है।

पुरुष कितना ही असभ्य क्यों न हो लेकिन वह अपनी पत्नी के प्रति समस्त उत्तरदायित्वों को स्वयं वहन करना चाहता है, दीक्षित साहब अपनी कन्या को विदा करते समय पाँच हजार का चेक देते हैं, किशोर को पाँच हजार का चेक इस लिए टीसता है कि, यह विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध हुआ था। वह दीक्षित साहब की उन आँखों को कभी नहीं भूल सका, यह डर उसकी रग रग में व्याप्त हो गया।

धर्म तथा नैतिकता का आज के युग में कोई महत्त्व नहीं रह गया है। विज्ञान के उदय से सबसे बड़ा परिवर्तन यही हुआ कि, उस ईश्वर की सत्ता पर से मनुष्य का विश्वास उठ गया जो कभी उसके जीवन का केन्द्र था। ईश्वरीय सत्ता का महत्त्व कम होते ही सभी धार्मिक मूल्य एक एक करके टूटने लगे। मनुष्य को संचालित करने वाली महती शक्ति आत्मा पर से भी लोगों का विश्वास उठ गया। मनोविज्ञान ने मनुष्य को आत्मा के स्थान पर अन्तरात्मा या विवेक (कान्शियन्स) से परिचित कराया। अब मनुष्य किसी भी धार्मिक मूल्य की अन्ध स्वीकृति के स्थान पर उसे तर्क की कसौटी पर कसने लगा।

सामाजिक धार्मिक मूल्यों के साथ साथ नैतिक मूल्यों में भी अन्तर आया। आज नैतिकता का बहु प्रचलित अर्थ प्रायः समाप्त हो चुका है और उसे एक नवीन संदर्भ में ग्रहण किया जाता है। विदेशों में हुआ अन्तरराष्ट्रीय काम सेक्स तथा सम्मिलित दाम्पत्य जीवन के प्रयोगों ने वैसे इस शब्द को ही व्यर्थ घोषित कर दिया। पश्चिमी समाज में यह शब्द पहले ही बहिष्कृत हो चुका है। वस्तुतः "सेक्स" अब पाप बोध देने वाली क्रिया नहीं, एक वास्तविक और अनिवार्य आवश्यकता के रूप में स्वीकृत और समादृत है।" विवाह के लिए अब किसी प्रकार का बन्धन नहीं रहा। नारी के पुरुष मित्रों को और पुरुष के नारी मित्रों को काफी सहजता से लिया जाने लगा। प्रेम अब एक नितान्त व्यक्तिगत अनुभव के रूप में स्वीकृत है, जिसकी नैतिक या सामाजिक मूल्यों के अनुरूप परिणति अनिवार्य नहीं है। एक नये कहानीकार के लिए नैतिकता मात्र एक छलावा है जिसका आज के जीवन में कोई अर्थ नहीं रह गया है। इन कहानीकारों की रचनाओं में परम्परागत धार्मिक नैतिक मूल्यों के विघटन के विविध स्वरूप चित्रित हुए हैं।

मन्नू भण्डारी की कहानी "ऊँचाई"[30] में मूल्य संघर्ष का कारण है। नारी की शारीरिक पवित्रता का वह परम्परागत मूल्य जिसका भारतीय समाज

में आरम्भ से ही विशेष महत्व रहा है। यह मूल्य भारतीय नारी के संस्कारों में इतनी गहराई से पैठा हुआ है कि, सामान्य परिस्थितियों में वह आज भी इसके उल्लंघन का साहस नहीं जुटा पाती। किन्तु इस कहानी की नायिका एक ऐसी नारी है जो इस परम्परागत नैतिक मूल्य का उल्लंघन ही नहीं करती अपितु अपने पति के सामने स्पष्ट शब्दों में उसे स्वीकारने का दुःसाहस भी करती है। वस्तुतः उसके और उसके पति के जीवन मूल्यों में बहुत अन्तर है। उसके मूल्यों के अनुसार यदि कोई नारी परिस्थिति वश कुछ क्षणों के लिए किसी पुरुष को अपना शरीर अर्पित कर भी देती है तब भी उसके हृदय की जिस ऊँचाई पर उसके पति की प्रतिमा स्थापित होती है वहाँ कोई नहीं आ सकता । इसीलिये वह झूठा पश्चाताप दिखाकर क्षमा याचना द्वारा अपने भविष्य को सुरक्षित रखने के स्थान पर यही बेहतर समझती है कि, यदि "वैवाहिक सम्बन्धों का आधार इतना शिथिल है, इतना कमजोर है कि, एक झटके से झटके को भी संभाल नहीं सकता, तो सचमुच उसे टूट जाना चाहिए।" मूल्यों का यह अन्तर ही उसके संघर्ष का कारण बन जाता है।

किन्तु प्रभाकर की कहानी "ठेका" में भी परंपरागत नैतिक मूल्यों के सन्दर्भ में ही यह संघर्ष उभरता है। कहानी में लेखक ने दिखाया है कि, किस प्रकार आज के "इस अर्थ आधारित समाज में पति प्रेम भी बन सकता है और अभिसार भी" और वह भी स्वयं पति की इच्छा से। आर्थिक संकट से ग्रस्त आज का पुरुष स्वयं यह चाहता है कि, उसकी पत्नी का बड़े बड़े लोगों से परिचय हो क्योंकि वह जानता है कि, आज के समाज में पति की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करने में उसकी पत्नी की इस सामाजिकता का कितना बड़ा हाथ है। इस कहानी का नायक भी इसी आधुनिक समाज का एक अंग होने के कारण अपनी खूबसूरत पत्नी की सामाजिकता के बल पर ही आगे बढ़ने के स्वप्न देख रहा है। लेकिन जिस दिन उसकी पत्नी उसके बिना पूछे उसके अफसर के लिये चली जाती है उस दिन उसका दबा हुआ पुरुषत्व हुंकार कर उठता है और उस नैतिकता के वह सभी परम्परागत मूल्य उसके सामने आ जाते हैं, जिनकी ओर उसने पहले कभी ध्यान नहीं दिया था। किन्तु दूसरे ही क्षण उसकी पत्नी

अमरकान्त की "निर्वासित" कहानी गाँव के एक छोटे परिवार में [illegible] की तनाव पूर्ण स्थिति के बीच पति पत्नी सम्बन्धों में अपनी अर्थवत्ता खोते जाते सम्बन्धों के अलगाव, बिखराव और पत्नी के आहत को चुनौती मानकर परिवार से निर्वासित हुये पति की यातना और मनोदशा को मुखर करती है।" "निर्वासित" का पति एक बार नहीं बल्कि दो बार अपने आपको निर्वासित अनुभव करता है।

पत्नी पति के निर्वासन के लिए अपने आपको जिम्मेदार मानकर और पति के दुःख में घुल घुलकर बाद में स्वयं अपने आपको सदा के लिए निर्वासित कर जाती है। कहानी शुरू होती है। बहू जी के सामने बैठकर उनके इसी प्रश्न से कि तुम कहाँ से कहाँ गये, बेटू।" तुम्हारे बाल बच्चे कहाँ हैं? उसने सारा किस्सा बतलाया दिया था। इसी बिन्दु पर आकर उसे अपनी पुरानी जीवनी अक्षरशः याद हो आयी थी। जिसे वह अब तक समझता था कि, वह बिसार चुका है।

तीन साल पहले हमारे गाँव में अकाल पड़ा था उस साल तो सावन भादों भी बिना पानी के ही निकल गये। दोनों भाई काम के लिये बाहर जाते और सांझ को हाथ हिलाते हुये वापिस आ जाते। घर आते हुये बहुत शर्म महसूस होती। बेटू की मेहरारू भी बाबू लोगों के यहाँ काम धाम करने लगी थी। वहाँ से उसे कुछ मिल मिला जाता था, पर वह काफी नहीं होता था और इस प्रकार दिन में एक या आधी रोटी खाकर और रात में उपवास करके ही बिताना पड़ता था।

नियति ने बेटू को बीमार भी कर दिया। दो माह तक खाट पर पड़ा रहा तब कुछ सोचता रहा। इसी बीमारी ने उसे चिड़चिड़ा और क्रोधी

कई महीने बाद जब गेंदु के पास बहुत पैसे हो गये थे तो बातों बातों में एक दिन छः नम्बर वाली बहू जी को अपनी कहानी सुना बैठा था..करुणा से उनकी आँखों में आँसू भर आये थे। उन्होंने ही उसे अपनी गलती महसूस करवायी थी। उसने अपने भाई कुंदन के पास एक चिट्ठी डाली । सौ रुपये का मनीआर्डर भी वह कर आया था। बार बार भुलाई हुई पत्नी का चेहरा बार बार आँखों के सामने आने लगा ।

पन्द्रह बीस दिन बाद उसका भाई कुंदन खुद उसके पास आ पहुँचा था फिर रोते हुये कुंदन ने बताया कि भाभी अब नहीं रही । भाई की बात से यह जानकर कि, बेचारी उसी प्रसूति के कष्ट में ही दुनिया से निर्वासित हो गयी। तो पश्चाताप और दुःख की आग में झुलसा हुआ गेंदु एक बार फिर अपने आप को निर्वासित अनुभव करता है। "अपने क्रोध और अज्ञान से मैं अपने को उससे बड़ा समझता रहा, पर वह सबको तुच्छ करके चली गयी थी । उसकी पत्नी सचमुच उससे बड़ी हो गयी है..। वह सबको तुच्छ करके चली गई है और अनुभूति के इस चरम बिन्दु पर आकर उसे ऐसे लगता है वह एक बार फिर निर्वासित हो गया है अपने आप से ।

यथार्थवादी भावबोध लेकर लिखी गई अमरकान्त की निर्वासित कहानी पुरुषों की कुंठाओं के परिप्रेक्ष्य में एक अद्वितीय कहानी है।

मन्नू भंडारी की "तीसरा आदमी"[33] कहानी में बदलते स्त्री पुरुष सम्बन्धों में, आज भी पुरुष किसी हीन मनोग्रन्थि का शिकार है। वह स्त्री स्वातन्त्र्य की बात करता है, स्त्री की स्वतन्त्रता का हिमायती भी है, किन्तु इस सहानुभूति की उसकी एक सीमा है। वह अपनी हद तक पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग करता है पर स्त्री को स्वतन्त्रता देने के पक्ष में अब भी नहीं है। मानव

यह है कि, जब नैवल स्वातन्त्र्य की यह बात करता है तब उसका मतलब होता होता है कि, उसे अपनी पत्नी के अलावा और किसी भी स्त्री के साथ सम्बन्ध रखने का अधिकार है। किन्तु अपनी पत्नी को दूसरे पुरुष के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की बात वह बर्दाश्त नहीं कर सकता। एक ओर स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास और दूसरी ओर पुरुष का एकपक्षीय दृष्टिकोण इन दोनों के तनावों के बीच आधुनिक स्त्री पुरुष सम्बन्ध पनप रहे हैं। कभी कभी ये तनाव इतने तीव्र हो जाते हैं कि, सम्बन्ध टूट जाते हैं।

कई बार इन तनावों के कारण पुरुष के मन में अपनी पत्नी को लेकर निराधार भ्रम और सन्देह पैदा हो जाता है। जिसका परिणाम सम्बन्धों के विघटन में भी हो सकता है या पुरुष में ही ग्रन्थि के निर्माण में भी हो सकता है। ऐसे समय पुरुष अपनी पत्नी के किसी दूसरे पुरुष से परिचित सम्बन्धों का गलत अर्थ ले सकता है और हर एक के लिए कोई न कोई दलील ढूँढता हुआ, अपने सन्देह को जस्टीफाई करने की कोशिश करता है।

सतीश इसी हीन ग्रन्थि का शिकार है। आत्म विश्वास के खो चुकने के बाद सतीश अपनी पत्नी शकुन पर शक करने लगता है। उस पत्नी पर जिसने जीवन में उसे प्यार दिया है, जो उसकी बाहों के आगोश के बिना एक रात भी नहीं सो सकती। दो साल तक कोई बच्चा न होने के कारण शकुन डाक्टर की राय लेती है। डाक्टर के बताने पर कि, वह उसके पति को एक बार डाक्टर के पास भेजने के लिए कह दे, सतीश के मन में स्वयं के प्रति एक हीन ग्रन्थि घर कर लेती है। कभी कभी वह अपने आपको नपुंसक समझने लगता है। शकुन के एक परिचित मित्र आलोक जब उसके घर शकुन से मिलने आता है तब सतीश के मन में शकुन को लेकर कई गन्दी शंकाएं निर्माण होने लगती हैं। वह दफ्तर में निश्चिन्त बैठ नहीं सकता। लौट आता है, पर बन्द घर में दाखिल

होने की हिम्मत नहीं करता ।

भ्रम और सन्देह के भयानक जाल में सतीश इतना फँसता चला जाता है कि, उसमें से निकलना उसके लिए कठिन हो जाता है। आलोक और शकुन के बीच किसी भी सामान्य वार्तालाप का वह गन्दा अर्थ लगाने लगता है। उसे लगता है कि, वह स्वयं ही पौरुषहीन है। कोई मर्द का बच्चा होता तो लात मारता दरवाज़े पर और चोटी पकड़कर बाहर कर देता शकुन को और दो झापड़ मारता उस लड़के को ।

सतीश के सारे अस्तित्व को बुरी तरह मथता हुआ उसका शक पूरी तरह उसके मन में जम गया, और उसे विश्वास होने लगा कि, वह पुरुष नहीं है....इस लिए तो उसने स्वयं को डाक्टर को नहीं दिखाया...ठीक ही है, कौन औरत ऐसे नामर्द की पत्नी होकर रहना पसंद करेगी ? जब उसके निराधार शक को और कोई दलील नहीं मिलती तो सन्तोष कर लेता है कि, आलोक ने यह सब "एक्टिंग" की थी, जैसा कि, स्वयं आलोक ने ही उसे बताया था कि लेखकों को कहानी लिखने के लिए "एक्टिंग" करके अनुभवों की सामग्री जमा करनी पड़ती है।

इस प्रकार इस कहानी में नर कहाने के पति की मानसिक कमजोरी का एक पहलू स्पष्ट हुआ है। वस्तुतः सच्चाई कुछ भी नहीं होती, सब शक ही शक होता है और उसका भी कोई ठोस आधार नहीं होता । पर किया क्या जाए, पुरुष अब भी इस मानस ग्रन्थि से मुक्त नहीं हुआ है।"[34]

आज के युग में पति पत्नी के सम्बन्धों में जो सबसे बड़ा परिवर्तन आया है वह यह कि, एक दूसरे पर एकाधिकार का वह परंपरागत रूप अब शिथिल होता जा रहा है। इस रूप का महत्त्व केवल तभी तक था जबकि पत्नी तथा पति दोनों के आर्थिक निर्वाह भिन्न थे। एक घर की स्वामिनी थी और

दूसरा बाहर का। किन्तु जिस दिन नारी ने घर की चहारदीवारी के बाहर कदम रखा उस दिन से पर पुरुष की परछाई से बचने का मूल्य अपने आप ही समाप्त हो गया। इसीलिये पहले जहाँ ज़रा से सन्देह पर ही व्यक्ति घर में एक तूफान खड़ा कर देता था वहाँ आज का व्यक्ति संदेह की स्थिति के मध्य भी सहज भाव से जीने का प्रयास करता है। वह जानता है कि, आधुनिक युग में किसी को बंधनों में बांध कर नहीं रखा जा सकता। इसीलिये वह पारिवारिक तथा मानसिक शान्ति बनाए रखने के लिये यथासम्भव परिस्थितियों से समझौता करने का प्रयास करता है। इस कहानी में पुरुष प्रधान संस्कृति और अधिकार चेतना, में द्वन्द्व है। लेकिन जब उसकी पत्नी डा0 के पास जाने की सलाह देती है तो उसका आत्मबोध बदल जाता है। वह हीनभावना से ग्रसित होता जाता है।

हीनग्रन्थि के विकसित होने पर उसकी मानसिकता में गिरावट आ जाती है। अपनी कमजोरी को ढंकने के लिये वह पत्नी को संदिग्ध दृष्टि से देखने लगता है। इस प्रकार मन्नू भण्डारी की प्रस्तुत कहानी मूल्य और मूल्यहीनता के द्वन्द्व को अभिव्यक्ति देती है। कहानी के बहुचर्चित होने का कारण मुख्यतः यह है कि, इसमें पुरुष की अधिकार चेतना को यथार्थ कसौटी के रूप में रख दिया गया है।

सुशीला की "रहा सहा" कहानी भौतिकता के अभिनव मानव मूल्यों के संसार में पली हुई एक लड़की के उन नये मानव मूल्यों को "एडजस्ट" न कर पाने की असमर्थता को प्रतिध्वनित करती है...साथ ही पारम्परिक और भौतिक मूल्यों के बीच एक द्वन्द्व को उभारती है...यह द्वन्द्व दो पीढ़ियों के बीच का द्वन्द्व मात्र नहीं है। एक ओर वह विभिन्न पारम्परिक मूल्यों के प्रभाव में पली हुई लड़की और दूसरी ओर मूल्यों से उदासीन, सम्भवतः सम्पूर्ण मूल्य चेतना के प्रति आस्थाहीन पुरुष के बीच टकराव की कहानी है।

सुधीर की पत्नी शशि इस कहानी में सांसारिक भावनाओं को सँजोये हुये पारम्परिक मूल्यों का निर्वाह कर रही है।

सुधीर शुक्ला एक प्रतिष्ठित व्यापार संस्था में सिनियर एक्जक्युटिव है। वह अपनी इस पोस्ट पर अपनी योग्यता, क्षमता, श्रम और लगन से पहुँचा है । सुधीर के जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य अपने "अहम्" की सर्वोत्कृष्ठ सन्तुष्टि है।

इस "अहम्" का प्रारम्भ किसी छोटी बड़ी आत्मतुष्टि से हुई थी, बहुत दिन पहले जब वह शशि के साथ घूमने जाता था, तो कभी उसे किसी भिखारी को पैसे देने लगता था.....किसी बुढ़िया को रास्ता पार कराने लग जाता या किसी भीख माँगने वाले की हथेली पर पैसा रख देता और उसे आदेश देता.....देख बेटा ये सिर्फ तुझे अपने ऊपर खर्च करना है अपनी माँ को मत देना ....।

सुधीर का यह आत्मतुष्टि सोचने वाला व्यवहार धीरे धीरे "चरम अहम्" व्यवहार में बदल गया । सुधीर का यह अहम्वादी व्यवहार उसे अपनी "रेस" में और भी तेज दौड़ने को विवश कर देता है। सुधीर के इस रेस में आधुनिक मूल्य और भी सहायक हो जाते हैं। सुधीर की रेस निरन्तर चलती रहती है। वह अपने प्रतिद्वन्दी को पीछे करना चाहता है।

क्योंकि इस लक्ष्य की प्राप्ति से सन्तुष्टि नहीं होती, एकबाद दूसरा लक्ष्य सामने आता जाता है। आधुनिक मूल्यों की यह स्वाभाविक स्थिति है ।

अपनी पत्नी शशि के भावनाओं का ध्यान रख पाने का न उसमें कोई अवकाश है और न वह ऐसे अवकाश की कोई उपयोगिता समझता है और

लेखिका ने आधुनिक समाज के एक व्यापक सत्य को उद्घाटित किया है और आधुनिकता के उन्मुक्त समाज में एक विशिष्ट वर्ग का चित्रण किया है। साथ ही मशीन की तरह उस तेज गति का चित्रण भी किया है जिसमें सिर्फ लक्ष्यों की ओर बढ़ने की बेतहाशा दौड़ है और जिसमें वैयक्तिक कोमल भावनायें रौंदी जाती रहती हैं। इस आपाधापी में प्रेम, अनुराग, मोह, पारस्परिक लगाव जैसी कोमल भावनाओं के लिए कोई समय नहीं है और न शायद मन रह पाता है। आधुनिक संस्कृति में इन भावनाशील जीवन मूल्यों का भला क्या स्थान? यहाँ तो ठोस, व्यावहारिक मूल्य चाहिए जिनके बल पर भौतिक प्रतिष्ठा मिल सके।

सुधीर पारम्परिक मूल्यों से मुक्त हो चुका है। उसने आधुनिकता को अपना कर मूल्यों के मूल्यावबोध से अपने आपको जोड़ रखा है।

सेल कहानी सामाजिक और कथ्यगत प्रतिबद्धता के कारण बहुत ही श्रेष्ठ कहानी है। सेल कहानी में भौतिकता भी एक अभिन्न मानव मूल्य के रूप में प्रस्थापित किया गया है। वर्तमान युग में मनुष्य अधिक से अधिक भौतिक संसाधनों को जुटाने की होड़ में लगा हुआ है। वह इतना महत्त्वाकांक्षी हो गया है कि, उसका बस चले तो समूचे आसमान को अपने बाहों में समेट ले, अपनी इस अभिलाषा के लिए वह अपने को भावनात्मक रिश्तों से नितान्त मुक्त कर लेना चाहता है। इसके लिए पारिवारिक नाते रिश्ते अपनी अर्थवत्ता खो चुके होते हैं। इस कहानी में सुधीर को प्रतीक रूप में ऐसे ही महत्त्वाकांक्षियों के प्रतिनिधि के रूप में अंकित किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि, संसार में जीने के लिए अर्थ का सम्भवतः सर्वाधिक महत्त्व है। अर्थ की शक्ति के माध्यम से मनुष्य कुछ भी करने की स्थिति में होता जा रहा है।

कमलेश्वर की "बयान"[35] कहानी भी आर्थिक और नैतिक मूल्यों की कहानी है। आर्थिक तंगी के कारण फोटोग्राफर अपनी पत्नी के नग्न छाया चित्र लेने के लिये विवश होता है और अपने इस नैतिक गिरावट के कारण तथा पत्नी के नौकरी से निकाले जाने की ग्लानि से आत्महत्या कर लेता है। फोटोग्राफर का लक्ष्य पैसा कमाना है लेकिन साधन जो उसने इस्तेमाल किया वह गलत था। अपने नैतिक पतन के कारण वह आत्महत्या करता है, फोटोग्राफर अपने मानवीय मूल्यों से गिरा, अपनी नैतिकता से गिरने के कारण आत्महत्या करता है। इस कहानी में कमलेश्वर ने नैतिक मूल्य का पुनर्मूल्यांकन किया है।

रवीन्द्र कालिया की "नौ साल छोटी पत्नी"[36] कहानी आधुनिक स्त्री पुरुष के सम्बन्धों के नई परिपक्वता और तटस्थता की कहानी है।

आधुनिक शिक्षा के कारण स्त्री पुरुषों के विवाह, उम्र और मस्तिष्क की परिपक्वता के बाद ही होते हैं। इसलिए विवाह पूर्व जिन्दगी की किशोर अवस्था में लड़के लड़कियाँ रोमानी भावुकता के कई अनुभव लेते रहते हैं। कभी कभी इश्क के चक्कर में भी पड़ जाते हैं। दरअसल इस उम्र में किया हुआ इश्क सच्चे अर्थ में प्रेम की अनुभूति नहीं होता। इस रोमानी दुनियाँ में प्रेमपत्र, सिसकियाँ, आहें, रंगीन सपने आदि छायावादी, पलायनवादी "बीमार" भावुकता से पाई जाती हैं। आजकल शायद प्रत्येक लड़का लड़की इस स्थिति का अनुभव करता ही होगा। अक्सर ऐसे रोमानी प्रेम परस्पर विवाह में शायद ही परिणत होते हैं। विवाह कहीं और ही हो जाता है फिर विदाई के क्षण आते हैं, जहाँ सिसकियाँ, आहें फिर से दुहराई जाती हैं। पुराने प्रेम पत्र, तस्वीरें आदि कुछ दिनों तक सुरक्षित रखे जाते हैं।

नई दृष्टि रखने वाले स्त्री पुरुष बाद में शायद इस स्थिति को जानकर भी अनजान हो जाते हैं। क्योंकि इनमें विचारों की प्रौढ़ता तत्काल आ जाती है।

वे एक तुच्छ आदि बचकानी बातों से परे होते हैं। पुरुष को इस बात का क्रोध या क्षोभ नहीं होता कि उसकी पत्नी विवाह से पहले कहीं प्यार व्यार केस चक्कर में पड़ी थी। उल्टे इस बात का जब उसे पता चल जाता है तो उसे पत्नी पर दया ही आती है। कहीं कहीं तो उसे मजाक भी सूझता है। उसे इस बात को लेकर पत्नी को सताने में मजा आता है। वह समझता है कि, उसकी पत्नी अब भी छोटी है कि, वह अकारण अपने "छायावादी प्रेमी" के पत्र सम्भाल कर रखती है। और वे कोशिश करती है कि, पति को इस बात का पता न चले। ऐसी लड़की अपने आपको अधिक विशुद्ध बताने की फिक्र में दूसरे लड़कियों के चरित्र को लेकर कड़ी फब्तियाँ कसती हैं। इन हरकतों का प्रमुख कारण यह होता है कि, वह अब भी किशोर अवस्था को पार नहीं कर सकती।

रवीन्द्र कालिया के इस कहानी का नायक कुमार अपनी पत्नी "सुधा" को इसी रूप में रखता है। कुमार के लिए सुधा अब भी "नौ साल छोटी पत्नी" है। यह कहानी सिद्ध करना चाहती है कि, आधुनिक स्त्री पुरुष उस स्तर के पार कर चुके हैं। जहाँ किशोर अवस्था के रूमानी अर्थात् बचकाने प्रेम को लेकर नीति अनीति की धारणाएँ बनती हैं। आधुनिक दृष्टि के कारण स्त्री पुरुष सम्बन्धों में अधिक उदारता, परिपक्वता और तटस्थता आई है।

पति को यदि पत्नी के पूर्व सम्बन्धों की जानकारी मिलती है तो पति पत्नी के सम्बन्धों में दरार आ जाती है। इस नैतिकता और पवित्रता की सारी जिम्मेदारी नारी पर ही होती है। पुरुष का कोई सम्बन्ध विवाह से पूर्व रहा हो या वर्तमान में हो वह उसकी अधिकारिता में आता है। ऐसा प्राचीन मूल्यों से आभास होता है किन्तु वर्तमान समाज में पति पत्नी के सम्बन्धों में इस प्राचीन मानव मूल्यों में व्यापकता आई है जैसा कि, प्रस्तुत कहानी से स्पष्ट होता है। "रवीन्द्र कालिया वैयक्तिक चेतना के कहानीकार हैं।

अस्त व्यस्त हो जाती है। उसका संतुलन बिगड़ जाता है और अपनी मानसिक विकृति से वह सीधा साक्षात्कार करने में अपने को अक्षम पाता है।

वह कदाचित् पत्नी को अपनी सहानुभूति सम्वेदना और क्षमा की चेतना से जोड़ नहीं पाता क्योंकि जाहिर है कि, विनय के अंतर्मन में एक तीव्र मानसकम्प जैसा चलता है कुछ वैसा ही जैसा कि, पृथ्वी में जब भूकम्प की स्थिति बनती है तो अन्दर जाने क्या क्या घटित होता है। पृथ्वी तो केवल उस आन्दोलित प्रक्रिया में कम्पन को अनुभव करती है। इस कहानी में ईमानदारी और यथार्थ को मानवीय स्तर पर न ग्रहण कर पाने की अक्षमता को सूक्ष्म रूप से अंकित किया गया है। पत्नी का मृत्युबोध कदाचित विनय को मानसिक धरातल पर कुछ राहत पहुँचाने की स्थिति तक ले जाने वाला समझा जा सकता है। सत्य और ईमानदारी जैसे मानव मूल्यों के टूटने की मनः स्थिति को इस कहानी में प्रस्तुत किया गया है।

"सुहागिनें"[39] कहानी वर्तमान समाज में पति पत्नी के बीच उभरते हुये वैमनस्य और आर्थिक स्वतंत्रता की माँग की कहानी है। पहले पत्नी पति पर पूर्ण रूप से आर्थिक मामलों में आश्रित रहा करती थी। ये हमारे भारतीय समाज के स्त्रियों की पराश्रिता थी। इन्हीं कारणों से पत्नी उपेक्षा से पति के दबाव में अपना जीवन पाती थी, यह हमारे समाज की परम्परा रही है। पति पितृसत्ता में प्राप्त संस्कारों के कारण अहंवादी होता है। लेकिन जहाँ पत्नी भी नौकरी करती है, वहाँ स्थिति दूसरी हो जाती है। इस स्थिति को "सुहागिनें" कहानी में मोहन राकेश ने स्पष्ट किया है।

सुहागिनें एक नहीं, उन दो नारियों की....या उनकी तरह उन सबके नारी मन की अन्तर्व्यथा की कहानी है, जो पति का सुहाग पाने पर

लिये चाहे, अनचाहे अकेलेपन और कठोर व्यथा की जिन्दगी जीने को अभिशप्त है। मोहन राकेश की मुख्य मान्यता है कि, विवाह नाम की संस्था अनेक दबावों प्रभावों के कारण टूट रही है। इसके सबसे बड़े कारण, पति पत्नी दोनों के बीच उभरता हुआ वैमनस्य, और आर्थिक स्वतंत्रता की माँग, और पारस्परिक असामंजस्यता ही रहे हैं जो विवाह के इन दो यूनिटों को एक दूसरे से अलग कर रहे हैं।

पति पत्नी के सम्बन्धों में असन्तुलन या असन्तोष का एक मुख्य कारण एक दूसरे के प्रति आधारभूत समझ का बढ़ता अभाव है। अजीब बात है कि, जहाँ शिक्षा और आधुनिकता के तमाम प्रभाव बढ़ रहे हैं, लोग जहाँ छोटे छोटे कस्बों से निकल कर बड़े नगरों में जाकर बस रहे हैं, वहीं इस अन्डर स्टेण्डिंग का अभाव क्रमशः अधिक बढ़ता दिखाई दे रहा है।

शिक्षा एवं स्वतंत्र अर्थोपार्जन नारी के मन में एक अहम् पैदा कर देती है, जो इस एडजस्टमेन्ट में बाधा उत्पन्न कर देती है जैसा मोहन राकेश की दूसरी चर्चित कहानी "एक और जिन्दगी"[40] में होता है क्योंकि पति स्वभाव से ही और विरासत में प्राप्त संस्कारों के कारण अहम्वादी होता है, और जहाँ पत्नी भी अहम्वादी हो, वहाँ एक दूसरे के अहम् टकराने लगते हैं और निर्वाह मुश्किल हो जाता है।

यह समस्या अधिकतर वहाँ देखने को आती है, जहाँ पति पत्नी दोनों काफी शिक्षित हैं और दोनों ही नौकरी में लगे हुये हैं। आर्थिक दृष्टि से पत्नी पति पर निर्भर नहीं है। सांस्कृतिक विरासत प्राप्त पुरुष आर्थिक निर्वाह की जिम्मेदारी स्वयं पर समझता आया है और जहाँ आर्थिक दबावों

के कारण या पत्नी की निजी चाह के कारण वह इतना समझौता भी कर लेता है, पर स्थिति से उत्पन्न पत्नी की नई भूमिका को नहीं स्वीकार कर पाता या उसके परिणामों को नकारने लगता है। "फंक्शन" कार्य तो वह मान लेता है पर "रोल" भूमिका को मान्यता नहीं दे पाता।"

"सुहागिने" की मनोरमा भी एक ऐसी सुशिक्षित नारी है जो किसी अच्छी नौकरी में लगी होकर स्वतंत्र रूप से अर्थोपार्जन तो कर रही है, पर उसमें उसका कोई विशेष भाग नहीं है, और न वह उस पर गर्वोन्नति अनुभव कर पाती है। अर्थोपार्जन के लिए वह अपनी निजी चाह से नहीं पति द्वारा प्रेरित इच्छा के कारण प्रवृत्त है।

मनोरमा का पति अपने छोटे संयुक्त परिवार में रह रहा है और अलावा अपने परिवार के प्रति उत्तरदायित्वों के, अपनी छोटी बहन के विवाह के लिए पर्याप्त दहेज न जुटाने के लिए विशेष चिन्तित है। इसीलिये वह मनोरमा को भी अर्थोपार्जन के लिए दबाव डालता है और मनोरमा सहज सहयोग की भावना से, अपनी आन्तरिक इच्छा का दमन करके भी इसे स्वीकार कर लेती है। यहाँ तक कि, यह स्वीकार करते हुये उसे अपनी मातृत्व भावना का दमन भी करना पड़ता है। कभी जब वह पति के सामने अपनी यह मुराद प्रकट भी करती है, तो वह उसे टाल जाता है, यह कहकर कि, अभी उनके बीच बच्चा आ गया तो वह बड़े परिवार के प्रति अपने दायित्वों को उचित रूप से कैसे, निभा पायेंगे; यह एक तरह का स्वार्थ ही है। मनोरमा का पति चाहे अनचाहे अपनी पत्नी से यह कार्य करवा जाता है...शायद उसके प्रति सोचे हुये बिना ही, और अतृप्त मातृत्व भावना अंत में बच्चे की "फैंसी" फटेन्सी के रूप में प्रकट होकर रह जाती है।

अभिशप्त पहली "सुहागिन" की यह अजीब यातना है कि, वह सुहागिन होते हुये भी उम्र पर चाह होने पर भी अपना बच्चा नहीं पा सकती...अपनेपन के अभावों को भरने के लिये नहीं, अपने अनुपस्थित पति की पूर्ति के रूप में भी नहीं।

आधुनिक शिक्षिता नारी की यह एक बड़ी "ट्रैजेडी" है...वह स्वतंत्र होते हुये भी अपने सारे बन्धनों से जकड़ी हुई है। कुछ बाहर के बंधन है, कुछ स्वयं अपने मन के। कहीं न चाहते हुये भी एक के बाद एक बच्चे होते हैं जैसे मनोरमा की अभागी सुहागिन भाभी के साथ है। कहीं एक बच्चे की लालसा भी पूरी नहीं हो पाती है जैसी मनोरमा की नियति है। अपने पति से अलग जुड़ी होकर भी वह अलग है, अलग रहने को अभिशप्त है। बिना किसी वैमनस्य या तनाव के सिर्फ एक बड़े आर्थिक दबाव के कारण, अपने पति की इच्छा का सम्मान करते हुये और अलग रहते हुये, इन सम्बन्धों के ऊपर निरन्तर अकेली होती जा रही है।

"आधुनिक शिक्षित नारी आर्थिक दृष्टि से परावलंबी न होकर भी पुरुष की आश्रित है। पुरुष के साथ उसकी जिन्दगी में कुछ ऐसे क्षण आते हैं जब उसे बड़ी भयंकर स्थिति का सामना करना पड़ता है। ऐसे समय एक ओर अपनी स्वतन्त्र दृष्टि के कारण वह न तो किसी की आश्रित बनकर रहना चाहती है, न रहने दी जाती है। ऐसे समय कई बार वह बड़ी निर्ममता से सम्बन्ध विच्छेद करते हुये नहीं घबड़ाती है। यहाँ तक तो ठीक है किन्तु इसके बाद की कई समस्यायें उसके सामने होती हैं, जिनसे जूझना उसके लिए असम्भव तो नहीं, कठिन जरूर हो जाता है। शायद, आधुनिक नारी की यही नियति है। अतः स्वावलंबी होना ही उसके लिये अभिशाप है।"[41]

सम्पूर्ण कहानी वर्तमान समाज में पति पत्नी के बीच उभरते विघटन और आर्थिक स्वतन्त्रता की कहानी है। 'सुहागिनें' कहानी स्त्री के भावनाओं की यथार्थ कहानी है, तथा सम्पूर्ण कहानी में एक दूसरे पात्रों के प्रति मूल्यों की टकराहट और अन्तर्द्वन्द्व व्यंजित है।

अप्रत्यक्ष रूप से सुशील पर पश्चिमी सभ्यता का भी प्रभाव है। पश्चिम में स्त्री को केवल भोग्य समझा जाता है लेकिन प्रत्यक्ष रूप में सुशील आर्थिक दबाव के कारण बच्चा नहीं चाहता। यह कन्ट्रोल की भावना भारत की अपेक्षा पश्चिम में ज्यादा है, जिसका प्रभाव सुशील पर अप्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ता है।

भावनात्मक स्तर पर मनोरमा और सुशील में मूल्यों की टकराहट है क्योंकि बच्चा पहली की प्राकृतिक इच्छा है, और मनोरमा अपने पति के पारिवारिक दायित्व के कारण इस भावना का दमन करती है।

पुत्र का परिवार के प्रति उत्तरदायित्व का निर्वाह करना प्राचीन पारिवारिक मूल्यों को प्रतिपादित करता है। सुशील पारिवारिक दायित्व के कारण सन्तति इच्छा को दबाता है। 'सुहागिनें' कहानी में मोहन राकेश ने नारी प्राकृतिक इच्छा, पुरुष की आर्थिक सामाजिक। दायित्व, पश्चिमी सभ्यता और परिवेशगत आर्थिक दबाव में मूल्यों की टकराहट एवं अन्तर्द्वन्द्व व्यंजित है।

महीप सिंह की "घिराव"[42] कहानी में आधुनिक स्त्री पुरुषों के व्यक्तित्वों का एक पहलू यह भी है कि, वे अपने मानसिक स्तर पर एक अजीब सी स्थिति का निरंतर सामना करते रहते हैं। उनके व्यक्तित्वों में कई व्यक्तियों के सम्बन्धों की स्मृतियाँ सफलता विफलता की विविध घटनाएँ जय पराजय की स्थितियाँ चिपकी रहती हैं। उनके जीवन में घिरने और मुक्त होने के अनगिनत क्रम आते जाते ही रहते हैं। प्रत्येक नये सम्बन्धों के साथ पुराने सम्बन्ध टूटते से लगते हैं पर पूर्णतः नहीं टूटते। उन विगत सम्बन्धों से वे सदैव घिरे रहते हैं। किन्तु हर नए सम्बन्ध से घिरने से पहले पुराने घिराव से छुटकारा पाना असम्भव हो जाता है किन्तु जताया इस तरह जाता है कि, पुराने सम्बन्ध बिल्कुल ही खत्म हो गए हैं और नए सम्बन्ध ही केवल उनके व्यक्तित्व का हिस्सा बने हुए हैं। किन्तु कभी कभी कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं जो तह में छिपे विगत सम्बन्धों को सतह पर उभार लाती हैं और फिर पूरी तरह "घिराव" का अनुभव किया जाता है।

महीप सिंह के इस कहानी की नायिका सुम्मी ओबी के प्यार में पड़ने से पहले अमर के प्यार में पड़ चुकी थी। अमर के प्यार का "घिराव" कहीं दूर उसके मानस स्तर पर गहरे बैठा हुआ है, पर वह ओबी के साथ रहकर यह जताने का प्रयत्न करती है कि, अमर से सम्बन्धित उसकी सारी स्मृतियाँ अब तक खत्म हो चुकी हैं। सुम्मी और ओबी के प्यार का राज समाज के सम्मुख प्रकट हो जाता है तो "ओबी" सतर्क होकर यह दिखाने के प्रयत्न करता है कि, जैसे राज खुलने की यह घटना उसके साथ नहीं किसी और के साथ घटी है। शायद ओबी यदि भविष्य में किसी दूसरी स्त्री के साथ प्यार करने लगे, तो वह भी सुम्मी की तरह अपनी नई प्रेमिका को यह जताने का प्रयत्न करेगा कि, उसका और ओबी का सम्बन्ध पूरी तरह खत्म हो चुका है सच तो यह है कि, दोनों अपनी विगत स्मृतियों से पूरी तरह घिरे हुये हैं।

हाँ कुछ दिनों तक अनुयायियों के मन में इनकी आदर्शवादिता रह सकती है। वे कुछ घबराते भी हैं, हिचकिचाते हैं, अपनी ओर से नेता को समझा देने की नाकाम कोशिश करते हैं। पर जब उनकी सारी कोशिशें बेकार हो जाती हैं तब उनकी आदर्शवादिता हवा हो जाती है, और वे स्वयं नेता की नीति का अनुसरण करने लगते हैं।

कहानी का नायक "मैं" अन्त में अपने नेता (माँ बाप) का सच्चा अनुयायी बन जाता है। अपनी बहनों की अनीति को जिसके लिए माँ बाप जिम्मेदार हैं, अब वह बर्दाश्त कर सकता है। अब वह स्वयं पाप बोध का शिकार नहीं। "मैं सीढ़ियों से नीचे उतर रहा हूँ, चोर की तरह नहीं, एक दम निडर होकर....मैं चाहता हूँ कि माँ, बाबूजी, विमला, निर्मला सभी जानें कि मैं नीचे के उस कमरे में जा रहा हूँ। उस कमरे में दो बहनों को धोखा देकर भाग आयी कलाम मकबूली सोई हुई थी।

उपर्युक्त कहानियों के अतिरिक्त उषा प्रियंवदा की "जिन्दगी और गुलाब के फूल" कहानी जिन्दगी के उस कटु व्यावहारिक सत्य को प्रकट करती है, जहाँ पारिवारिक सम्बन्धों की सारी पुरानी व्यवस्थाएँ ही बदल गई हैं, जहाँ माँ बेटा, या भाई बहन के वे सीधे सीधे सम्बन्ध नहीं रह सके। जिन्दगी बहुत "बिटर" है, व्यावहारिक है। माँ या बहन का प्यार तभी मिलता है जब लड़का आर्थिक रूप से परावलंबी न हो। वरना निकम्मा लड़का अवसाद के क्षणों में किसी कमरे में चाहे भूखा पड़ा रहे, तो भी उसे कोई ढूँढने नहीं आयेगा।

राजेन्द्र यादव की "अपने पार" कहानी समाज की उस विद्रूप स्थिति पर प्रकाश डालती है, जहाँ नैतिक बोध पूर्णतः समाप्त हो गया है।

पारिवारिक सम्बन्धों में भयंकर पूर्णतः तनाव उपस्थित हो रहे हैं। व्यक्तिवादिता के प्रभाव में प्रत्येक व्यक्ति अपने पार जाने की कोशिशों में है, जिसके कारण वह कहीं भी जुड़ा हुआ नहीं है। कटे रहने की यातना और जुड़ने की अकुलाहट इस कहानी में व्यक्त हुई है। पति के सही प्यार से अकुलाई पत्नी, पिता के सही प्यार से अकुलाया लड़का और पत्नी के सही प्यार से वंचित पिता अपनी अपनी अपनी जगह कुछ चाहते हैं, पर पा नहीं सकते। सब ओर जैसे "इम्पोटैन्सी" नपुंसकता आ गई सी लगती है। आधुनिक परिवार का और उस आधुनिक समाज का जिसका अंग यह परिवार है, बड़ा सत्य चित्रण "अपने पार" में हुआ है।

स्थापित नैतिकता के विघटन से कुछ प्रमुख मूल्यों का विश्लेषण ऊपर की कहानियों में प्रस्तुत किया है। परिवार, राज्य, धर्म आदि सामाजिक संस्थाओं का आधुनिक रूप क्या है ? पहले क्या था, आदि प्रश्नों को लेकर इन कहानियों में विघटित मूल्यों की निरर्थकता का ही चित्रण प्रस्तुत हुआ है।

"परिन्दे"[46] वैयक्तिक मूल्यों की कहानी है। बिखरी हुई नारी लतिका में सम्बन्धों के लिए ललकती और सम्बन्धों से कटी नारी की कहानी है।

"परिन्दे निर्मल वर्मा की बहुचर्चित कहानी है। इसमें उन्होंने परिन्दों के माध्यम से प्रेम में इन्तजार को ही मानव नियति माना है। प्रस्तुत कहानी के सारे पात्र अपने अपने अतीतों को ढूंढते हुए प्रतीत होते हैं। नायिका गिरीश को भूल जाना चाहती है, डा० मुकर्जी अपनी पत्नी को भूल गये हैं। यहां व्यक्तिनिष्ठता है। सभी अपनी अपनी दृष्टि से निर्णय लेते हैं।[47]

निर्मल वर्मा की "परिन्दे" कहानी ऐसा कि, शीर्षक से ही अर्थ स्पष्ट होता है कि, कहानी की नायिका लतिका परिन्दे की भाँति ही अपना व्यक्तित्व सम्पूर्ण कहानी में छटपटाता रहता है।

"परिन्दे" कहानी आधुनिक सन्दर्भों में निरन्तर अकेले होते जा रहे व्यक्ति के अन्तर्मन की अनुभूतियों की कहानी है। कहानी में यथार्थ का एक दूसरा ही स्तर मिलता है। यह तो अनुभव यथार्थ है। जिसे कुछ विशेष क्षणों में भोगा परखा जा सकता है। यह होता, यद्यपि अपने का ही है लेकिन संभवतः अपेक्षाकृत अधिक शक्तिमान भी, क्योंकि व्यक्ति की इकाई से यह सम्बद्ध है। उसे बहुत बारीक विश्लेषण और अभिव्यक्ति के सूक्ष्म स्तर की अपेक्षा होती है। इसे आन्तरिक या सूक्ष्म यथार्थ कहा जाय। परिन्दे उसी धरातल की कहानी है।

लतिका का निरन्तर नेगी के प्रति यह लगाव, यह आकर्षण जो उसके बाद भी उसे मथे डालता है, लगता है, वह परिन्दों को उड़ता हुआ देखकर अपने मन के कामना की आपूर्ति और अभाव को देखती है तथा अपने सहयोगी मिस्टर ह्यूबर्ट के प्रेम प्रस्ताव को भी नकारती है। इस कहानी के सभी पात्रों में कहीं न कहीं प्रेमासक्ति का भाव दृष्टिगोचर होता है लेकिन कोई भी पात्र खुलकर सामने नहीं आता। मि० ह्यूबर्ट अपने प्रेम मूल्य को गुप्त नहीं रख पाते, उनका प्रेम विशिष्ट भावनात्मक मूल्य स्पष्ट उभर कर सामने आ जाता है। लेकिन लतिका की वह सीमा है...." और ध्यानों के तुम अतीत की धुंध को चीरते हुये स्वयं उस धुंध का भाग बनते जा रहे हैं .....यह धुंध बाहरी नहीं है, लतिका के मन के किसी भीतरी कोने की धुंध है। उसके जीवन में अतीत की धुंध को चीरती हुई कोई बीती स्मृति उसे सालती है....यह स्मृति भी अब धुंधली ही उस अतीत का अंग बनती जा रही है। लतिका अतीत से जुड़े प्रेम मूल्य पर ही वर्तमान के प्रेम मूल्य की उपेक्षा कर रही है।

48

मन्नू भण्डारी की "यही सच है" कहानी परिवर्तित प्रेम मूल्य को स्पष्ट करती है।

को सहना पड़ा। और वह युद्धोपरान्त भी भारत जैसे देश में साहित्यिक सेवा में संलग्न रहते हुये भी शान्ति पूर्वक जीवन न व्यतीत कर सका। उसके निवास स्थान पर पुलिस अधिकारियों का आधिपत्य सा हो गया। "वाङ् यू" अपने जीवन में राजनैतिक हस्तक्षेप के कारण अपने उद्देश्य अर्थात् साहित्यिक सेवा को पूर्ण न कर सका।

"राजेन्द्र यादव" ने "प्रतीक्षा" में लैस्बियन प्रवृत्ति के आधार पर दो लड़कियों को लेकर एक काफी लम्बी कहानी की रचना कर पाठकों को यह समझाने का प्रयत्न किया है कि, काम भावना की तुष्टि स्त्रियाँ आपस में कर सकती हैं और पुरुषों को स्त्रियों के सम्बन्ध में उदार होकर सोचना हो जाने की आवश्यकता है। नहीं वैसे भी तो विवाह संस्था का ढाँचा चरमराकर टूटते देर नहीं लगेगी। आखिर विवाह संस्था मात्र सेक्स पर ही तो आधारित है ना।"[57]

यह कहानी आधुनिक भारतीय लड़की की एक नई भूमिका का निर्वाह करते हुये सामाजिक परिवर्तन के व्यापक सत्य का भी उद्घोष कराती है।

राजेन्द्र यादव की "प्रतीक्षा" कहानी की नायिका जो केवल प्रतीक्षा नहीं करती बल्कि यह प्रतीक्षा आधुनिक समाज की है, किसी ऐसी भूमिका की प्रतीक्षा है जहाँ मनुष्य विगत मूल्यों की चंगुल से निकलकर नये मूल्यों को स्वीकार कर सके।

कहानी की नायिका गीता द्वारा कहानीकार ने सामाजिक मानसिक स्थितियों का अन्तर्द्वन्द्व व्यंजित किया है।

आधुनिक व्यक्ति, विगत सारे नैतिक मूल्यों की अनास्था का अनुभव करता हुआ एक ऐसी स्थिति पर आ खड़ा है जहाँ नीति अनीति की सारी

समस्यायें लगभग समाप्त हो चुकी हैं। सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों का च्युत हो जाने के कारण आज का व्यक्ति एक भयंकर क्षति का अनुभव कर रहा है। इस क्षतिपूर्ति के लिए वह जिन्दगी की उस स्थिति से जूझ रहा है, जहाँ प्रत्येक अवसर, अपरिचितता की स्थिति पैदा करता है। कई तनावों, यातनाओं को एक मात्र भोगता हुआ, आगे बढ़ रहा है या पीछे हट रहा है।

किन्तु मूल्य विहीनता की यह स्थिति अपने आपमें किसी नये मूल्य के उदय की स्थिति है। अनैतिक उन्मोचन। अन्यथा एक अर्थ में किसी नए मूल्य की शुरुआत ही तो होती है। राजेन्द्र यादव की यह कहानी जीवन के इस एब्सर्ड....को ही प्रस्तुत करती है। कहानी की नायिका गीता कई प्रकार के तनावों को भोगती है।

गीता की उम्र पैंतीस साल की है। उसे अधिकांश समय अकेले ही रहना पड़ता है। संयोग से उसकी मुलाकात नन्दा से होती है। फिर दोनों एक ही कमरे में रहती हैं। गीता धीरे धीरे नन्दा के प्रति आकर्षण अनुभव करती है। धीरे धीरे यह आकर्षण और सान्निध्य रुचि समलैंगिक प्यार में परिवर्तित होते हैं, और वह नन्दा के प्रति एक पुरुषोचित अधिकार भाव भी रखने लगती है। हर्ष नन्दा का प्रेमी है जो कि अलग रहता है। गीता बातों ही बातों में उसे अपने साथ आकर रहने का निमंत्रण दे बैठती है और वह आकर रहने लगता है। गीता का नन्दा के प्रति समलैंगिक आकर्षण, और कभी हर्ष के प्रति उसका तादात्म्य कई अन्तर्द्वन्द्वों को व्यक्त करता है।

कहानी का कोई भी एक पात्र दूसरों से किसी भी नैतिकता बोध से जुड़ा हुआ नहीं है। फिर भी किसी भी पात्र में पाप बोध जैसा नहीं है। सब पात्र मूल्यहीन स्थिति से अपने "अकेलेपन" की "बोरियत" पर खड़े हैं। किन्तु अनजाने में ही सब लोग नैतिक मूल्य की तलाश में हैं।

प्रतीक्षा के सभी पात्र कहानी में प्रतीक्षारत हैं। गीता प्रतीक्षा करती है कब हर्ष यहाँ से चला जाये। हर्ष प्रतीक्षा करता है कि, स्थिति अनायास कोई मोड़ ले, और वह अपनी पत्नी से छुटकारा पाकर नन्दा से विवाह कर ले। नन्दा प्रतीक्षा करती है कि, हर्ष उसे लेकर कहीं चला जाय ताकि उसे गीता के साथ चल रहे असाधारण सम्बन्ध से मुक्ति मिले।

प्रतीक्षा कहानी में राजेन्द्र यादव ने सेक्स सम्बन्धित नवीन मूल्यों को स्थापित किया है। गीता का नन्दा के प्रति आकर्षण और समलैंगिक प्यार, पुरुषोचित अधिकार भाव उसके अन्तःस्थिति को स्पष्ट करती है। प्रतीक्षा के सभी पात्र कहानी में प्रतीक्षारत हैं।

इस प्रकार की कहानियाँ काम सम्बन्ध के नव्यतम आयामों को उद्घाटित करने वाली हैं। जिन नारियों को पुरुष से सम्पर्क रखने का सुअवसर अथवा सुयोग नहीं मिल पाता। इस प्रकार के समलैंगिक सम्बन्ध बनाकर अपनी कामेच्छा की पूर्ति कर लेती हैं। यही बात पुरुषों के सन्दर्भ में भी लागू होती है।

गोस्वामी तुलसी दास जी ने राम चरित मानस में एक सन्दर्भ में यह उक्ति कही है :

मोह न नारि, नारि के रूपा।
पन्नगारि यह रीति अनूपा।।

जिसका अर्थ यह होता है कि, नारी कभी भी नारी के रूप को देखकर मोहित नहीं होती। लेकिन आज के समाज में स्त्रियों में समलैंगिकता की भावना प्रबल होती जा रही है। लड़की लड़की से ही प्रेम करके अपनी वासनात्मक भावना

से जोड़ती है और यदि भौतिक अथवा विवेकात्मक स्खलन हो जाय तो किसी मूल्य की आवश्यकता ही क्या है। मनुष्य इस चेतना से मुक्त पशुओं की भाँति दूसरों की ओर आँख मूँदकर मुक्त आचरण के तले पशुवत कुछ भी कर सकता है। स्वीडन में इस प्रकार के अनूठे प्रयोग किये गये हैं, किये जा रहे हैं, जहाँ कि, ढेरों दम्पति बिना किसी परहेज गुरेज के एक दूसरे की बाँहों में रहकर जीने का अभ्यास कर रहे हैं। यह भी सोचने की जरूरत नहीं है कि, उनकी सन्तानें कैसे पहचानी जायेंगी.....क्योंकि सभी शिशुओं की पहचान मातृ पक्ष से होगी। भारतीय मानव मूल्यों के समापन का शंखनाद जैसा प्रस्तुत करने वाली कहानी है।

कृष्ण बलदेव वैद की "त्रिकोण"[58] कहानी में यौन सम्बन्ध अब उस स्तर को प्राप्त कर चुके हैं जहाँ उनकी पुरानी सारी व्याख्यायें समाप्त हो चुकी हैं, चरित्र और चारित्र्य के प्रश्न सेक्स के साथ अब कतई जुड़े हुए नहीं हैं। यौन मुक्ति एक आवश्यकता बन गई है। फिर वहाँ यह प्रश्न उठता ही नहीं कि, सम्बन्ध किसके साथ है। यौन सम्बन्धों की पवित्रता वाली बात खत्म हो चुकी है। पर स्त्रियाँ पर पुरुष के साथ सेक्स सम्बन्धों के वे कारण भी खत्म हो चुके हैं जिनके सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक कारणों का आधार ढूँढा जाता था। पत्नी पति के अलावा दूसरे किसी पुरुष के साथ इस लिए सम्बन्धित नहीं होती कि, वह विकृत है, कि पति उसे सन्तोष नहीं दे पाता, कि वह विषय लोलुप है, कि वह कमजोर है। उसका सम्बन्ध पर पुरुष से किसी दूसरे ही कारणों से होता है। शायद अपने व्यक्तित्व की स्वतंत्रता एवं परिपूर्णता की खोज में वह पर पुरुष से सम्बन्धित होती है।

इधर पति अपनी पत्नी के इन सम्बन्धों से न तो परेशान होता है, न अपने को कमजोर महसूस करता है, न कुंठित होता है। उसे वहाँ इस बात का सन्तोष होता है कि, "पति" के परम्परागत बोध, से और उसके बोझ से मुक्त है।

उसका इम्तहान ले रहा था न अपना । उसने उस औरत के साथ, इसके पहले मजाक भी किया था, यह मजाक भी बिल्कुल पहला नहीं था...कुछ नहीं। उसने उसे बाहों में कस लिया। वह कसमसायी नहीं। उसके मुख से भूखी दुखी आवाजें निकल रही थी। उनके जिस्म एक दूसरे को मथ रहे थे। भोग के इस उत्कट क्षण की अनुभूति में दोनों अपना रिश्ता भी भूल गये। वह कोई भी औरत हो सकती थी, या यह कोई भी मर्द। उस समय कोई भी आ सकता था...उस समय दोनों के जिस्म बागी हो चुके थे।

स्त्री के लिए, किन्तु यह जिस्म की बगावत नहीं थी। वह यह भी नहीं सोचती कि, उसे उस पुरुष के बारे में कोई ख्वाहिश रही हो। यह भी नहीं कि, उसने दया दिखाई हो, यह भी नहीं कि उसका पति कमजोर है। शरीर भी उसका तृप्त रहा है। पता नहीं क्या कारण था कि, उसने अपना शरीर समर्पित कर दिया । लगभग सारा समय वह अपने पति के बारे में सोचती रही । यह नहीं कि उसके और उसके पति के सम्बन्धों में एकरसता आ गई है, क्योंकि सब सम्बन्धों में कुछ दिनों के बाद एकरसता आ ही जाती है। मन में लग रहा था कि, यदि इस समय उसे पति देख ले तो उसे गहरी चोट पहुँचेगी। हर पत्नी अपने पति को गहरी चोट पहुँचाने की ख्वाहिश दबाए रखती है। जरूरी नहीं कि, उसे अपने पति से कोई खास शिकायत रही हो, कि किसी दूसरे से खास लगाव । कहीं यह इच्छा भी थी कि, उस समय उसका पति आ जाये। क्या होगी उसकी प्रतिक्रिया, वह देखना चाहती है। वह स्वयं क्या करेगी हँसेगी या कुछ और । कहा जा सकता है कि, यह औरत विकृत है, भीतर से पति से असंतुष्ट है। कहा कुछ भी जा सकता है। पर यह सब गलत है। सिर्फ वह इतना जानती है कि, उस घटना से वह दुखी नहीं, बल्कि खुश है। वह किसी अपराध भाव से पीड़ित नहीं है। इस घटना के प्रति उसकी कोई खास प्रतिक्रिया नहीं है। पर इस सम्बन्ध में वह सोचती है कि, सब औ

इत्मीनान जरूर होता है। एक मुस्कुराहट, जो उसकी अपनी है। उस मुस्कान को कोई नहीं देख सकेगा, न किसी ने देखा है। वह खुश है।

पति ने अपनी पत्नी को दोस्त के साथ देख लिया है। वह अपनी जगह खुश है। उदारता पर नहीं न चालाकी पर। यह भी नहीं कि, वह खुद अपराधी है। सब यूँ ही शायद खुश इसलिए है कि, वह भिन्न है। शायद इस आत्म सन्तुष्टि का कारण उसका अहम् हो ..शायद उसे दुख पहुँचा हो, और वह खुश है। शायद बीमार जहनियत पर खुश है, अपने तर्क की अकाट्यता पर खुश है। शायद इस राज को जानकर अपनी उदारता प्रकट करने की ख्वाहिश पर खुश है। शायद बताना चाहता है कि, यह देखकर भी उसमें कोई फर्क नहीं पड़ा, क्योंकि वह किसी सीमा में बंधना नहीं चाहता। उसके लिए इसका कोई महत्व नहीं। न उसे खुशी आयी, न गुस्सा, न जलन न शर्म। केवल यही ख्वाहिश कि वह भिन्न है.. किसी साँचे में नहीं बैठ सकता। उसे खुशी है कि वह खुश है कि वह उस बड़ी अवमानना से बेदाग बच गया है। इस सबके पीछे शायद वह अहं, जो साधारण चीज़ नहीं, बल्कि उल्टा अहम् है, जिसका सहारा उसकी खुशी के लिए चाहिए।

वर्तमान समाज में मूल्यों का कितना नैतिक पतन हो चुका है। वर्तमान युग में परम्परागत जीवन मूल्यों के विघटन का एक रूप महीप सिंह के "कील"[59] कहानी में दृष्टिगत होता है कि, पिता अपने अकेलेपन के कारण अपनी पुत्री मीना का विवाह करने से कतराते हैं। यह कहानी पारम्परिक पारिवारिक और सामाजिक जीवन के विघटन की कहानी है। पिता बेटी का विवाह करके अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व का निर्वाह न करके अपने अकेलेपन के एहसास को ज्यादा महत्व देते हैं। लेकिन पुत्री अपने पिता द्वारा लगाई गई मन की "कील" को निकाल बाहर फेंक देती है।

"कील" महीप सिंह की यह कहानी स्त्री मुक्ति की छटपटाहट और मुक्ति को स्थापित करती है। मुक्ति किससे ? पिता के अपनी बेटी पर अतिरिक्त प्यार से। एक अफसर पिता अपनी...सुन्दर युवा बेटी मीना पर हद से ज्यादा प्यार करते हैं। दौरे में और अवकाश में उसे अपने साथ रखते हैं और बराबर अपनी बेटी की प्रशंसा करते रहते हैं कि, उनकी बेटी लाखों में एक है। उसके योग्य वर मिलना मुश्किल है। मीना पिता की इस अतिरिक्त तारीफ का शिकार बन जाती है और कई पैगामों को अस्वीकृत कर देती है। वस्तुतः पिता कहीं न कहीं अपने मन की तह में घबराते हैं कि, यदि मीना की शादी हो जाये, तो वह अकेले रह जायेंगे। मीना के बिना वह अकेलेपन से नहीं लड़ सकेंगे। स्वार्थी पिता द्वारा की गई प्रशंसा से उत्पन्न भ्रम में मीना कई वर्षों तक पलती रही, किन्तु जब उसे इस बात का पता चला कि, इस झूठी तारीफ के कारण उसका जीवन समाप्त होता जा रहा है। वह स्वयं अपनी ग्रन्थि से मुक्त हो जाती है और पिता के उस पर लगाई गई भ्रम की "कील" को निकाल कर बाहर फेंक देती है।

"कील" कहानी पारम्परिक सामाजिक और पारिवारिक मूल्यों के विघटन की कहानी है।

राजेन्द्र यादव की "जहाँ लक्ष्मी कैद है" कहानी में पुराने आचरणों के मूल्यों को टूटते हुये चित्रित किया गया है।

सेक्स एक अदम्य इच्छा है जिसकी पूर्ति आवश्यक है। जहाँ लक्ष्मी कैद है कहानी में राजेन्द्र यादव ने इस स्थिति को लक्ष्मी के माध्यम से स्पष्ट कर दिया है। जहाँ वह अपने पिता से कह देती है.."मैं, तुमने अपने लिये रखा है, मुझे वर, मुझे प्यार, मुझे भोग....। यह भोग की आवश्यकता इतनी प्रबल हो चुकी है कि, सामान्य सेक्स के सम्बन्ध में पुरानी धारणाओं का परित्याग कर

अपनी मौसी तक से यौन सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। इसके मूल में भी टूटन की क्रिया है जो कि, व्यक्ति के त्रास को जन्म दे रही है भले ही वह घृणास्पद क्यों न हो।

लक्ष्मी का पिता श्यामराम मूल्यहीनता का द्योतक है। जो अपने मानसिक विकृति के कारण अपने ही घर में अपनी बेटी को कैद कर रक्खा है।

मोहन राकेश ने टूटते मूल्यों का आधार बनाकर भी कुछ कहानियाँ लिखी हैं। इस दृष्टि से "मलबे का मालिक"[60] सफल कहानी कही जा सकती है। "यह मलबा ही टूटते और छूटे मूल्यों की सारी कहानी सुना देता है। रक्खे पहलवान की तरह हमारा एक वर्ग आज भी इन टूटे मूल्यों के मलबे पर उसे ही अपनी जागीर समझता हुआ बैठा है, जबकि वह मलबा न तो उसका है न गनी का, वह तो इतिहास का हो चुका है, अब तो उसे हटना चाहिये, क्योंकि यही इतिहास और युग जीवन की प्रतिक्रिया है।"[61]

पुरानी नैतिक मान्यताएँ टूट रही हैं, कुछ तो बिल्कुल ही नष्ट हो गई पर कुछ अब भी जर्जर अवस्था में खण्डहर के समान खड़ी हैं। इन जर्जर मूल्यों से चिपके रहने का आग्रह अपने आप में बड़ा अटपटा लगता है, जबकि बदलते हुये जीवन में कई नवीन मूल्यों के भवन खड़े हैं। इसका गिरा मलबा अब इतिहास का हो चुका है। इस मलबे का वैसे कोई मालिक नहीं पर फिर भी रक्खे पहलवान और बुड्ढा गनी इस पर अपना हक जता रहे हैं।

विभाजन की विभीषिका ने एक तरह से सारी स्थापित व्यवस्था ही नष्ट कर दी है। इस ध्वंस के बाद नव निर्माण की स्थिति में यह मलबा बड़ा अजीब लग रहा है। मूल्य विघटन और नव निर्माण के बीच अपनी वृद्धावस्था को लिये खड़ा यह मलबा नई इमारतों के सौंदर्य को बिगाड़ रहा है और

खुद भी अजीब लग रहा है। अब मलबे के ढेर को हटा देना ही चाहिये। यह मलबा ही दूसरो और टूटे मूल्यों के मलबे पर, उसे ही अपनी जागीर समझता हुआ बैठा है, जबकि यह मलबा न तो उसका है न गनी का, यह तो इतिहास का हो चुका है, अब तो उसे हटना चाहिये, क्योंकि यही इतिहास और युग जीवन की प्रतिक्रिया है।"

इस कहानी में मोहन राकेश ने भावनात्मक मूल्यों को बड़े ही उत्कर्ष ढंग से चित्रित किया है। गनी रक्खे पहलवान पर बहुत विश्वास करता है। गनी रक्खे पहलवान से ही पूछता है कि, "तू बता, रक्खे, यह सब हुआ किस तरह"? गनी आँसू रोकता हुआ आग्रह के साथ बोला, "तुम लोग उसके पास थे सबमें भाई भाई की सी मुहब्बत थी, अगर वह चाहता तो वह तममें से किसी के घर में नहीं छिप सकता था? उसे इतनी भी समझ नहीं आयी?"

रक्खे पहलवान ने उस मकान पर नजर रखकर ही चिराग को मारने का निश्चय किया था। गनी को क्या पता कि, इन्सान अपने स्वार्थ के पीछे भावनात्मक सम्बन्ध को महत्व नहीं देता, यही रक्खे पहलवान ने गनी के बेटे चिराग को मकान के स्वार्थवश मार डाला। और अब उस मकान को अपना समझ रहा है। रक्खे पहलवान ने आर्थिक मूल्यों के समक्ष भावनात्मक मूल्यों का हनन कर दिया।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत के सामाजिक परिवर्तन में राजनीतिक परिवेश का महत्वपूर्ण योग रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर अब तक इस राजनीतिक परिवेश को आधार बनाकर इस क्षेत्र में आये परिवर्तनों को स्वातन्त्र्योत्तर कहानीकारों ने उजागर करने का प्रयास किया है। इन कहानियों में विभाजन राजनीतिक हलचलें और उनका सामाजिक जीवन पर प्रभाव, पंचों की राजनीति या नेताओं की प्रवृत्ति पर व्यंग और इन नेताओं की मूल्यहीनता को प्रतिपादित किया है।

"पराधीनता के दिनों में हमारे समाज में जो सक्षम सामन्तकालीन संस्कार रहे, जनता में जो दब्बू और डरू व्यक्तित्व रहा, वह प्रजातन्त्रीय संविधान के लागू होते ही एक एकाएक बदल नहीं गया। यह अनायास संभव भी नहीं था। इस तरह स्वतन्त्रता के ठीक बाद हमारे समाज में स्पष्ट रूप से दो प्रकार के एकदम भिन्न संस्कार युक्त चरित्र उत्पन्न हो गये। पिता, पुराने अफसर, मालिक जमींदार आदि के संस्कार एक तरह के हैं तो कर्मचारी, नये अधिकारी, किसान मजदूर आदि के संस्कार दूसरी तरह के हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में जमींदारी अवश्य समाप्त कर दी गयी, लेकिन जमींदारी संस्कार के चरित्र एकदम लुप्त नहीं हो गये हैं। इन भिन्न संस्कारों से युक्त वर्गों के बीच संघर्ष स्वाभाविक है। स्वतन्त्रता के एक दो दशक तक तो इन संघर्षों को कहानीकार कम ही पकड़ पाया है लेकिन कालान्तर में इनके प्रति वह अधिक सचेत हुआ है। जहाँ परिवार के सम्बन्ध टूट रहे हैं, वहाँ नये पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित होने की शुरूआत भी हो गयी है। प्रजातंत्रीय संस्कारों का प्रभाव अंततः राजनीतिक संरचना तक ही सीमित नहीं है, पारिवारिक और सामाजिक संरचनाओं को भी इन्होंने प्रभावित किया है। आज पुत्र अपने पिता से अथवा कर्मचारी अपने मालिक से दोस्ताना सम्बन्ध की अपेक्षा करता है। स्वातंत्र्योत्तर कहानीकार देश की प्रजातन्त्रीय संरचना के अनुकूल बदले और बदलते सम्बन्धों को अधिकाधिक सच्चाई से परिभाषित करने को उन्मुख हुआ है।"[62]

हरि शंकर परसाई की कहानी "भोलाराम का जीव"[63] राजनीतिक मानव मूल्यों के भ्रष्टाचार की कहानी है, परम्परागत आदर्शों के संशोधन पर आधारित है। परम्परागत आदर्शित मूल्यों का इस कहानी में विघटन हुआ है। मानव के जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध में ऐसा आदि युग से माना गया है कि, मनुष्य की मृत्यु के उपरान्त उसे संसार में माया मोह से छुटकारा मिल जाता है। लेकिन हरिशंकर परसाई ने "भोलाराम का जीव" नामक

कहानी में अति मानवीय मूल्य को तोड़ा है और इस मानव मूल्य पर परसाई ने व्यंग किया है कि, मनुष्य आज के असंतुलित सामाजिक व्यवस्था से व्यथित है कि, उसे इह लोक त्याग कर परलोक सिधारने पर भी मानव शान्ति अनुभव नहीं करता है।

भोलाराम पाँच साल से बीमार था। लेकिन आफिस वाले कुछ वजन के ।रिश्वत। के अभाव में उसकी पेंशन के प्रार्थना पत्र पर कोई विचार नहीं करते जबकि भोलाराम स्वयं बहुत ही गरीब था। इस गरीबी की हालत में वह अपने प्रार्थना पत्र के साथ वजन नहीं रख सकता था।

वर्तमान समय का दफ्तरी माहौल इतना दूषित हो चुका है कि, वैयक्तिक मूल्य कोई महत्व नहीं रखता। इसीलिये तो यमदूत भोलाराम का जीव खो जाने पर धर्मराज से कहता है, "दयानिधान, मैं कैसे बतलाऊँ कि क्या हो गया। आज तक मैंने धोखा नहीं खाया था, इस बार मुझे भोलाराम का जीव चकमा दे गया। पाँच दिन पहले जब जीव ने भोलाराम की देह त्यागी, तब मैंने उसे पकड़ा और इस लोक की यात्रा आरम्भ की। नगर के बाहर ज्यों ही मैं उसे लेकर एक तीव्र वायुतरंग पर सवार हुआ, त्योंही वह मेरे चंगुल से छूटकर न जाने कहाँ गायब हो गया।" [64]

लेकिन जब नारद जी अपनी वीणा का वजन भोलाराम की सौ डेढ़ सौ दरख्वास्तों से भारी फाइल पर रखते हैं तो भोलाराम का जीव बनाते हुये दृष्टिगत होता है, और वो भोलाराम का नाम साहब की ओर से बोलकर बताते हैं।

इस सन्दर्भ में परम्परागत मूल्यों पर कितना कटु हास्यात्मक एवं व्यंगात्मक आघात है कि, "सहसा फाइल में से आवाज आयी, "कौन पुकार रहा है मुझे?"

"पोस्ट मैन है क्या? पेंशन का आर्डर आ गया?" साहब उछल कर कुर्सी से लुढ़क गये। नारद भी चौंके। पर दूसरे ही क्षण बात समझ गये। बोले, "भोलाराम! तुम क्या भोलाराम के जीव हो।"

"हाँ", आवाज आयी।

नारद ने कहा, "मैं नारद हूँ। मैं तुम्हें लेने आया हूँ। चलो, स्वर्ग में तुम्हारा इन्तजार हो रहा है।"

आवाज आयी, "मुझे नहीं जाना। मैं तो पेंशन की दरख्वास्तों में अटका हूँ। यहीं मेरा मन लगा है। मैं अपनी दरख्वास्तें छोड़कर नहीं जा सकता।[65]

मनुष्य अपनी आर्थिक कमी के कारण भूखों मरा उसके उपरान्त वह अपने पत्नी और बच्चों को अपनी पेंशन की सुविधा दिलाने हेतु यमदूत के हाथ से छूटकर भोलाराम का जीव पेंशन सम्बन्धी फाइलों में आ गया।

वर्तमान समाज की अमानवीय व्यवस्था में अमीर गरीब का कोई फर्क इन दफ्तरी बाबू और अफसरों के लिये नहीं रह गया, उनको तो केवल रिश्वत चाहिये, चाहे वो झोपड़े में रहने वाला भोलाराम का जीव ही क्यों न हो। ऐसा प्रतीत होता है कि, आजकल के दफ्तरी बाबुओं और अफसरों ने रिश्वत को जीविकोपार्जन का आधार बना समझकर मानवता का गला घोंट दिया है। भोलाराम के साथ हुये व्यवहार से स्वतः बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि, आज के समाज में आर्थिक मानव मूल्यों का नितान्त अभाव हो गया है।

रामदरश मिश्र की कहानी "चिड़ियों के बीच" एक ऐसे ही व्यक्ति की कहानी है जो शहर के यान्त्रिक परिवेश में रमता हुआ भी अपने गाँव को भूला नहीं है। इसीलिये उसकी तनख्वाह का एक बड़ा भाग हर माह उस धरती की भेंट चढ़ जाता है जिसमें वह जन्मा है। पत्नी तथा बच्चों की उपेक्षा उसे बेधा देती है। वह जानता है कि, उस लम्बे चौड़े परिवार

से कटकर ही वह अपने बच्चों को आदमी बना सकता है। अतः वह निश्चय करता है कि, उसे, "माँ बेटा, भाई भाई, पति पत्नी के बीच का छाजन निकालकर काँटा लगाना है, सुखी होने का यही रास्ता है। तमाम सम्बन्धों से जुड़े हुए लम्बे परिवार को ढोना पुराना बोध है, टूटा हुआ मूल्य है। वह साहित्यकार है, उसे पुराने बोध, टूटे हुये मूल्यों को छोड़ना ही पड़ेगा।

किन्तु वह अधिक समय तक अपने निश्चय पर दृढ़ नहीं रह पाता क्योंकि वह ऊपरी तौर पर उस परिवार से नहीं जुड़ा है अपितु उसके अन्दर के संस्कारों ने ही उसे वहाँ से बाँध रखा है। एक ओर ममतामयी माँ का अश्रु भीगा चेहरा, संघर्षशील भाई और अविवाहित बहिनों की याद और बच्चों के भविष्य की चिन्ता के कारण निरन्तर एक संघर्ष उसकी चेतना में चलता रहता है।

रामदरश मिश्र की "सूखता हुआ नगर" भी एक ऐसे ही युवक की कहानी है जो पन्द्रह वर्ष पूर्व गाँव से शहर में आकर बसा था लेकिन इस लम्बे अरसे में भी वह स्वयं को उस परिवेश में रमा नहीं सका, क्योंकि वह अवाक अपने पुराने गवंई संस्कारों से बँधा हुआ था। शहर आकर वह अनुभव करता है कि, यदि उसे यहाँ के समाज में रहना है तो घिसे पिटे देहाती मूल्यों को छोड़कर शहर के वातावरण के अनुरूप स्वयं को ढालना होगा, व्यर्थ में झगड़ा मोल नहीं लेना होगा, अन्याय का विरोध नहीं करना होगा, शहर में जहाँ कहीं वह जाता उसके मूल्यों को इस टकराहट का सामना करना पड़ता और हर बार इस टकराहट में उसके भीतर बहुत गहरे में कहीं कुछ टूट जाता है। किन्तु फिर भी जीवन के प्रति उसकी आस्था शिथिल नहीं हुई थी। शहर के प्रतिकूल वातावरण में भी उसके अनगढ़ सपने सच पाने के लिये छटपटा रहे थे। और अन्त में वह अपने अधूरे सपनों को पूरा करने के लिये, अपने मूल्यों और आदर्शों की रक्षा करने के लिये वह पुनः अपने गाँव लौट जाने को विवश होता है।

नगरीय परिवेश की भाँति स्वतन्त्रता के पश्चात् कस्बाई परिवेश में भी पर्याप्त परिवर्तन लक्षित होता है। "नये कहानीकारों ने नगर ग्राम के समान ही कस्बाई मनोवृत्ति का सूक्ष्म चित्रण किया है। इस मनोवृत्ति के समर्थ कहानीकार हैं..कमलेश्वर. कृष्णा सोबती, धर्मवीर भारती, शेखर जोशी, अमरकान्त, मुद्रेश और महीपसिंह । इन कहानीकारों ने कस्बाई मनोवृत्ति की विभिन्न दशाओं को अपनी कहानियों का आधार बनाया है। कहीं पर इन्होंने कस्बाई वातावरण को चित्रित किया है, कहीं पात्रों की मनोवृत्तियों को उजागर किया है। कहीं जाति या स्थान की भावनाओं और विशेषताओं को व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। कहीं पर ईश्वर में आस्था अनास्था को लेकर भी इन्होंने अपनी कहानियों में स्थान दिया है। नगर बोध और कस्बाई मनोवृत्ति के संघर्ष एवं सम्पर्क द्वारा भी इन कहानीकारों ने कस्बे के लोगों की मनोवृत्ति का चित्रण किया है। [66]

"खोई हुई दिशाएँ"[67] कहानी में कमलेश्वर ने कस्बाई और शहरी जीवन मूल्यों की तुलना स्पष्ट रूप से की गई है। सभी परिचित दिशाओं का खो जाना, बीसवीं सदी के मनुष्य की नियति है, और उसकी त्रासदी है।

देहात और कस्बे की हर सजीव एवं निर्जीव वस्तु में कहीं न कहीं अपनत्व दिखाई देता है, परन्तु शहरों की भारी चीजें भी अपनी कभी नहीं लगतीं, वास्तव में शहर भी अपना नहीं होता ।

इस शहर में आये चन्दर को तीन वर्ष हो गये हैं, कस्बाई संस्कृति और संस्कारों पर इसका व्यक्तित्व विकसित हुआ है। इसी कारण वह हर स्थान पर परिचित की आँखें ढूँढता है। कृत्रिमता और औपचारिकता के बीच उसे बेहद चिढ़ है, एक प्याली कॉफी पीकर वह दिन भर घूम रहा है,

भूख का एहसास भी उसे नहीं हुआ, "दिमाग और पेट का साथ ऐसा हुआ है कि, कुछ भी सोचने से उसे लगती है।"[68] इतने बड़े शहर में वह अकेला पड़ गया है। "आसपास से सैकड़ों लोग गुजरते पर कोई नहीं पहचानता, हर आदमी या औरत लापरवाही से दूसरों को नकारता, या खुद दर्द में डूबा हुआ गुजर जाता है।"[69]

शहरी जीवन की अतिव्यस्तता का अनुभव चन्दर कर रहा है, तथा वह कस्बाई मानव मूल्यों का इस राजधानी में सर्वथा अभाव पा रहा है।

इसी अजनबीयत के कारण उसे बार बार अपना शहर याद आता है, जहाँ से तीन साल पहले वह चला आया था, "गंगा के सुनसान किनारे पर भी अगर कोई अनजान मिल जाता तो नजरों में पहचान की एक लकीर जाती थी।"[70] यहाँ पर वह सब कुछ अलग ही पा रहा है। वह सोचता है कि "यह राजधानी ! जहाँ सब अपना है, अपने देश का है....पर कुछ भी अपना नहीं है। अपने देश का नहीं है।"[71] चन्दर अपने से परिचित की तलाश में है किन्तु उसे कहीं भी अपना परिचित नहीं मिल पा रहा है। चन्दर अपनत्व और अपनों को ढूँढ रहा है। वह अपनी स्मृति को ताजी करता है। वह परिचय की माँग करता है, वह सघन प्रतीति चाहता है। वह अपनी प्रेमिका इन्द्रा में परिचय और प्रतीति जानकर उसके घर जाता है, लेकिन जब वह चाय में चीनी डालते वक्त उससे पूछती है चीनी कितनी दूँ तो चन्दर हड़बड़ा जाता है, एक झटके से सब कुछ बिखर जाता है।

चन्दर सोचता है कि, शायद मेरी पत्नी भी मुझे नहीं जानती है। चन्दर को अपनी पत्नी में भी पहचान की तलाश है...

"फिर निर्मला पर हाथ रखता है...उसके गोल कंधों को छूता है... वह स्पर्श भी पहचाना हुआ है.....धीरे धीरे वह उसके पूरे शरीर को पहचानने के लिये टटोलता है और उसकी साँसों की हल्की आवाज को

सुनने और पहचानने की कोशिश करता है।

सम्बन्धों की अनेक दिशाओं में सबसे महत्वपूर्ण और आखिरी दिशा पत्नी की ही होती है, चन्दर अन्य सभी दिशाओं को खो चुका है और अब आखिरी दिशा भी उसके हाथ से निकलने लगी है, क्योंकि निर्मला पक्कर तो गई है, बार बार के स्पर्श से जब निर्मला जागती नहीं है, तो उसे ऐसा अनुभव होता है कि, कहीं निर्मला भी उसे न पहचानती हो यह धबड़ा उठता है और उसे गहरी नींद से उठाकर पागल की तरह पूछता है कि "क्या तुम मुझे पहचानती हो? मुझे पहचानती हो निर्मला.... उसकी आँखें उसके चेहरे पर कुछ खोजती है।

कस्बाई मानव मूल्य और शहरी मानव मूल्यों में अभी भी काफी अन्तर है क्योंकि शहरी जीवन में किसी के पास अधिक समय नहीं है, और न ही इतना अपनत्व है कि, वह आपको, अपने में भुला सके। शहर का हर सजीव एवं निर्जीव वस्तु शहर की हृदयहीनता का चित्रण करता है जिससे चन्दर भयभीत है।

कहानीकार ने चन्दर के माध्यम से शहर की हृदयहीनता तथा वैज्ञानिक युग से प्रभावित मनुष्यों का चित्रण किया है तथा शहर के कटु यथार्थ जीवन को स्पष्ट किया है। शहरी मानवमूल्यों की अतिशून्यता को चन्दर के व्यवहार के माध्यम से तथा उसके विचारों और मनोभावों द्वारा स्पष्ट किया है।

"कोई दूसरे दिशाये" निरन्तर प्रवहमानता या शहर उन्मुख, निरन्तर प्रवहमानता को मुखर करती ही नहीं, वह महानगरीय यातना को भी पूरे

सामर्थ्य से उभारती है। छोटे शहर से महानगर में आकर पारिवारिक भूमिकाएँ बदल गयीं, उनके सम्बन्ध और निर्वाह के रूप बदलते जा रहे..... चन्दर शहर में आकर अब किसी पिता या ताऊ के बारे में नहीं सोचता, उसकी भावना केवल उसकी पत्नी तक सीमित हो जाती है, व्यापक मूल्य एकाएक वैयक्तिक मूल्य हो उठता है, महानगर में समूह या जुड़े हुये लोगों के बारे में सोचने की जरूरत ही नहीं रहती, न पीछे छूटे हुये लोग ही याद आते हैं। व्यक्ति के विचार बदल जाते हैं, और "खोई हुई दिशायें" इस बदलती स्थिति, पारिवारिक भूमिका बदलाव। और बदलते मूल्यों की एक सशक्त कहानी बन जाती है, लगता है अपने समय के परिवर्तन के एक बड़े सत्य पर कहानीकार की नजर गयी है और उसे बखूबी उसने कहानी में उभारा ही नहीं, उसका सशक्त विश्लेषण भी किया है।"[72]

"खोई हुई दिशायें" में कस्बाई जीवन मूल्यों और शहरी जीवन मूल्यों में अन्तर स्पष्ट दृष्टिगत होता है। शहरी मानव मूल्यों पर अतिआधुनिकता और औद्योगीकरण का प्रभाव है। शहरों में मानव मूल्यों की अति क्रूरता को चन्दर के व्यवहार के माध्यम से तथा उसके विचारों और मनोभावों द्वारा स्पष्ट किया है।

"खोई हुई दिशायें" कहानी में कस्बाई और नगरीय मूल्यों की मानसिक संवेदना के अन्तर को बारीकी से उभारा गया है। इन्द्रा पर नगरीय परिवेश का प्रभाव बाद में दृष्टिगत होने लगता है। जो इन्द्रा पहले चन्दर के साथ आजीवन रहने का वादा करती थी वही बाद में नगरीय प्रभाव पड़ने के उपरान्त अपने पूर्व प्रेमी चन्दर से पाप में बीती जिन्दगी पूछती है। शहरी नारी सम्भवतः भावना के स्थान पर बुद्धि को अधिक महत्व देती है। इसीलिये उसकी दृष्टि स्थितियों से जुड़ती है, बदलती है, टूटती है, और कदाचित् बिखरती भी है। इस प्रकार कमलेश्वर ने स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों में दरार डालने वाली भौतिक मूल्यवत्ता को

उपेक्षा है क्योंकि चन्दर पहले चन्दा में अपनी पहचान पा रहा था ।

कमलेश्वर ने "कस्बे का आदमी"[73] की कहानी में कस्बाई मूल्य और आधुनिकीकरण के मूल्य में भिन्नता दृष्टिगत कराई है।

शिवराज के व्यवहार से स्पष्ट होता है कि, आज के शहरी वातावरण से प्रभावित मनुष्य में सामाजिक मानवता किस प्रकार खत्म हो रही है, यदि शिवराज में मानवीयता होती तो छोटे महाराज को अन्तिम वक्त इतना बड़ा मानसिक आघात न पहुँचता। शिवराज के व्यवहार में आधुनिकीकरण के मानवीय मूल्य स्पष्ट परिलक्षित होते हैं।

इस कहानी के महाराज के माध्यम से कस्बाई मूल्यों की विशेषता को कमलेश्वर ने भावुकता, स्वाभिमान, अपनत्व, सहनशील, विश्वास रखने की प्रवृत्ति, उदारता, आर्थिक परेशानियाँ आदि व्यक्त की हैं।

इस कहानी में शहर के आधुनिकीकरण के मूल्य स्पष्ट उभर रहे हैं। कहानी शहर और कस्बे के व्यक्ति में अन्तर स्पष्ट करती है।

महानगर अब अपने व्यक्तित्व को खो चुके हैं। इस महानगरीय सभ्यता में अपनत्व की सभी दिशाएँ खत्म हो रही हैं। यह नई संस्कृति मनुष्य के लिए भयानक साबित हो रही है।

प्रत्येक कस्बे या कस्बे के किसी गली में कस्बाई व्यक्ति ऐसे जरूर मिलते हैं जो जिन्दगी में स्थिर नहीं रह पाते हैं। वैसे ही एक व्यक्ति छोटे महाराज हैं जिन्हें अपने तोते मिट्ठू से अत्यधिक प्यार है।

नहीं रहे। अन्तिम काल में राम नाम सुनने की बड़ी इच्छा रही, "पता नहीं, उनके अन्तिम क्षणों में भी सन्तु तोते की वाणी फूटी थी या नहीं?"

महाराज द्वारा कस्बे की सारी विशेषताएँ—भावुकता, स्वामीभाव, अपनत्व, सहज स्नेह, विश्वास रखने की वृत्ति, उदारता, आर्थिक परेशानियाँ अभिव्यक्त व्यक्त हुई है। महाराज आर्थिक रूप से विपन्न थे। परिस्थितियों में जकड़े हुये थे। रूढ़ियों के बन्धनों में फंसे हुये थे। फिर भी एक जीवंत मनुष्य थे। मस्तमौला और सदैव प्रसन्न होकर जीने की उनकी वृत्ति थी। उनको कोई समझ नहीं सका—यह उनका दुर्दैव है।

प्रस्तुत कहानियों के माध्यम से कस्बाई जिन्दगी की स्वाभाविकता को चित्रित करने का उपक्रम किया गया है। "कस्बे का आदमी" आज भी मिट्टी की भीनी सुगन्ध से बंधा हुआ है। उसे प्रकृति से लगाव है। इसमें अतिशय बौद्धिकता का तीखापन नहीं व्यापता, नगर का मनुष्य बौद्धिक चकाचौंध से इतना ग्रसित है कि, वह प्रकृति से एकदम कट चुका है। जबकि "कस्बे का आदमी" अन्तरंग स्तर पर प्रकृति और प्राकृतिक जीवन से जुड़ा हुआ है। शिवराज के माध्यम से लेखक ने नगरीय और ग्रामीण जीवन के अंतर को उभारते हुये नये सिरे से मनुष्य की प्रकृति से जुड़ने की प्रेरणा प्रदान की है। अतिशय बौद्धिकता मानसिक अवधन को अपनाती है। लेखक भावनात्मक सम्बन्धों को रेखांकित करते हुये प्राकृतिक मूल्यों की अर्थवत्ता को रेखांकित करता है।

इस कहानी में धार्मिक मूल्य भी परिलक्षित होते हैं। हिन्दू धर्म में ऐसी मान्यता है कि, मनुष्य जीवन के अन्तिम समय में यदि राम का नाम ले या किसी के द्वारा राम का नाम सुन ले तो मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए छोटे महाराज हमेशा सन्तु तोते को सीताराम सिखाया करते हैं।

"यह कहानी जीने की इच्छा रखने और जीवन जीने के साधनों के मध्य जूझते व्यक्ति की व्यथा को अभिव्यंजित करती है। महाराज ने एक तोता पाल रखा है वे उसे हमेशा सीताराम सिखाते हैं। उनका विश्वास है कि, मेरे अन्तिम समय में अगर तोता "सीताराम" का उच्चारण करेगा तो यह शब्द मेरे कानों में पड़ने से मुझे मुक्ति मिलेगी। इस बात के लिए महाराज जीते रहते हैं "छोटे महाराज ने स्वयं तो नहीं पढ़ा था, पर रामलीला आदि में सुनने के कारण यह उनका पक्का विश्वास था कि, अन्तिम काल में यदि राम का नाम कानों में पड़ जाये तो मुक्ति मिल जाती है। पता नहीं, उनके अन्तिम क्षणों में मन्नू तोते की वाणी फूटी भी या नहीं।" [75]

वस्तुतः परिवेश तथा परिस्थितियों के अनुसार मानव मूल्यों में भी परिवर्तन आ जाता है। गांव में जहाँ हमदर्दी और भाईचारा ही जीवन का सबसे बड़ा मूल्य है वहाँ शहर की यान्त्रिक जिन्दगी के व्यक्ति अपने सिवाय और किसी को नहीं जानता। यहाँ की व्यस्त जिन्दगी में दो व्यक्ति बीस दिन एक ही कमरे में रहकर भी एक दूसरे को पहचान नहीं पाते। "बीस सुबहों के बाद" [76] कमला चौहान। जहाँ व्यक्ति रोज एक्सीडेंट देखता है और अनदेखा कर देता है। ठंडक (सन्दीप सिंह) की नायिका को आरम्भ में चाहे एक बिछुड़े हुये माँ बेटे को मिलाकर ठंडक की अनुभूति होती हो किन्तु धीरे धीरे वह भी अपने पति की भांति या अन्य व्यक्तियों की भाँति दूसरों के सुख दुःख से निरपेक्ष होकर अपने तक ही सीमित हो जायगी और एक स्थिति ऐसी भी आयगी जब दिल्ली में एक मौत [77] (कमलेश्वर) की भाँति किसी की मृत्यु भी उनकी दिनचर्या में किसी प्रकार का विघ्न नहीं डाल पायेगी।

आज के समाज में मानव को जहाँ प्राचीन मूल्यों का आग्रह छोड़ना पड़ रहा है तो वहीं प्राचीन जीवन मूल्यों से मनुष्य चिपटा हुआ है, वह नवीन परिस्थितिजन्य मानव मूल्यों को नहीं आत्मसात कर पा रहा है।

जैसा कि विष्णु प्रभाकर की कहानी "खिलौने और बेटे" के माता पिता यह जानते हैं कि यदि वह परिवार के सदस्यों के साथ खुशी खुशी से रहना चाहते हैं तो उन्हें प्राचीन मूल्यों का आग्रह छोड़ना होगा ।

वह जानते हैं कि, अपने पुत्र के विवाह को लेकर उन्होंने चाहे कितने स्वप्न सँजो रखे हों, पर उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार उन्हें भी नहीं है। वस्तुतः आज के युग में यदि कोई व्यक्ति समय के साथ नहीं चल पाता तो वह समय की [illegible] गति से कट कर अकेला पड़ जाता है। यदि माता पिता अपनी सन्तान को नहीं खोना चाहते तो उन्हें पास रखने की पूरी कीमत चुकानी पड़ेगी अर्थात् उसे अपने सम्बन्ध में निर्णय लेने की पूर्ण स्वतन्त्रता देनी होगी चाहे उसके लिये उन्हें स्वयं को कितना भी बदलना क्यों न पड़े । इसके विपरीत राजेन्द्र यादव की "बिरादरी बाहर" में पिता परम्परागत जीवन मूल्यों के प्रति अपने मोह के कारण ही स्वयं को परिवार से कटा हुआ पाता है। पहले कभी परंपरागत मूल्यों का विरोध करने वाले को बिरादरी से बाहर कर दिया जाता था किन्तु आज के परिवर्तनशील समाज में परम्परागत मूल्यों का समर्थन करने वाला व्यक्ति स्वयं को बिरादरी से बाहर अनुभव करता है। यह कहानी भी सिर्फ एक व्यक्ति की ही कहानी नहीं है अपितु उस समूची पुरानी पीढ़ी की कहानी है जो अभी तक प्राचीन मूल्यों से चिपटा हुआ है।

वर्तमान युग में चाहे वह पति पत्नी हो या प्रेमी प्रेमिका, उनका जो स्वरूप आज की कहानियों में देखने में आता है वह पूर्ववर्ती कहानियों में चित्रित स्त्री पुरुष के सम्बन्धों से नितान्त भिन्न है। स्त्री पुरुष के सम्बन्धों के माध्यम से जिस मूल्य संघर्ष का चित्रण हुआ है। उसका अनुशीलन मैंने दो दृष्टियों से किया है। वैवाहिक सम्बन्ध के सन्दर्भ में तथा प्रेम सम्बन्ध के सन्दर्भ में।

आज के युग में पति पत्नी के सम्बन्धों में विशेष परिवर्तन हुआ है। विवाह अब एक धार्मिक या सामाजिक कर्म न होकर स्त्री पुरुष की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति का एक सर्वमान्य साधन है। नारी अब पति को देवता मानने वाली तथा अपने व्यक्तित्व को पति के व्यक्तित्व में विलीन कर देने वाली नहीं रही अपितु उसने अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास किया है। आर्थिक दृष्टि से भी वह पहले की अपेक्षा कहीं अधिक स्वतंत्र है। नारी का यह स्वतंत्र व्यक्तित्व ही पति पत्नी के मध्य उत्पन्नमूल्य संघर्ष के लिए उत्तरदायी है।

समसामयिक पुरुष चाहे जितना आधुनिक क्यों न हो गया हो किन्तु पत्नी के रूप में उसकी नारी कल्पना किसी न किसी अंश में उस परम्परागत मूल्य से अवश्य जुड़ी होती है जिसमें पति पत्नी की पूर्ण अनुगता बन कर आती है। वैचारिक धरातल पर चाहे विरोध करता हो किन्तु व्यवहार रूप में वह इसका आकांक्षी अवश्य रहता है।

वैवाहिक सम्बन्धों की भाँति प्रेम सम्बन्धों में भी परिवर्तन आया है। आज की प्रेम कहानी रोमांटिक भावुकता का सर्वथा अभाव है। इस क्षेत्र में त्याग और आदर्श जैसे शब्द अब अर्थहीन हो चुके हैं। आज की कहानी के पात्र "प्लेटोनिक लव" के उपासक न होकर भाव और सेक्स के मिले जुले धरातल पर इसे स्वीकारते हैं। प्रेम का अब न रूढ़ नैतिक मूल्यों से कोई सम्बन्ध रह गया है और न अब इस प्रेम सम्बन्ध की सामाजिक परिणति ही अनिवार्य है। प्रेम अब एक नितान्त व्यक्तिगत अनुभव है जिसे परम्परागत सामाजिक, नैतिक मूल्यों के सन्दर्भ में देखना आवश्यक नहीं रह गया है।

प्रेम सम्बन्धों की बढ़ती हुई जटिलता तथा अनिश्चयात्मकता दूसरा प्रमुख अन्तर है। मानव मन की जटिलताओं के कारण आज प्रेम का स्वरूप भी

पूर्ववर्ती प्रेम कथाओं की भाँति सरल एवं निश्चित न होकर जटिल एवं अनिश्चित हो गया है।

वस्तुतः आज के युग ने स्त्री तथा पुरुष दोनों को अपने अपने व्यक्तित्व के प्रति अतिरिक्त जागरूक कर दिया है। इस नयी स्थिति में कोई भी अपने को मिटाना नहीं चाहता । इसीलिये आज सारा साहित्य स्वाधीनता और प्रेम के मानवीय मूल्यों के मध्य संघर्ष के मध्य ही का साहित्य हो गया है। यह द्वन्द्वात्मक स्थिति स्त्री और पुरुष के मध्य ही नहीं चल रहा है बल्कि दोनों के अन्दर अलग अलग भी यह मूल्यों का द्वन्द्व चल रहा है। इन्हीं मानवीय मूल्यों के अर्न्तद्वन्द्व के कारण हमारे वैयक्तिक और सामाजिक मूल्यों में एक प्रकार का अन्तर्विरोध उत्पन्न हो गया है। नई कहानी में पुरुषीकरण की इसी मानव मूल्यों की जटिलता के कारण फलस्वरूप उत्पन्न संघर्ष का चित्रण हुआ है।

"संदर्भ - सूची"

			पृष्ठ सं0
1-	हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा	सम्पादक राम दरश मिश्र एवं नरेन्द्र मोहन	120
2-	पेपर वेट	गिरिराज किशोर	95
3-	हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य	डा0 रमेश चन्द्र लवानिया	227
4-	हिन्दी की प्रगतिशील कहानियाँ	सम्पादक धनंजय वर्मा	195
5-	आधुनिक कहानियाँ	डा0 भगवत स्वरूप मिश्र	68
6-	ग्लेशियर	मृदुला वर्मा	113
7-	नई कहानी कथ्य और शिल्प	डा0 सन्त बक्श सिंह	47-48
8-	कथानिका प्रतिनिधि कहानियाँ	डा0 शिवनन्दन प्रसाद	193
9-	सामाजिक चिन्तन	डा0 सत्येन्द्र त्रिपाठी	206
10-	सामाजिक चिन्तन	डा0 सत्येन्द्र त्रिपाठी	210
11-	नई कहानी की भूमिका	कमलेश्वर	158
12-	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन	डा0 कैलाश शर्मा	126
13-	एक दुनिया समानान्तर	राजेन्द्र यादव	225
14-	कहानी-नयी कहानी	डा0 नामवर सिंह	33
15-	कहानी-नयी कहानी	डा0 नामवर सिंह	33-34
16-	समकालीन हिन्दी कहानी और मूल्य संघर्ष की दिशा	सविता जैन	121
17-	एक दुनिया समानान्तर	राजेन्द्र यादव	331
18-	एक दुनिया समानान्तर	राजेन्द्र यादव	347
19-	एक दुनिया समानान्तर	राजेन्द्र यादव	346
20-	एक दुनिया समानान्तर	राजेन्द्र यादव	345
21-	श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ	डा0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय	131
22-	समकालीन हिन्दी कहानी और मूल्य संघर्ष की दिशा	सविता जैन	133

45- मेरी प्रिय कहानियाँ	निर्मल वर्मा	116
46- मेरी प्रिय कहानियाँ	निर्मल वर्मा	20
47- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन	डा० बै० लाल शर्मा	110
48- मेरी प्रिय कहानियाँ	मन्नू भण्डारी	81
49- हिन्दी कहानी अपनी जबानी	डा० इन्द्र नाथ मदान	145
50- कहानी की संवेदनशीलता, सिद्धान्त और प्रयोग	डा० भगवान दास वर्मा	234
51- एक दुनिया समानान्तर	राजेन्द्र यादव	245
52- एक दुनिया समानान्तर	राजेन्द्र यादव	250
53- एक दुनिया समानान्तर	राजेन्द्र यादव	250
54- हिन्दी कहानी अपनी जुबानी	डा० इन्द्र नाथ मदान	145
55- भटकती राख	भीष्म साहनी	12
56- कहानी की संवेदनशीलता सिद्धान्त एवं प्रयोग	डा० भगवान दास वर्मा	210
57- द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय	154
58- त्रिकोण	कृष्ण बलदेव वैद	11
59- कील	महीप सिंह	11
60- मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ	राजपाल एण्ड सन्स	224
61- कहानी की संवेदनशीलता सिद्धान्त और प्रयोग	डा० भगवान दास वर्मा	214
62- हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा	सम्पादक रामदरश मिश्र एवं नरेन्द्र मोहन	62
63- एक दुनिया समानान्तर	राजेन्द्र यादव	376
64- एक दुनिया समानान्तर	राजेन्द्र यादव	380
65- एक दुनिया समानान्तर	राजेन्द्र यादव	380
66- हिन्दी कहानी बदलते प्रतिमान	डा० रघुवीर दयाल वार्ष्णेय	145
67- मेरी प्रिय कहानियाँ	कमलेश्वर	40
68- मेरी प्रिय कहानियाँ	कमलेश्वर	40

69- मेरी प्रिय कहानियाँ	कमलेश्वर	40
70- मेरी प्रिय कहानियाँ	कमलेश्वर	40
71- मेरी प्रिय कहानियाँ	कमलेश्वर	40
72- हिन्दी कहानी समाजशास्त्रीय दृष्टि	डा0 रघुवीर सिन्हा	31-32
73- राजा निरबंसिया	कमलेश्वर	241
74- राजा निरबंसिया	कमलेश्वर	241
75- राजा निरबंसिया	कमलेश्वर	241
76- बीस सुबहों के बाद	मनहर चौहान	130
77- खोई हुई दिशायें	कमलेश्वर	75

उपसंहार

उपसंहार

प्रबन्ध में प्रस्तुत मानव मूल्यों के विवेचन से प्रकट है कि, आज के सं. जी. से बदलते हुये परिवेश में मानव मूल्यों की स्थिति गड्ड मड्ड में पड़ गई है। जीवन की विसंगतियाँ और विद्रूपतायें इतना कुछ बढ़ गई हैं कि, मानव मूल्य क्या हों अथवा क्यों हो सकते हैं अथवा कैसे उन्हें ऐसा रूप दिया जाय कि, वे समाज का मानदण्ड बन सके। ये चुनौती सा बन गया है। वर्तमान क्षति की वैज्ञानिक उन्नति और निरन्तर होती हुई प्रगति से सारा संसार प्रभावित हो रहा है और यदि विश्व में अणु युद्ध न हुआ तो वर्तमान में ही नहीं आगत जीवन से भी संसार का मनुष्य एक दूसरे से प्रभावित होता रहेगा । उत्तरोत्तर मानवता विश्व संस्कृति का गन्तव्य प्राप्त करने की दिशा में गतिशील है। अब स्थान, काल, और सभी प्रकार की प्राकृतिक भौगोलिक सीमायें टूट चुकी हैं। अमेरिका में जो कुछ घटित हो रहा है उससे अफ्रीका या लेटिन दक्षिणी अमेरिका प्रभावित है। इसी प्रकार उत्तरी और दक्षिणी विश्व समुदाय एक हो रहे हैं। स्वाभाविक है कि, स्थान काल समाज और व्यक्तियों के लिए निर्मित सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, आदि सभी प्रकार के मूल्य परस्पर संक्रमित हो रहे हैं।

भारतीय एक पति और पत्नी के आदर्श को पश्चिम के लोक सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। वे इसमें सम्बन्धों के छद्म वेश की कल्पना करते हैं। कारण पश्चिम के स्त्री पुरुष के सम्बन्धों में जो खुलापन है, उनको वही सहज और स्वाभाविक प्रतीत होता है किन्तु हम भारतवासी अपने आदर्श सम्बन्धों को मान्यता देते हैं और इसे अपनी पहचान घोषित करते हैं। पाश्चात्य नरनारी के सम्बन्धों को हम अनाचार, दुराचार या भ्रष्टाचार की ही संज्ञा देना चाहते हैं। इसी प्रकार भारतवासी अपने देश

के प्राचीन धार्मिक, दार्शनिक मूल्यों को महत्व देते हैं और यह मानकर चलते हैं कि, पाश्चात्य चिन्तन में उस प्रकार की मूल्यवत्ता नहीं है। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि, पश्चिमी देश भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों से प्रभावित हैं और हम उनके नैतिक आदर्शों से,पश्चिम के नैतिक आदर्शों में कदाचित व्यापकता अधिक है। वे सत्य, ईमानदारी, सदाचार आदि को स्त्री पुरुष के शारीरिक सम्बन्धों के साथ जोड़ करके अपनी नैतिकता को प्रतिपादित करते हैं।

हमारे यहाँ नारी नैतिकता का मूलाधार स्त्री पुरुष के काम संबंधों को सर्वाधिक वर्चस्व प्रदान करता है।

वैसे यह ध्यान में रखने की बात है कि, कोई भी आदर्श अथवा मूल्य अपने आप में विशिष्ट होता है जैसे सच बोलना, बेईमानी न करना, चोरी न करना या डाका न डालना, किसी की हत्या न करना, परनारी पर कुदृष्टि न डालना, ऐसे मानव मूल्य निश्चय ही आदर्श के धरातल पर ग्रहणीय है। यह अलग बात है कि, मनुष्य यथार्थ और व्यावहारिक जीवन में इनको परिस्थितिवश तोड़ने के लिए विवश हो जाता है। उदाहरण के लिए पुरुष जब देखता है कि, उसकी सच्ची कार्य कुशलता के बावजूद उसकी पदोन्नति नहीं हो रही है तो वह साहस, धैर्य, कामिनी को अपने उन्नति के लिए सीढ़ियों के रूप में प्रयोग करने को विवश हो जाता है क्योंकि वह देखता है कि, ऊपर चढ़ने का रास्ता इन्हीं सीढ़ियों से होकर जाता है।

इसी प्रकार बहुत सी स्थितियाँ होती हैं। जब स्त्री अथवा पुरुष परिस्थितिजनित स्थितियों से घिरा होने के कारण सब कुछ समझते हुये भी गलत कदम उठाने के लिए मजबूर हो जाता है। मान लीजिये कि, एक युवक और

एक युवती एक दूसरे से अनजान हैं किन्तु रात्रि के एकाकी वातावरण में परिस्थितिवश साथ पड़ जाते हैं तो ऐसे में उनका मानसिक और शारीरिक स्तर पर एक दूसरे से जुड़ जाना आश्चर्यजनक नहीं कहा जायेगा । किसी व्यक्ति के सामने सोने की सौ पचास मोहरें पड़ी हों उसके आगे पीछे उसे उनका मालिक न दिखे और प्रलोभन में पड़कर उन्हें हथिया ले, तो यह नितान्त स्वाभाविक कहा जायेगा ।

मानव मूल्य वस्तुतः परिस्थितियों के अधीन होती हैं। उनका टूटना और बनना परिस्थितिजन्य है। कोई भी व्यक्ति जब पहली बार कोई भी अनैतिक कार्य करने के लिए प्रेरित अथवा प्रोत्साहित होता है तो उसके अन्तर में एक नैसर्गिक द्वन्द होता है। यह द्वन्द सद् और असद् के मध्य होता है। प्रायः सद्प्रवृत्तियाँ हार जाती हैं और मनुष्य गलत कदम उठा देता है। धीरे धीरे यह द्वन्द कमजोर होता जाता है और मनुष्य की दुष्प्रवृत्तियाँ उस पर हावी होती जाती हैं। आज के आपाधापी से परिपूर्ण अस्त व्यस्त जीवन की विसंगतियाँ मनुष्य की दुष्प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करने वाली हैं, इसीलिये सारा सामाजिक वातावरण छिन्नभिन्न होता जा रहा है और मनुष्य उल्टे सीधे काम करने के लिए विवश हो रहा है।

एक बेरोजगार नवयुवक जब चोरी करता है या डाका डालता है तो वह उसकी आर्थिक मजबूरी का दुष्परिणाम है। कोई राजनेता, अपनी कुर्सी बचाने के लिए निम्नस्तरीय घटिया स्तर के हथकंडे का इस्तेमाल करता है तो वह भी उसकी लाचारी है। यदि अब पाकिस्तानी प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो अपने पद को बनाये रखने के लिए भारतवर्ष से घृणा करने का अभियान छेड़े हुये हैं तो ये भी उनकी लाचारी ही है। काश्मीर में, पंजाब में, अफगानिस्तान में,

यदि वे आतंकवादियों को बढ़ावा दे रही हैं तो इसमें अस्वाभाविक जैसा कुछ भी नहीं है। निहित स्वार्थ की सिद्धि के लिए यह सब तो होता ही है।

प्रत्येक देश का राष्ट्राध्यक्ष एक बारउस कुर्सी तक पहुँचकर वह सबकुछ करने के लिए विवश होता है जिसे हम मानव मूल्यों के हनन की संज्ञा देते हैं। कहने का तात्पर्य है कि, स्वार्थ सिद्धि का कुचक्र बड़ा ही विचित्र है। व्यक्ति समाज, राष्ट्र सभी निहित स्वार्थों के लिए अनैतिक कार्य करते हैं और उसे वे विश्व के समक्ष उचित सिद्ध करते हैं। झूठ को सच बनाने का भरसक प्रचार और प्रसार करते हैं।

इस प्रकार झूठ अनैतिक होकर भी आज के जीवन में एक मूल्य बन गया है। हिंसा को रोकने के लिए हिंसा की जाती है। जनता जब हिंसात्मक वृत्ति पर आरूढ़ होती है तो उसे अनैतिक करार दिया जाता है। किन्तु प्रशासन जब जनता की हिंसा को करने के लिए हिंसा का सहारा लेता है तो उसे वाजिब करार दिया जाता है काम एक ही है। आप किसे मूल्य कहेंगे और किसे मूल्य का टूटना अथवा मूल्यहीनता। इसका उत्तर देना नितान्त असाध्य है। संसार में बहुत सारे काम एक स्थिति में मूल्यवान समझे जाते हैं और दूसरे मूल्यहीन, दम्पति का काम प्रेम आदर्श मानवमूल्य है किन्तु दाम्पत्येतर काम सम्बन्ध मूल्यहीनता।

इस प्रकार एक ही काम एक सन्दर्भ में महत्वपूर्ण होता है और दूसरे सन्दर्भ में मूल्य रहित। इसके बीच ऐसी स्थितियाँ बनती हैं, जिन्हें मूल्यों के संक्रमण, विघटन आदि से जोड़ा जा सकता है। जोड़ा जाता भी है।

यदि किन्हीं कारणों से एक परिणीता पुत्र प्राप्ति से लम्बी अवधि तक वंचित रहती है और उसे उपलब्ध करने के लिए किसी इतर व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित करती है तो सामाजिक दृष्टि से उसे अनैतिक माना जाय या नैतिक सोचने की बात है।

प्राचीन भारत में इसके लिए नियोग की व्यवस्था थी ताकि आदर्श अथवा मानव मूल्य भी अपने स्थान पर बना रहे और अपवाद उसे सुदृढ़ करे। किन्तु आज सब कुछ संक्रान्ति से जोड़ दिया जाता है।

व्यवहार जगत में आज ऐसा प्रतीत होता है कि, हम मूल्यहीनता के चरम बिन्दु पर पहुँच गये हैं। अथवा पहुँचने वाले हैं। आज अच्छाई, बुराई, पाप पुण्य, झूठ सच, बेईमानी, ईमानदारी, धर्म अधर्म, नैतिकता अनैतिकता, हिंसा अहिंसा सब कुछ केवल शब्द रह गये हैं। व्यावहारिक स्तर पर जो कुछ घटित हो चुका है वही सच है। कहना चाहें, भले ही वह मीठा हो, खट्टा हो, चरपरा हो, कड़ुआ हो, आज काम होने के बाद कोई किसी पर उँगली नहीं उठाता, किसी की बेटी यदि किसी के साथ भाग जाती है। भले ही बेटी अभिजात वर्ग की ब्राह्मण हो और प्रेमी नितान्त पिछड़े वर्ग का हो। एक बार थोड़ा शोर शराबा होता है। ठीक वैसे ही जैसे सरोवर के स्थिर जल में कोई एक कंकड़ी फेंक दे और उससे जल में थोड़ी चंचलता आ जाय लेकिन थोड़े समय बाद शान्त हो जाता है। सहज और स्वाभाविक हो जाता है। न किसी का हुक्का पानी बन्द होता है और न ही कालान्तर में रोटी बेटी के सम्बन्ध खत्म हो जाते हैं। इसलिये कि, आज के निरन्तर विकासशील सामाजिक परिवेश में सब कुछ सहज ढंग से ग्रहण करने और स्वीकारने की अद्भुत शक्ति उत्पन्न हुई है।

	2	3	4	
21-	गिरिराज किशोर	पेपरवेट	राजकमल प्रकाशन दिल्ली	1967
22-	गिरिराज किशोर	रिश्ता और अन्य कहानियाँ	राजकमल प्रकाशन दिल्ली	1969
23-	दूधनाथ सिंह	पहला कदम	रचना प्रकाशन	1976
24-	दूधनाथ सिंह	सपाट चेहरे वाला आदमी	अक्षर प्रकाशन प्रा0 लि0 दिल्ली	1967
25-	दूधनाथ सिंह	सुखान्त	रचना प्रकाशन	1971
26-	धर्मवीर भारती	स्वर्ग और पृथ्वी		
27-	धर्मवीर भारतीय	मुर्दों का गाँव	किताब महल प्रयाग	1946
28-	धर्मवीर भारती	बन्द गली का आखिरी मकान	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी	1969
29-	धर्मवीर भारती	चाँद और टूटे हुये लोग-	किताब महल प्रयाग-	1955
30-	नरेश मेहता	तथापि	हिन्दी ग्रंथमाला बम्बई	1961
31-	निरुपमा सेवती	खामोशी ओढ़ते हुये	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली	1972
32-	निरुपमा सेवती	भीड़ में गुम	इन्द्र प्रस्थ प्रकाशन दिल्ली	1980
33-	निरुपमा सेवती	कच्चे मकान	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली	1976
34-	निरुपमा सेवती	आतंक बीज	इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन के-67कृष्ण नगर दिल्ली	
35-	निर्मल वर्मा	जलती झाड़ी	राजकमल प्रकाशन दिल्ली	1962
36-	निर्मल वर्मा	पिछली गर्मियों में	राजकमल प्रकाशन दिल्ली	1968
37-	निर्मल वर्मा	मेरी प्रिय कहानियाँ	राजकमल प्रकाशन दिल्ली	1960
38-	प्रयाग शुक्ल	अकेली आकृतियाँ	इलाहाबाद परिमल प्रकाशन	1965
39-	फणीश्वर नाथ रेणु	ठुमरी	राजकमल प्रकाशन दिल्ली	1959
40-	भगवती चरण वर्मा	राख और चिनगारी	प्रयाग साहित्य केन्द्र	1954
41-	भीष्म साहनी	निशाचर	राजकमल प्रकाशन	1983
42-	भीष्म साहनी	पटरियाँ	राजकमल प्रकाशन	1973
43-	भीष्म साहनी	भटकती राख	राज कमल प्रकाशन	1966
44-	भीष्म साहनी	भाग्य रेखा	राजहंस प्रकाशन दिल्ली	1951

1	2	3	4	
45-	भगवत स्वरूप मिश्र	आधुनिक हिन्दी कहानी	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा चतुर्थ संस्करण	1980
46-	मनहर चौहान	बीस सुबहों के बाद	उमेश प्रकाशन दिल्ली	1965
47-	मनहर चौहान	मृत्यु लोक तथा अन्य वैज्ञानिक कहानियाँ	उमेश प्रकाश, दिल्ली	1961
48-	मन्नू भण्डारी	एक प्लेट सैलाब	अक्षर प्रकाशन दिल्ली	1968
49-	मन्नू भण्डारी	तीन निगाहों की एक तस्वीर	श्रमजीवी प्रकाशन प्रयाग	1958
50-	मन्नू भण्डारी	मन्नू भण्डारी की श्रेष्ठ कहानियाँ	अक्षर प्रकाशन दिल्ली	1969
51-	मन्नू भण्डारी	मैं हार गई	राजकमल प्रकाशन दिल्ली	1965
52-	मन्नू भण्डारी	यही सच है और अन्य कहानियाँ	अक्षर प्रकाशन दिल्ली	1966
53-	मृदुला गर्ग	ग्लेशियर से	प्रकाशक प्रभात प्रकाशन चावड़ी बाजार-दिल्ली प्र०सं०	1980
54-	ममता कालिया	छुटकारा	रचना प्रकाशन इलाहाबाद	1969
55-	ममता कालिया	सीट नम्बर	महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद	1978
56-	महीप सिंह	उजाले के उल्लू	हिन्दी भवन जालन्धर	1965
57-	महीप सिंह	घिराव	राजपाल एण्ड सन्ज दिल्ली	1968
58-	मार्कण्डेय	पानफूल	नया हिन्द पब्लिकेशन	1954
59-	मार्कण्डेय	महुए का पेड़	लहर प्रकाशन प्रयाग	1955
60-	मार्कण्डेय	तारों का गुच्छा	नया साहित्य प्रकाशन इला०	
61-	मार्कण्डेय	भूदान	" " " "	
62-	मार्कण्डेय	सहज और शुभ	" " " "	
63-	मार्कण्डेय	हंसा जाई अकेला	राजकमल प्रकाशन मद्रास	1957
64-	मार्कण्डेय	बही मार्कण्डेय की कहानियाँ।	नया साहित्य प्रकाशन इला०	1962
65-	मोहन राकेश	एक और जिन्दगी	राजपाल प्रकाश दिल्ली	1961

1	2	3	4	
66-	मोहन राकेश	एक एक दुनियाँ	राधा कृष्ण प्रकाशन दिल्ली	1969
67-	मोहन राकेश	जानवर और जानवर	राजकमल प्रकाश	1958
68-	मोहन राकेश	नए बादल	काशी भा0ज्ञान पीठ	1957
69-	मोहन राकेश	फौलाद का आकाश	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली	1966
70-	मोहन राकेश	मिले जुले चेहरे	राधा कृष्ण प्रकाश दिल्ली	1969
71-	मोहन राकेश	मेरी प्रिय कहानियाँ	राजपाल एण्ड सन्स	1971
72-	योगेन्द्र कुमार लल्ला	हिन्दी लेखिकाओं की प्रतिनिधि कहानियाँ	रामलाल पुरी, संचालक आत्माराम एण्ड संस कश्मीरी गेट दिल्ली	
73-	राम प्रसाद घिल्डियाल	-पहाड़ी की श्रेष्ठ कहानियाँ	कमल प्र0 दिल्ली	
74-	" " "	बरगद की जड़ें		
75-	" " "	[illegible] पत्ती	इलाहाबाद प्रकाशन	
76-	रमेश बक्षी	एक अमूर्त तकलीफ	नीलाभ प्रकाशन इलाहाबाद	1962
77-	रवीन्द्र कालिया	नौ साल छोटी पत्नी	अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद	
78-	रमेश बक्षी	मेज पर टिकी हुई कहानियाँ	भारतीय ज्ञान पीठ काशी	
79-	डा0राकेश गुप्ता तथा डा0ऋषि कुमार चतुर्वेदी	हिन्दी कहानी 1976	प्रकाशक, ग्रंथायन, अलीगढ़, 10/18 मानसिंह, प्र0सं0	1977
80-	रमा प्रसाद घिल्डियाल "पहाड़ी"	हिन्दी की [illegible] कहानियाँ	लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद	
81-	राजेन्द्र यादव	अपने पार	नेशनल पब्लिकेशन दिल्ली	1968
82-	" "	मोहन राकेश की श्रेष्ठ कहानियाँ	राजपाल एण्ड संस दिल्ली	
83-	" "	अभिमन्यु की आत्महत्या	वि0सा0आगरा	1959
84-	" "	एक पुरुष एक नारी	हिन्दी पाकेट बुक्स दिल्ली	
85-	" "	किनारे से किनारे तक	राजपाल एण्ड संस दिल्ली	1963
86-	" "	खेल खिलौने	भारतीय ज्ञानपीठ काशी	1954
87-	" "	छोटे छोटे ताजमहल	राजपाल एण्ड संस दिल्ली	

1	2	3	4	
88-	राजेन्द्र यादव	जहाँ लक्ष्मी कैद है	राज कमल एण्ड सन्स दिल्ली	1956
89-	" "	टूटना और अन्य कहानियाँ	अक्षर प्रकाशन दिल्ली	1966
90-	" "	देवताओं की मूर्तियाँ	आलोक प्रका० बीकानेर	1953
91-	" "	मेरी प्रिय कहानियाँ	राजपाल एण्ड संस	1971
92-	राम कुमार	समुद्र	राजकमल प्रका० दिल्ली,	1968
93-	राज कुमार भ्रमर	गिरगिटान	विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर पृ०सं०	1965
94-	राम कुमार	हुस्ना बीबी और अन्य कहानियाँ	ला० प्रेस बनारस	1958
95-	लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय	श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ	सरस्वती प्रेस, पृ०सं०	1969
96-	विश्वम्भर नाथ उपाध्याय एवं श्री मंजुल उपाध्याय	समकालीन कहानियाँ	स्मृति प्रकाशन, कटरा बाग, पृ०सं०	1777
97-	शैलेश मटियानी	अहिंसा तथा अन्य कहानियाँ	साहित्य भवन, इलाहाबाद पृ०सं०	1987
98-	" "	सुहागिनी तथा अन्य कहानियाँ	विकल्प प्रका०	1968
99-	" "	हत्यारे	रचना प्रकाशन	1973
100-	" "	मेरी तैंतीस कहानियाँ	आत्माराम एण्ड संस दिल्ली	1961
101-	" "	बर्फ की चट्टानें	विकल्प प्रकाशन	1975
102-	" "	सफर पर जाने से पहले	विकल्प प्रकाशन	1969
103-	" "	तीसरा सुख	प्रतिमा प्रकाशन	1972
104-	" "	दूसरों के लिए	प्रतिमा प्रकाशन	1987
105-	" "	भैंस भैंसिया	शब्दपीठ प्रका० इलाहाबाद	1975
106-	" "	अतीत तथा अन्य कहानियाँ	विकल्प प्रकाशन	1972
107-	" "	बीच और अन्य कहानियाँ	अक्षर प्रका० दिल्ली	1976
108-	" "	कुछ अन्य शैलेश की प्रतिनिधि कहानियाँ	शारदा सदन इलाहाबाद	1965
109-	शेखर जोशी	कोसी का घटवार	नया साहित्य प्रका० प्रयाग	1958

१	२	३	४	
110-	शानी	बबूल की छाँव में	नीलाभ प्रकाशन प्रयाग	1958
111-	शानी	यम के मकानों का नगर	लोक चेतना प्रका० जबलपुर	1971
112-	शिव प्रसाद सिंह	अँधेरा हँसता है	लोक भारती प्रका० इलाहाबाद	1976
113-	” ”	आर पार की माला	सा० म० बनारस	1955
114-	” ”	इन्हें भी इन्तजार है	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी	
115-	” ”	भेड़िये	नेशनल पब्लिकेशन दिल्ली	1977
116-	शिवानी	मेरी प्रिय कहानियाँ	राजपाल एण्ड संस दिल्ली	1973
117-	”	लाल हवेली	विश्वविद्यालय प्रका० वाराणसी	1965
118-	”	पुष्पहार	नेशनल पब्लिकेशन हाउस दि०	1969
119-	”	करिए छिमा	शब्दकार – दिल्ली	1971
120-	सुधा अरोड़ा	बगैर तराशे हुए	लोक भारती प्रकाशन प्रा०लि०, इलाहाबाद	1962
121-	” ”	युद्धविराम	पराग प्रकाशन 3/114, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली	1977
122-	ज्ञान रंजन	यात्रा	रचना प्रकाशन प्रयाग	1961
123-	” ”	फेन्स के इधर या उधर	अक्षर प्रकाशन दिल्ली	1968

x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x=x

"परिशिष्ट"—"1"—"पुस्तक अनुक्रमणिका"

"शोध प्रबन्ध में सहायक पुस्तकें"

क्रमांक	लेखक	कहानी	प्रकाशन	
1-	इन्द्र नाथ मदान	कहानी और कहानी प्रेम चन्द से लेकर आज तक	राम चन्द्र एंड कम्पनी दिल्ली-	1966
2-	" "	हिन्दी कहानी-एक अन्तरंग परिदृश्य कहानी	नीलम प्रकाशन, इलाहाबाद	1967
3-	" "	हिन्दी कहानी अपनी जबानी	राजकमल प्रकाशन प्रा० लि० 8, फैज बाजार, दिल्ली	1968
4-	" "	आधुनिकता और हिन्दी कहानी	राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, फैज बाजार, दिल्ली	1973
5-	" "	पहचान और परख	लिपि प्रका०, दिल्ली	1973
6-	उपेन्द्र नाथ अश्क	हिन्दी कहानियाँ और फैशन	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद	1964
7-	" "	हिन्दी कहानी, एक अंतरंग परिचय	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद	1976
8-	कमलेश्वर	नयी कहानी की भूमिका	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली	1966
9-	कैलाश चन्द्र भाटिया	हिन्दी साहित्य की दिशाएँ	एजूकेशनल बुक हाउस, 4872 चाँदनी चौक, दिल्ली	1979
10-	केसरी कुमार	हिन्दी के कहानीकार	पटना मोतीलाल बनारसी दास	1950
11-	गंगा प्रसाद विमल	समकालीन कहानी का रचना विधान	दिल्ली सुषमा पुस्तकालय	1967
12-	" "	हिन्दी कथा साहित्य	इलाहाबाद-भारती भण्डार	
13-	गिरीश रस्तोगी	हिन्दी कहानी सिद्धान्त और विवेचन	रतन प्रका० मन्दिर, आगरा	1972
14-	गिरिजादत्त शुक्ल-गिरीश	हिन्दी की कहानी लेखिकाएँ और उनकी कहानियाँ	प्रमोद पुस्तक माला, प्रयाग	1935
15-	डा० जगदीश गुप्त	नई कविता स्वरूप और समस्याएँ	भार० ज्ञान पीठ, वाराणसी प्रका०	1969

क्रमांक	लेखक	कहानी	प्रकाशन	
16-	जगन सिंह	आधुनिकता और हिन्दी कहानी	प्रातीभिक प्रकाशन के०डी० 19 [illegible] आर्य विहार, दिल्ली-पु०सं०	1980
17-	डा देवी शंकर अवस्थी	नई कहानी सन्दर्भ और प्रकृति	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली	1966
18-	देवराज उपाध्याय	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान	साहित्य भवन, इलाहाबाद	1963
19-	देवी शंकर अवस्थी	कहानी विविधा	राजकमल प्रका०प्रा०लि० 8, फैज बाजार दिल्ली-6	1983
20-	दिनकर	साहित्य मुखी	उदयाचल पटना प्रथम सं०	1968
21-	देव कपूरिया	हिन्दी कहानी साहित्य में प्रेम एवं सौन्दर्य तत्व का निरूपण	आशा प्रका०गृह, नई दिल्ली	1974
22-	धनंजय वर्मा	हिन्दी की प्रगतिशील कहानियाँ	राधा कृष्ण प्रका० नई दिल्ली प्र०सं०	1986
23-	धनंजय	समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि	अभिव्यक्ति प्रकाशन, दिल्ली	
24-	धनंजय	आज की हिन्दी कहानी	अभिव्यक्ति प्रकाशन, दिल्ली प्र०सं०	1969
25-	धर्मवीर भारती	मानव मूल्य और साहित्य	भारतीय ज्ञान पीठ, काशी प्र०सं०	1960
26-	धीरेन्द्र वर्मा	साहित्य कोश भाग-1	ज्ञान मण्डल लि० वाराणसी द्वितीय संस्करण 2020	
27-	" "	" " भाग-2	ज्ञान मण्डल लि०, वाराणसी प्र०सं० 2020	
28-	डा० धनंजय	आज की हिन्दी कहानी	अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद-	1969
29-				
30-	डा० नगेन्द्र	नयी समीक्षा नये संदर्भ	नेशनल पब्लिशिंग हाउस प्र०सं०	1974
31-	नामवर सिंह	कहानी : नई कहानी	लोक भारतीय प्रकाशन, 15-ए, महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद-1	1973

"परिशिष्ट — "ग" — "संस्कृत ग्रन्थ"

1- कामसूत्र वात्स्यायन, टी० माधवाचार्य, सन् 1961 — श्री वेंकटेश्वर स्टीम बम्बई।

2- श्रीमद्भगवद् गीता, टी०-हरगोविन्द शास्त्री, सप्त पचासवाँ संस्करण 2021 गीता प्रेस - गोरखपुर।

3- श्रीमद्भगवद्गीता, टी०-हरगोविन्द शास्त्री, चतुर्थ संस्करण, सं०2018 गीता प्रेस- गोरखपुर।

4- संस्कृत-हिन्दी कोष, वामन शिवराम आप्टे, द्वितीय संस्करण 1969, मोतीलाल-बनारसी दास- दिल्ली।

1- Encyclopaedia Britannica, Vol. 16 & 22- 1959 - Encyclopaedia Britannica Inc., William Benton Publisher, CHICAGO.

2- Ethical values in the age of Science, Paul Roubiczek, Ed. 1969, Cambridge University Press, LONDON.

3- Religion and the Modern Mind, W.T. Stace 1945, The Macmillan Company - New YARK

4- The Evolution of Human Nature, C Judson Herrick, 1956, Austion University of Texas Press.

5- The Sources of Values Stephen C. Pepper, 1958, University of California Press Berkeley and Los-Angeles CALI fornia.

6- The Evolution of Values. Bouglecharles - 1926

Ethical Philosophies of India I.C. Sharma - 1965

The rules of Socialgical Method Durkheim.

"परिशिष्ट" — "घ" — "पत्र पत्रिकाएँ"

1- नई कहानियाँ (मासिक) भैरव प्रसाद गुप्त, कमलेश्वर, भीष्म साहनी,
अमृतराय, दिल्ली, इलाहाबाद ।

2- माध्यम (मासिक) डा० बालकृष्ण राव - इलाहाबाद ।

3- आलोचना (त्रैमासिक) डा० नामवर सिंह, दिल्ली ।

4- प्रतीक (मासिक) अज्ञेय- इलाहाबाद ।

5- आजकल (मासिक) चन्द्र गुप्त विद्यालंकार, दिल्ली ।

6- संचेतना (मासिक) डा० महीप सिंह, दिल्ली ।

7- सारिका (मासिक) मोहन राकेश, चन्द्रगुप्त

8- धर्मयुग (साप्ताहिक) डा० धर्मवीर भारती बम्बई ।

9- विकल्प (त्रैमासिक) शैलेश मटियानी-इलाहाबाद ।

10- निकष (त्रैमासिक) डा० धर्मवीर भारती, लक्ष्मी कान्त वर्मा,-इलाहाबाद ।